गुजराती साहित्याकाशके उज्ज्वल नक्षत्र स्वर्गीय श्री रमणलाल वसंतलाल देसाई की स्वर्ण-जयन्तीके अवसरपर उत्तर प्रदेशके राज्य-पाल तथा गुजरातीके सन्मान्य लेखक श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशीने कहा था—

"रमण भाई हमारे युगके सिद्धहस्त साहित्य-सर्जक हैं। वे हमारे जन जीवन के उच्च कलाकार हैं। जन साधारण की भावना, अनुभूतियाँ तथा आकांक्षाएँ उनके साहित्य में मूर्तरूप से देखने को मिलती हैं। वे हमारे प्रिय कलाकार हैं।"

कालभोज

(ऐतिहासिक उपन्यास)

लेखक

श्री रमणलाल वसंतलाल देसाई

अनुवादक

श्री मुकुन्दलाल गुप्त बी० ए०

प्रकाशक
सस्ती साहित्य पुस्तक माला कार्यालय,
बनारस ।

प्रथम संस्करण

मूल्य ४)

मुद्रक
नारायण कृष्ण पावगी
भागीरथी प्रेस,
बनारस ।

लाल भोर

:: प्रस्तावना ::

समस्त भारतवर्षकी कल्पनाको उत्तेजित करने वाली मेवाड़-भूमिका इतिहास बापा रावलसे प्रारम्भ होता है। उस पर बारह सौ वर्षका पर्दा पड़ा हुआ है। इतिहास दंतकथा मिश्रित बन गया है।

इतिहासकार अस्पष्ट प्रमाण-विहीन कहानी पर विश्वास न करें, यह कट्टर शास्त्रीयताके लिए अवश्यमेव शोभनीय है किन्तु दंतकथाओंमें तनिक भी सत्यता नहीं है, यह कहना भी तो अत्युक्ति ही होगी!

टॉडके राजस्थानमें बापा रावलका दंतकथा मिश्रित इतिहास है। कालभोजके संबंधमें मेरा यह सर्वप्रथम अध्ययन था।

परंतु राजस्थान लिखे जानेके पश्चात् अनेकानेक अन्वेषण हुए। उनके द्वारा दंतकथासे भी बढ़कर विस्मयोत्पादक वृत्तान्त बापा रावलके संबंधमें ज्ञात हुए हैं।

गोहिल वंश-वृक्षमें बापाका नाम कहाँ आता है? पन्द्रहवीं सदीमें पूर्ण प्रसिद्धि प्राप्त महाराणा कुंभाने पंडितोंके साथ विचार-विनिमय कर बापा रावलको इडरके गुहादित्य गोहिलका पाँचवाँ वंशज निश्चित किया और टॉडसाहबके साथ ही सभी लोगोंने उसे स्वीकार कर लिया।

परन्तु इसके पश्चात् प्राप्त साधनोंके आधार पर अन्तिम निर्णय इतिहासकारोंने यह किया है कि इडरके गोहिलवंशके संस्थापक गुहदत्त या गुहादित्यकी सातवीं पीढ़ीमें उत्पन्न महेन्द्रका पुत्र कालभोज दूसरा कोई नहीं बल्कि बापा रावल ही है।

अब सभी इतिहासकारोंने यह भी स्वीकार कर लिया है कि कालभोजका शासनकाल ईस्वी सन् ७३४ से ई. स. ७५३ तक कहा जा सकता है।

इसी बापा रावलका नाम कालभोज है। प्रजाने उसमें सच्चा पितृत्व देखा जिससे वह बप्पा, बापा अर्थात् पिताके स्नेहपूर्ण उपनामसे पुकारा जाने लगा।

बापा रावल अथवा कालभोजकी एक स्वर्ण मुद्रा* अजमेरमें प्राप्त हुई है। यह तौलमें लगभग ६५ रत्ती है। मुद्राके दोनों ओर के किनारों पर बिन्दियोंकी मालाएँ बनी हुई हैं। मुद्राके एक ओर मालाके नीचे उस समयकी लिपिमें 'श्रीबप्प' ये अक्षर खुदे हुए हैं। दूसरी ओर एक त्रिशूल है। त्रिशूलके सामने एकलिंगजी और उन्हें देखता हुआ नन्दी है। मुद्राके निम्न भागमें नमस्कार करती हुई एक मूर्ति बनी हुई है जो स्वयं बापाकी प्रतीक हो सकती है। मुद्राके पृष्ठ भागमें सूर्य, छत्र, चँवर, बछड़ा, गाय और दुग्धगंगामें तैरती हुई मछली आदि चीजें बनी हुई हैं।

बापा-कालभोजके अस्तित्वका यह एक प्रत्यक्ष प्रमाण है। यदि इसमें मिति एवं संवत् दिये होते तो संपूर्ण इतिहास पर अधिक प्रकाश पड़ सकता था। पर यह बात स्पष्ट है कि चित्तौरमें गुहिलवंशकी स्थापना करने वाला कालभोज ही बापा रावलके रूपमें मेवाड़के राजवंश एवं जनताके संस्मरणोंमें चिरंजीवी रहा है।

गुहदत्तका वल्लभीके राजवंशके साथ संबंध था या नहीं ? 'प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है !' यह कहकर वर्त्तमान इतिहासकार इस संबंधकी बातको कल्पित मानते हैं। इतनाही नहीं, बापा रावल—कालभोज सचमुच क्षत्रिय थे या उच्च-कुलीन ब्राह्मण थे, इस विषयमें भी मत-मतांतर हैं। आजकी दृष्टिसे देखने वालेको ब्राह्मण-क्षत्रियका भेद अटूट जान पड़ता है, यह बात समझमें आ सकती है। परन्तु इस्लामके आनेके पूर्व वर्ण-भेदका सरलतासे उल्लंघन किया जा सकता था। इसके जितने चाहे उतने दृष्टान्त इतिहासमें खोजनेसे मिल सकते हैं। तीसरी-चौथी सदीके भारशैव सम्राट् ब्राह्मण वर्णके कहे जाते हैं।

---

* इसकी प्रतिलिपि प्रारम्भ में दी गई है।

सिंधके चच नामक ब्राह्मणने राजकुलके क्षत्रिय राजवंशका राज्य छीन कर राजाकी विधवा रानीके साथ विवाह किया और स्वपराक्रमसे सिंधका राज्यविस्तार ईरानकी सीमा तक पहुँचा दिया। यह बात चचनामा जैसे प्राचीन अरब-फारसी ग्रंथोंसे प्रमाणित होती है। इसी चचका छोटा पुत्र दाहिर था; जिससे मुहम्मद कासिमने ईसवी सन् ७१२ में सिंधका प्रदेश जीत लिया था।

इतिहासके विद्यार्थियोंको यह मालूम है कि मुहम्मद गजनीका सामना करने वाले जयपाल-अनंगपाल अफगानिस्तानके ब्राह्मणशाहीके नामसे प्रसिद्ध राजवंशके राजा थे।

ईस्वी सन् ७१२ में अरबोंने सिंध जीता। इसीके बाद परिवर्तनशील युगमें कालभोज बापा रावलका उद्भव हुआ।

अनेक शिलालेखोंमें कालभोजको विप्र या विप्रवर कहा गया है। यह होते हुए भी एक गुहिल-सीसोदिया जैसे उज्जवल राजपूत वंशका वह संस्थापक माना गया है। क्षत्रिय कन्याके साथ कालभोजने विवाह किया। यह और नागदाकी राजकुमारीके झूलनोत्सवकी जो दंतकथा प्रचलित है वह उस युगके वर्णभेदको समझनेके लिए अत्यंत उपयोगी है। वर्णांतर विवाह उस समय आजकलके समान लोगोंके मनमें उत्तेजना पैदा करने वाला नहीं था। यह इस दंतकथासे स्पष्ट विदित होता है। एक वर्णसे दूसरेमें प्रवेश उस समय आजकी अपेक्षा अधिक सरल रहा होगा, ऐसा जान पड़ता है। नागदा यह आजका रेलवे-प्रसिद्ध स्टेशन नहीं है। बल्कि वह मेवाड़में एकलिंगजीके पास स्थित नागद्रह या नागह्रदके नामसे प्रसिद्ध एक नगर था जो आज लगभग खंडहर बन गया है।

कालभोजने चित्रकूट (चित्तौर) के मान मोरी (मानसिंह) मौर्यको मार कर राजगद्दी हस्तगत की, ऐसी भी एक दन्तकथा है। कालभोजके संबंधकी दन्तकथाएँ एवं उनका इतिहास देखते हुए यह दन्तकथा मुझे सच नहीं जान पड़ती। निर्बल मान मोरीकी हत्या करनेकी भोजको कोई आवश्य-

कता ही नहीं थी। मेवाड़ राज्यका स्वामित्व शिवार्पण करने वाले बापा-कालभोजका संकल्प अभी भी मेवाड़के राणाओंकी गौरवपूर्ण टेक बना हुआ है। बापासे लेकर आज तक होने वाले मेवाड़के राणागण अपनेको एकलिंगजी महादेवका प्रधान मानते हुए चले आ रहे हैं। और एकलिंगजी के दर्शनार्थ आने पर शिव-पूजनका अधिकार उनका हो जाता है। इस वंशपरम्परागत भावनाको देखते हुए स्वयं कालभोजके हाथसे अथवा उसके द्वारा मान मोरीका वध हुआ यह माननेके लिए मेरा मन अनुमति नहीं देता। कालभोजने तो कीर्त्ति और प्रतिष्ठाके शिखर पर पहुँच कर संन्यास ले लिया था ; इस यथार्थताको कभी भूलना नहीं चाहिए।

कालभोज केवल ब्राह्मण नहीं बल्कि वडनगरका नागर ब्राह्मण था। यह संभावना डा० भंडारकरकी सूझ थी। इस संभावनाकी अनेक शोधकों ने पुष्टि भी की है। 'मेवाड़के गुहिल' नामक ग्रंथमें स्वर्गीय मान शंकर ने इस प्रश्न पर अत्यंत विद्वत्तापूर्ण रूपसे विवेचना की है।

इस प्रकार कालभोज नामक ऐतिहासिक व्यक्तिने अनेक विवादास्पद एवं रोमांचक कथानक अपने चारो ओर गूँथ लिया है।

उसने ईरान तक चढ़ाई कर इस्लाम धर्मावलंबी कन्याओंके साथ विवाह किया। वर्तमान कालकी कितनी ही पठान जातियाँ कालभोजकी संतति हैं और उसने संन्यास लेकर काश्मीरमें शरीर त्याग किया, ऐसी भी एक कथा है। उसकी एक समाधि मेवाड़में है। और कहा जाता है कि काश्मीरकी पश्चिमी सीमापर भी उसकी एक समाधि है। इस उपन्यास में नरगिसका संपूर्ण प्रसंग एवं कालभोजका पर्यटन वर्तमान युगमें भी संभव है। इस ढंगसे मैंने समझाया है।

हारित मुनि, साधु खाखीओंकी संस्था, लकुलेश—पाशुपत संप्रदायका व्यापक प्रचार, इस संस्था द्वारा भारतका संस्कार एवं रक्षण कालभोजके युगका नवीन चित्र आगे रखता है। हारित मुनि एवं कालभोजकी रूढ़ दंतकथासे समझमें न आने वाले, अविश्वसनीय

तथा क्लिष्ट भागको निकाल कर सुरुचि पूर्ण और संभव जान पड़ने वाली बात मान्य करना ही मुझे योग्य जान पड़ा है।

कालभोज—बापाके उद्भवका वास्तविक उद्देश्य था संपूर्ण राजपूत जातिका जागृति; सच्चा ध्येय था मुस्लिम धर्मके आगे बढ़ते हुए ज्वारको रोक कर पीछे ढकेलना! ऐसा स्पष्ट जान पड़ता है। मुसलमानोंके प्रथम प्रचंड प्रवाहने इस्लामको आठवीं सदीमें पश्चिममें फ्रांस तक और पूर्वमें भारतमें सिंध तक पहुँचा दिया था। यह इतिहास मानव संचलनके विद्यार्थियोंके पठन-पाठन और मननके योग्य है। इसी सदीमें, मेरा ध्यान है कि इस्लामके प्रवाहको पश्चिममें जिस प्रकार फ्रांसके शार्लमेनने रोका उसी प्रकार पूर्वमें कालभोजने रोका! मेरा यह विश्वास केवल इस उपन्यासकी रचनाके लिए ही नहीं बल्कि ऐतिहासिक सत्य रूपमें भी भी दृढ़ होता जाता है। आठवीं सदीके द्वितीय दशकमें सिंधुका पतन हुआ, किंतु भारत बच गया। यह बात भूलने योग्य नहीं है। इस्लामके प्रथम आक्रमणको रोकनेके पश्चात् तीन सौ वर्ष तक इस्लामका आक्रमण भारतमें तो कम से कम शांत पड़ ही गया। इसमें कालभोज एवं उनके यशस्वी वंशजोंका अग्रस्थान होना चाहिए।

इस आठवीं शताब्दीका लोक-जीवन, विचार आन्दोलन, राज-व्यवहार, धर्म-ममत्व, यह सब अच्छी तरह समझमें न आने पर भी पाठककी दिलचस्पी अखंडित बनी रहती है। इस युगके आश्रम, ग्राम-व्यवस्था, नगर-रचना, आवागमन, जाति संमिश्रण अध्ययनीय है। आज शताब्दियोंसे भुलाया गया हुआ बौद्ध-धर्म उस समय वैदिक धर्मके साथ ही समान रूपसे सजीव था। इन दोनों धर्मोंके परस्पर संबंध अथवा संघर्षसे उत्पन्न परिस्थितिको समझनेके लिए हमारे पास अधिक साधन नहीं है। पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि दोनों धर्मोंके सह-अस्तित्वने दोनोंमें उदारता ला दी होगी। उदारताके साथ निर्बलता भी कभी-कभी अवश्य प्रवेश कर जाती है। इस्लामके आक्रमणसे भयभीत आर्य धर्मने स्वरक्षाके लिए

अपने चारो ओर दीवारें खड़ी कर सृजनका प्रारंभ भी इसी शताब्दीमें कर दिया होगा; ऐसा जान पड़ता है।

भारत, मेवाड़ तथा इस्लामके इतिहासका अध्ययन करनेसे कालभोज की जो आकृति मेरे मनमें समा गई उसीको इस उपन्यासके रूपमें प्रकट कर रहा हूँ। राजस्थान, गौरीशंकर ओझाकृत मेवाड़का इतिहास, इंडियन एण्टीक्वेरी, मेवाड़के गुहिल, चचनामा, संप्रदायोंका इतिहास आदि आवश्यक अनावश्यक ग्रंथोंके अध्ययनसे 'कालभोज' की मूर्त्तिको स्पष्टता अर्पित करनेका मैंने इस पुस्तकमें प्रयत्न किया है। फिर भी पूर्वकाल को देखने वाली आँखें वर्तमान कालकी ही तो हैं? ऐतिहासिक उपन्यासों के संबंधमें एक बार की गई व्याख्या मुझे याद आती है—'नई आँखसे पुराना तमाशा!'

'कालभोज' का सर्जन कर, उसकी प्रसिद्धि करते हुए मैं अपने युग दर्शनकी मानसिक भूमिकाको पाठकोंके समक्ष रख रहा हूँ। प्राचीन युगसे संपर्क मुझे बहुत ही अच्छा लगता है।

उपन्यास तो जैसा कुछ लिखा गया ठीक ही है! प्राचीन कथा, दन्तकथा और इतिहासका मेल साधकर आजका हमारा मानस बारह सौ वर्षके पूर्वके युगको सहज ही समझ सके, ऐसी रचना करनेमें मैं समर्थ हुआ हूँ या नहीं, यह तो पाठक ही बता सकेंगे। यदि मैं पाठकोंके लिए कुछ रुचिकर और ग्राह्य प्रस्तुत कर सका होऊँ तो मेरा प्रयास सफल है।

बड़ोदा — रमणलाल वसन्तलाल देसाई

कालभोज

कोट्यार्क का बृहत् मेला लगा हुआ था। साबरमतीके किनारे पर्वत-शृंगके समान उच्च उपत्यकाके एक टीले पर वैदिक सूर्योपासनाका प्रतीकस्वरूप सूर्यमन्दिर आसपासके विशाल प्रदेशका प्रकाश-स्तंभ बन रहा था। इस मन्दिर-शिखरका प्रभातदर्शन करनेका बहुतसे लोगोंने नियम बना रखा था। सूर्यसे कोटिसूर्य रूप विष्णु उपासनाका प्राधान्य स्थापित हुआ। माहात्म्य इतना अधिक बढ़ा कि प्रतिवर्ष उस स्थान पर एक बृहत् मेला लगने लगा। इस मेलेमें इडर-इल दुर्ग एवं आनर्तवासीगण बड़ी संख्यामें आते थे; विशेषतः पर्वत, जंगल तथा ग्राम निवासी भील स्त्री-पुरुष बड़े ही उत्साहपूर्वक इसमें भाग लेते थे।

भीलोंका सहयोग प्राप्त कर वल्लभीके राजकुमार गुहादित्यने अपनी बाल्यावस्था बड़नगरमें व्यतीत कर इडरमें एक नवीन राज्यकी स्थापना की। इसी गुहादित्यके वंशज महाराज महेन्द्र आज मेलेमें पधारे थे। इसीसे उसका महत्व इस वर्ष और भी बढ़ गया था। साबरमतीके दोनों तट स्त्री पुरुष और बालकोंसे उमड़ पड़े थे। व्यापारियोंकी दूकानें, मल्ल, नट, जादूगर एवं नाटक मण्डलियोंके तम्बू भी यथास्थान लग गये थे। नदीतट पर ब्राह्मण विराज रहे थे। लोग स्नान तथा दर्शनके उपरांत दोनों किनारों पर लगे हुए मेलेमें घूमकर खेल तमाशा देखते, अपना मन बहलाते और मनोवांछित चीजें खरीदते थे।

इस वर्ष महाराज महेन्द्रकी मेलेमें आनेकी इच्छा हुई। आर्या-

वर्तमें अभी तक तम्बूका प्रचलन पूर्ण रूपसे न था। वृक्ष, लता, बाँस, पत्ते आदि साधनोंसे झोपड़ियाँ बनाई जाती थीं। विशाल महल-मंडपोंकी रचना हो सकती थी। इनमें भिक्षुक, नट, साहूकार और राजा महाराजा भी सुखपूर्वक रह सकते थे। कुछ समय पूर्व महाराज महेन्द्रने अरब व्यापारियोंको जहाज बनानेके लिए इडरके जंगलमेंसे लकड़ी काटनेकी सुविधा दी थी। इसके बदलेमें अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करनेके लिए उन्होंने महाराजको उपहार-स्वरूप एक सुन्दर तम्बू भेंट कर और उसे मेलेमें लगाकर सबका ध्यान इस नवीनताकी ओर आकृष्ट किया था।

तम्बूकी रचना भी एक छोटे महलके समान थी। महाराज महेन्द्रने उसमें चैनसे निवास किया, अपना दरबार लगाया, साथही लोगोंको तम्बूकी रचना देखनेकी छूट भी दी। मेलेकी अनेक दर्शनीय वस्तुओं तथा कृतियोंमें अरबों द्वारा भेंट किया हुआ तम्बू भी एक विशिष्ट वस्तु और एक विशिष्ट दृश्य बन गया था।

किन्तु दर्शकोंमें भील स्त्री-पुरुष दिखाई न पड़ते थे। भील साबरमतीमें स्नान कर देवदर्शन करते, मेलेमें घूम-फिरकर खरीद फरोख्त करते। तम्बू उनके लिए मानो अस्पृश्य एवं अदर्शनीय वस्तु थी। वे उसके पास न तो फड़कते थे न उसकी ओर आँख उठाकर देखते ही थे। महाराज महेन्द्रके अंगरक्षकने इस स्थितिकी ओर महाराजका ध्यान आकृष्ट किया। सन्ध्या काल हो जाने पर भी भीलोंकी तंबूके प्रति उपेक्षा ज्योंकी त्यों बनी रही। यह देखकर महाराजने मेलेमें आये हुए भीलोंके अधिनायक जादवको अपने पास बुलाया। महाराज उस समय मेलेमें घूम रहे थे। उनके लिए पर्याप्त स्थान छोड़कर प्रजाजन यथोचित आदर प्रदर्शित कर रहे थे।

'भीलोंने तम्बूका बहिष्कार किया है?'

'हाँ, महाराज!'

'क्यों ?'

'हमारे जंगलको उजाड़नेवाले व्यापारियों द्वारा दिये हुए तम्बूके पास भील नहीं आयेंगे।'

'यह बात कैसी मूर्खतापूर्ण है ! क्या आप यह नहीं समझ रहे हैं ? जंगलका थोड़ासा भाग दे देनेसे व्यापार बढ़ेगा, लोग समृद्ध होंगे, साथ ही लोगोंको अच्छी जीविका भी मिलेगी।'

'यदि यहाँके व्यापारियोंको यह जंगल आपने दिया होता तो भीलोंको इतना रोष न हुआ होता। किंतु विदेशियों.........'

'आप भी...? राजकार्यमें भाग लेनेवाले आपके समान अधिनायकोंको तो समझना चाहिये और लोगोंको समझाना चाहिये कि मालका निर्यात ही देशको वैभवशाली बनानेका मूल आधार है।'

'महाराज ! हम तो मूर्ख हैं। गम्भीर दृष्टिसे विचार करनेकी शक्ति हम लोगोंमें नहीं है.........फिर भी, विदेशियोंके साथ व्यापारसे सचमुच देखा जाय तो...ऐसे व्यापारसे राज्य बन भी सकते हैं और बिगड़ भी सकते हैं।'

'आप समझते हैं कि भीलों की यह मूर्खता मैं योंही सहन कर लूँगा ?'

'महाराज ! ये तो बच्चे हैं। हठ पकड़ लेने पर जरा तरह दे देनेसे ये स्वयं ठिकाने आ जायँगे।'

'इस समय भील बहुत सिर पर चढ़ गये हैं। आपके कहनेसे मैंने इनकी एक सेना बना दी। अब ये समझने लग गये हैं कि इडर की सब विजय इन्हीं के द्वारा हुई है। मैं इनकी सेनाको ही विघटित किये देता हूँ।'

'जरा जल्दबाजी हो रही है महाराज ! इडर राज्यकी नींव भीलोंके कटे हुए मस्तक पर ही पड़ी है।'

'इसलिए गोहेल जीवनभर भीलोंके दास बने रहें ?...मैं इतनी लंबी-चौड़ी बात अपने मित्रोंके साथ भी नहीं करता। आज रातमें तम्बूके

चौकमें भील-नृत्य नहीं हुआ तो मैं समझ लूँगा कि मेरी भील-प्रजा राजद्रोही हो गई है।'

'महाराज ! भीलोंके समान दूसरी वफादार जाति नहीं मिलेगी ! जहाँ कहीं भी आप आज्ञा दें भील-नृत्यका प्रबन्ध कर दूँ। लेकिन इस तम्बूके निकट नहीं। और, इन अरब व्यापारियोंके सामने तो नहीं ही।'

'जो कुछ आज्ञा देनी थी दे चुका। मैं और कुछ भी नहीं सुनना चाहता।'

'महाराज ! तो आप जान लें कि भील आपकी आज्ञाका पालन नहीं करेंगे।'

'ये शब्द आपके मुँहसे निकल रहे हैं ?'

'जी ! मैं ही कह रहा हूँ। अब तक हठ न करनेके लिए जो भीलोंको समझा रहा था, वही आपका सेवक बोल रहा है। अब इस क्षणसे मैं आपका सेवक नहीं रहा !' यह कहकर भीलनेताने अपना सरदारीका चिन्ह महाराज महेन्द्रके चरणोंके पास रख दिया।

'इसका परिणाम जानते हो ?'

'राजाज्ञाकी अवहेलना करनेवालेका मस्तक सदैव खतरेमें रहता है, यह मैं जानता हूँ।' यह कहकर भीलनायक जादव नम्रतापूर्वक परन्तु स्वस्थतासे महाराजके सामने खड़ा रहा।

महाराजने संकेत किया और तीनचार सैनिकोंने आगे बढ़कर भील-नेताको पकड़ लिया। ऐसे प्रसिद्ध नेताको पकड़ते समय सैनिक भी अचकचाये, उन्हें कर्तव्यपालन रुचा नहीं।

भीलनेताने तनिक भी विरोध नहीं किया। सैनिक उसे सभ्यतापूर्वक तम्बूमें ले गये और तम्बूके एक भागमें उसे पहरेमें बैठा दिया।

इस अप्रिय घटनाके साथ ही मेला भी थम गया। लोगोंमें भयपूर्ण आश्चर्य फैला और मेला खाली होने लगा। लोगोंने घरकी राह ली।

दूकानदार अपनी-अपनी दूकानें समेटने लगे। आमोद-प्रमोदके कार्यक्रम रुक गये और मेलेके रंगीन वातावरण पर विषाद छा गया।

एक भी भील स्त्री-पुरुष या बालक ढूँढ़नेसे भी मेलेमें कहीं दिखाई नहीं पड़ रहा था। भीलनायकके पकड़े जाते ही न जाने कैसे सभी जनताको इसकी खबर लग गई और देखते ही देखते वे मेलेसे अदृश्य हो गये। महाराज महेन्द्रने अपने अनुचरोंको जितने भी भील स्त्री-पुरुष मिलें, पकड़ लानेकी आज्ञा भी दी; किन्तु आज्ञा देनेवाले और उसका पालन करनेके लिए जानेवालोंको पूर्वलिखित भीलनायकको छोड़ और कोई नहीं मिला। महाराजकी इच्छा थी कि इस प्रकार पकड़कर लाये गये भील स्त्री-पुरुषों द्वारा रात्रिमें नाचगानेका कार्यक्रम पूरा कर लिया जाय और इस प्रकार अपने अरब अतिथियोंको नवीन ढंगके नृत्यका परिचय करा दिया जाय। परन्तु यह अब असम्भव-सा था।

विवश हो सामान्य संगीतकी ही व्यवस्था रात्रिमें की गई। चार-पाँच अरब व्यापारियोंको अतिथिके स्थान पर बैठाया भी गया। भोजनोपरांत नृत्यवादन चल रहा था जब कि किसीने आकर महाराजको भरे दरबारमें सूचना देते हुए कहा—'महाराज! सशस्त्र भीलोंका एक समूह तम्बू पर चढ़ा चला आ रहा है।'

'रोको, एकदम रोको और उन्हें यथोचित दण्ड दो। कर्णाटक तक मेरी दुंदुभि बजती है...'

'महाराज! इन्हें रोकनेके लिए पर्याप्त सैन्य अपने पास नहीं है... आपकी आज्ञा हो तो जादव भीलको पेश करूँ।' विज्ञापकने कहा।

'जादवको? जिसे मैंने आज तम्बूमें कैद किया है उसे? असंभव! महाराज महेन्द्रको यह सलाह कभी पसन्द नहीं आ सकती। जिस भीलको बढ़-बढ़कर बातें करनेके लिए कैद किया उसीकी शरण, कभी नहीं!'

'तो...आज्ञा?'

'आज्ञा मैंने दे दी है। सैनिकों द्वारा यदि भील न रोके जा सके तो...मैं स्वयं रोकूँगा।'

'महाराजकी आज्ञा हो तो दो दिनमें एक अरब टुकड़ी खड़ी कर दूँ। भीलोंको समाप्त करते देर कितनी लगेगी?' एक अरब व्यापारी ने कहा।

किन्तु दो दिनमें आनेवाली अरबोंकी सहायताके लिए उग्र भीलोंका समूह क्या रुका रहता? चारों ओरसे वह समुदाय अधिकाधिक आगे बढ़ता चला आ रहा था। उनकी चिल्लाहट, संग्रामनाद और शस्त्रोंकी खनखनाहट अब सुनाई पड़ने लग गई थी। राजरक्षक और सैनिक उनका सामना कर रहे थे, परन्तु इस सामनाका कोई अस्तित्व ही न हो इस प्रकार भीलसमुदाय आगे बढ़ता चला आ रहा था। यह समुदाय भी कोई अनियमित समुदाय न था; इडरके क्षत्रिय गोहिलोंने भीलोंको सुशिक्षित सैनिक बना दिया था।

मेलेमें पधारे हुए महाराजके पास अधिक सेनाका न होना स्वाभाविक था। अरबोंको दिये गये इडरके जंगलोंके संबंधमें भीलोंके मनमें व्याप्त क्षोभ का पता महाराज महेन्द्रको था किन्तु यह क्षोभ बढ़कर इतना उग्र स्वरूप धारण करेगा, इसका उन्हें अनुमान न था। प्रजा अथवा प्रजाके किसी भागका असंतोष कब कैसा रूप धारण करेगा कभी कहा नहीं जा सकता।

प्रतिवर्षके समान मेलेमें राजपरिवारके समक्ष आनन्दपूर्ण नृत्य करनेका भीलोंका अधिकार था। किन्तु यह अधिकार राजाकी आज्ञा बन जाय और वह भी अरुचिकर आज्ञा तो उस अधिकारको छोड़ देनेका प्रजाको भी अधिकार है। जंगल उजाड़नेवाले अरबोंके सम्मुख, उनके द्वारा भेंट किये हुए तम्बूमें नृत्य करनेके लिए भील प्रस्तुत नहीं थे। इसपर भी एक माननीय भीलनेता पकड़कर कैद कर लिया जाय और भीलोंको पकड़नेका आदेश जारी किया जाय तो बलवेकी परिस्थितिका एकाएक उत्पन्न हो जाना अवश्यम्भावी था।

राजपक्ष ऐसे बलवेकी—आज्ञाके उल्लंघनकी गम्भीरताको–समझ नहीं सकता। तम्बू पर चढ़े आते हुए समुदायका नाद सुनकर महाराज महेन्द्रने गायन-वादन व नृत्य बन्द करा दिया और निर्भीक तम्बूके द्वार पर आकर वे खड़े हो गये। उन्हें विश्वास था कि उन्हें देखते ही भीलोंका समूह बिखर जायगा। हुआ भी ऐसा ही। महाराजको देखकर क्षणभरके लिए समुदाय सचमुच ठिठक गया।

'क्यों चढ़ आये हो मेरे तम्बू पर?' महाराजने गर्जना की।

'महाराज! आपने हमारे सरदारको कैद कर लिया है...'

'उसका विरोध करने आये हो?'

'महाराज! उसके समान राजभक्त सेवक को...'

'तुम्हारे डरसे उसे छोड़ दूँगा, यह समझ रहे हो?' महाराजने क्रुद्ध होकर कहा।

इसी समय समूहमें से स-न-न-न करता हुआ एक तीर आया और महाराज महेन्द्रकी छातीको भेदता हुआ पार निकल गया। अत्यन्त क्रोधके कारण महाराज महेन्द्रको तीरकी पीड़ाका भान नहीं हुआ। किन्तु वे समझ गये कि मृत्यु सन्निकट है। पागल समुदायका सामना करनेके लिए आगे बढ़नेको उत्सुक महाराज एक कदम भी आगे नहीं बढ़ पाये। उनके पैर लड़खड़ाने लगे और उनकी गिरती हुई देहको किसीने बाहोंमें संभाँल लिया।

'क्या किया तूने दूदा, बेवकूफ?' महाराजको सहारा देनेवाले भील-नायक जादवने गर्जना की।

क्षणभरके लिए भीलसमुदाय शान्त पड़ गया। महाराजको लगे हुए घावने उन्हें चौंका दिया। कैद किये गये जादवने आकर लड़खड़ाकर गिरते हुए महाराजको अपनी बाहोंमें ले लिया और उनका ध्यान उनकी मूर्खताकी ओर आकृष्ट किया। इससे समुदायको सहज प्राथमिक संकोच तो अवश्य हुआ। परन्तु समुदाय क्या है? सुधबुध खो बैठी हुई

मानवता। जिसने तीर चलाया था उस भीलयुवक दूदाने आगे बढ़कर कहा 'हमारा जंगल उजाड़नेवाला राजा हमें नहीं चाहिये...और इस राजाका सहायक नायक भी हमें नहीं चाहिये !'

'मूर्ख ! मैंने महाराजको समझा लिया होता। चलो, हट जाओ सामनेसे। मुझे अपने महाराजकी सुश्रूषा करने दो।' जादव बोला।

'सेवा सुश्रूषा करनी हो तो अपने महाराजको तम्बूके बाहर ले जाओ। हमें तम्बू फूँकना है और अरबोंको पकड़ना है।' युवक भील-नेताने कहा।

'जादव ! मुझे तम्बूके बाहर ले चलो।' प्रतिक्षण आसन्न मृत्यु देखते हुए महाराज महेन्द्र बोले।

महाराजकी देहको गोदमें उठाकर जादव तम्बूसे दूर चला गया। एक वृक्षके नीचे, नदीकी स्वच्छ रेत पर अपना दुपट्टा बिछाकर उसने महाराजको सुला दिया।

'जादव ! तुम्हारा कहना नहीं माना, यह मेरी बड़ी भूल हुई...' महाराज ने धीमे स्वरमें कहा। राजभक्त भील सरदारकी आँखें डबडबा आईं।

'महाराज ! मैं अपने भीलोंको अच्छी तरह पहचानता हूँ। उनका पागलपन भी मैं जानता हूँ। क्षणभर पहले आपने मुझे बुला लिया होता...'

'तू स्वामिभक्त है; यह मैं जानता हूँ...देख, तेरे भीलोंने तम्बूको फूँक दिया...अरबोंको बचानेके लिए मैं आगे आया...उनकी रक्षा तो उनका घोड़ा करेगा...पर...बालक राजकुमारकी मुझे चिन्ता है... जिसने मुझे तीर मारा...वह मेरे पुत्रको जीता कभी नहीं छोड़ेगा... उसकी रक्षा न करोगे ?'

'मेरा वचन है महाराज ! राजकुमारका बाल भी बाँका न होने दूँगा। मेरा एवं मेरे वंशजोंका सिर बन्धक में...'

'बस ! तू इसी क्षण चला जा...मैं तो...क्षण दो क्षणका मेहमान हूँ...?...' कहते कहते महाराज महेन्द्रके प्राणपखेरू उड़ गये।

अपना दुपट्टा राजदेह पर डालकर और दो-एक राजचिह्न महाराजकी

शवके पास रख जादव भील मृत देहको अन्तिम प्रणाम कर दौड़ता हुआ वहाँसे वापस लौटा।

तम्बू धूधूकर जल रहा था। भील आनन्दसे नाच रहे थे और जो भी राजवस्तु हाथमें आती उसे अग्निमें डालकर सन्तुष्ट हो रहे थे। मानव विनाशकी ऊर्मिपर जब सवार होता है तब उसे होश-हवास नहीं रहता कि वह उपयोगी वस्तुका विनाश कर रहा है अथवा निरुपयोगी वस्तुका। वह कलाकृतिका नाश कर रहा है अथवा सैकड़ों जीवोंका पोषण करनेवाले अनाजको जला रहा है। किसीका उसे ज्ञान नहीं रहता। वह स्त्रीको मार रहा है अथवा पुरुषको, बालकका बध कर रहा है या वृद्धका, इसका उसे ख्याल भी नहीं रहता। तोड़-फोड़, कतल, आग लगाना, उसके लिए खेल बन जाते हैं। तम्बूको जलानेवाले भीलोंने तम्बू एवं तम्बूके आसपास पड़ी हुई राजछापकी सभी वस्तुओं को जलाकर भस्म कर डाला।

ज्यों-ज्यों राजतम्बूके जलाने की बात फैलती गई त्यों-त्यों भीलोंका अधिकाधिक समुदाय वहाँ एकत्र होने लगा। मेले में स्थान-स्थान पर स्थित मधुशालाओंमें उन्हें पीनेके लिए मद्य भी प्रचुर मात्रामें मिल गया। इडर गढ़में खबर पहुँचे और वहाँ से मदद आये इसके पूर्व ही उन्होंने महाराज महेन्द्रका वध करनेके पश्चात् तम्बू जलाकर खाक कर डाला, और इस प्रकार जंगल काटनेकी राजाकी नीतिका सक्रिय विरोध किया।

परन्तु सैन्य आ पहुँचेगा तब?

सेनामें अधिक भाग भीलोंका ही था। उसका अधिकांश तो सीमा पर ही पड़ा हुआ था। और मेलेमें उपस्थित असंख्य भील स्वयं सैनिकोंसे क्या कम थे? सैन्य आये अथवा न आये, भील बहादुरों को डरनेका कारण था ही नहीं। राज्यके मुख्य आधारस्वरूप राजाको भीलोंने यहीं मारकर गिरा दिया था, राजाका तीन चार वर्षका पुत्र गद्दी पर बैठकर आज्ञा दे, यह असम्भव था। राज्यके क्षत्रिय सेनापति

एवं कार्यकर्त्तागण कोई अगला कदम बढ़ायें, इसके पूर्व ही इडर गढ़ पर कब्जा क्यों न कर लिया जाय ?

साथ ही इडर पर कब्जा हो जानेके पश्चात् गद्दी पर कोई भील ही क्यों न बैठे ?

महाराज महेन्द्रको तीर मारनेवाला साहसी युवक भील दूदा एक अच्छा योद्धा, एक भील टुकड़ीका स्थापित नायक और अत्यधिक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। वह जागीरदार बननेके, सेनापति बननेके स्वप्न देखा करता था। महाराज महेन्द्र पर तीर छोड़नेका साहस करनेके साथ ही उसके राजवधके अपराधने उसकी महत्वाकांक्षाको असीम बना दिया। विनाशका नशा सब पर सवार था। उसपर मद्यका नशा एक और पुट चढ़ा रहा था। सैन्यका सामना होनेकी संभावना प्रतिक्षण बढ़ती जा रही थी। भीलोंके कत्लेआमके कुछ भूतकालीन प्रसंग इन्हें याद आ रहे थे और वहां उपस्थित अथवा अनुपस्थित सभी भीलोंके सिर काटे जानेका प्रसंग किसी भी क्षण पुनः उपस्थित हो सकता है यह डर उनके मनमें जड़ जमा रहा था।

इसे रोकनेका एक ही मार्ग दूदाको दीख पड़ा। भयंकर गर्जना कर उसने सबको शांत कर कहा, 'अब राज्यके साथ बलवा कर चुके, महाराजकी आहुति भी पड़ चुकी। बताओ हमने अच्छा किया या बुरा?'

'हमारी इच्छाके विरुद्ध जंगलोंको उजाड़नेवाली राजसत्ताको उखाड़ फेंकनेमें हमने बुरा क्या किया ?'

'शाबाश ! किंतु अब···?···हमें जीना है या मरना ?'

'जीनेके लिए ही तो मौतका आवाहन किया है !' किसीने उत्तर दिया।

'यदि जीना है तो आज, इसी समय इडर पर चलकर कब्जा कर लो·········अभी।' दूदा ने कहा।

'इसी समय ? अभी ? इडर ?' साधारण बलवा करना सरल है।

इडर पर कब्जा करनेकी बात कुछ अधिक गम्भीर समझ एक भीलने प्रश्न किया। राजदेहका घात कर भीलों ने अपने प्राणोंको स्वयं ही खतरेमें डाल लिया था।

'हाँ, इसी समय! मैं इडरगढ़ पर कब्जा करने के लिए कह रहा हूँ।'

दूदाने देखा कि यह बड़ी योजना भीलोंकी समझके परे है। अतः उस ओर उनका ध्यान आकृष्ट करते हुए उसने कहा।

'पर·········?' किसी संशयात्माका उद्‌गार सुन पड़ा।

'पर क्या? इडर लेनेमें ही हमारा कल्याण है। इडर अपना ही गढ़ था यह तो आप जानते ही हैं? इन गोहिलोंको बुलाकर गद्दी पर बैठानेवाले भी हम ही हैं! यह तो आपको पता होगा ही?' दूदाने प्राचीन इतिहास सबके समक्ष रखा।

सबने रातमें ही इडरगढ़ पर धावा करनेका निश्चय किया। दूदाने समुदायको सैन्यका व्यवस्थित रूप दिया। आसपास बिखरे हुए नगर एवं गावोंसे हथियार माँगकर अथवा छीनकर लानेकी योजना भी उसने गढ़ी। रातमें ही दस-पन्द्रह कोसकी यात्रा उस सैन्य बने हुए समुदायने समाप्त भी कर ली।

सैन्यका स्वरूप धारण करने पर समुदाय अधिक सक्रिय एवं प्रभावशाली लगता है। भीलोंने आश्चर्यसे देखा कि वे एक विजयी सैन्यका अवतार धारण कर रहे हैं। इडरके विजयकी आशा उनके हृदयमें उत्पन्न हुई और उनके हृदयमें नवीन जोशका प्रादुर्भाव हुआ।

महाराज महेन्द्रका शव निर्जन तट पर पड़ा हुआ था। सामने किनारे पर स्थित मंदिर, ग्राम, मेला एवं आसपासकी बस्तीमें कोई चिड़ियाका पूत भी जीवित दिखाई नहीं दे रहा था। सम्पूर्ण राज्यकी रक्षा करनेवाले राजाका मृत देह इस समय अरक्षित पड़ा हुआ था। अभी प्रभात हुआ नहीं था जिससे गिद्धोंकी दृष्टि वहाँ न पहुँच पाई थी।

प्रभात होनेके पूर्व भील-सैन्यने पर्याप्त दूरी तै कर ली। सूर्योदयके साथ ही इडरसे आनेवाले मार्ग पर कुछ धूल उड़ती हुई सैन्य ने देखी। किंतु धूल इतनी अधिक न थी कि चिन्ता उत्पन्न करे। दूदाने सेनाको आगे बढ़नेकी आज्ञा दी। दूदा अब सेनानायक बन चुका था। धूलपटके बीचसे दो सशस्त्र घुड़सवार और एक रथ आते हुए दीख पड़े। सेनाको देखकर भी रथ अथवा घुड़सवार रुके नहीं। दोनों आमने सामने आ गये। रथ मुड़कर बगलसे जाने लगा। दूदाने गरज कर कहा 'रथ रोको! और सवारों तुम भी रुक जाओ!'

'कौन हैं आप हमारे रथको रोकनेवाले? महाराज महेन्द्रकी जहाँ ध्वजा फहराती हो वहाँ·········?' एक सवारने प्रश्न किया।

दूदाने आगे बढ़कर सवारको रोकते हुए, गम्भीरतापूर्वक पूछा— 'यह रथ है किसका यह तो बताओ?'

'इडर की सीमामें रहते हुए भी आप इस रथ को पहचान नहीं सकते? अफसोस!'

रथका परदा भीतरसे थोड़ा हटाया गया और एक सौम्य मुखाकृति-बाला स्वच्छ वस्त्रधारी पुरुष, सादे वस्त्र पहने हुए जाज्वल्यमान नारी एवं एक तीन-चार वर्षका बालक सबको दीख पड़े। अधिकांश सैनिकोंने पुरुषको इडर राज्यके धर्माधिकारी पराशर सुशर्माको पहचान लिया।

पराशर रथसे नीचे उतरे। अत्यन्त स्वस्थतापूर्वक, और दृढ़तासे वे सेनाके आगे खड़े दूदाके समक्ष खड़े हो गये। दूदासे भी इस ब्राह्मणकी देह ऊँची लग रही थी।

'नायक! रथ रोकनेका कारण?' पराशरने पूछा।

'रथ रोकनेका कारण? आप जानते ही हैं...' दूदा बोला।

'मैं भी जानता हूँ और आपको भी जान लेना चाहिये कि महाराज महेन्द्र वर्मन् आज कोल्यार्कजीकी महाविधि सहित सायं पूजा करनेवाले हैं...यदि मैं नहीं पहुँचता...।'

'जाइये...किन्तु अन्दर कौन है ?'

'समझ में नहीं आ रहा है कि महाराज महेन्द्रके किसी भी सैनिकको मुझसे इस प्रकार प्रश्न करनेका क्या अधिकार है! अपनी पत्नीके साथ...'

'हाँ, हाँ, पहचाना...पधारिये। बालक भी आपका ही होगा....' कहकर दूदाने दोनों सैनिकों एवं सारथिको आगे बढ़नेकी आज्ञा दी और पराशर रथ पर चढ़ने लगे।

'महाराज तो आपके....साबरमतीकी रेतमें सोये हैं...जाकर स्नान कीजिये...कराइये ठीकसे...' कहकर एक भीलसैनिक जोरसे हँसने लगा।

'क्या कहा ? महाराज रेत में सोये हैं ?' 'धर्माधिकारीने रथपर बैठते हुए पूछा।

'कुछ नहीं, बढ़ो आगे फुर्तीके साथ।' दूदाने सेनाकी चालमें शीघ्रगति प्रेरित की और संपूर्ण भील सैन्य इडरकी तरफ बढ़ा। सवारोंकी विरुद्ध दिशामें रथ भी साबरमतीकी ओर आगे बढ़ा चला जा रहा था।

'इस राजगुरुको इस प्रकार जाने क्यों दिया ?' आगेके एक सैनिकने दूदासे पूछा।

'प्रारंभमें ही चींटीको क्या मारें ! ब्राह्मण मारकर अपशकुन क्यों मोल लें ?'

'यह ब्राह्मण ऐसा वैसा नहीं है। उन बौद्धोंका सामना करनेवाला यह राजगुरु हमें चैन लेने देगा ?' सैनिक बोला।

'राजाके जानेके बाद राजगुरुको कौन पूछता है ? दानदक्षिणा दी गई कि बस...' कहकर दूदाने सेनाको आगे बढ़ाया।

देखते ही देखते इडरकी पहाड़-कंदराएँ दिखाई पड़ने लगीं। भीलोंने उन्मादपूर्ण समूह गर्जना की और दोपहरके पूर्व ही गढ़के दरवाजे-दरवाजे पर भील सेना फैल गई। एक दरवाजेके बाहर जादव भील भी घोड़े-पर बैठा हुआ इधर-उधर टहल रहा था।

'जादव नायक ! आप कहाँ से ? महाराजके शवको छोड़कर ?' दूदाने पूछा।

'दरवाजा बन्द है। मैं कोई ब्राह्मण पुरोहितको लेने आया था... और कुछ नहीं तो...विधिपूर्वक महाराजका अग्निसंस्कार तो हो जाय! किन्तु यहाँ तो एक दरवाजा भी खुला नहीं है...मालूम पड़ता है खबर लग गई...है'

'कहो जादव ! इडरकी गद्दी पर बैठना है ?'

'मुझे ? मैं कहाँ उत्तराधिकारी हूँ ?'

'भीलोंके मान्य तो आप अवश्य हैं !'

'किन्तु महाराजके पुत्रको छोड़...'

'पुत्रको जीवित रहने दूँगा तब न ?'

'ठीक ! किन्तु गद्दी पर बैठनेका मेरा साहस नहीं है। मैं एक साधारण व्यक्ति, आज्ञापालनमें अभ्यस्त एक साधारण सरदार हूँ। राजदरबारकी कूटनीतिज्ञतामें मैं पार नहीं पा सकता, दूदा !'

'फिर ऐसा अवसर हाथ नहीं आयेगा, नायक ! इडरकी असल गद्दी तो हमारी ही है न ?'

'बात सच है...किन्तु समय नाजुक आता जा रहा है...बौद्ध होना है या वैदिक, इसीमें हम आपसमें कट मर रहे हैं...विदेशी तो आते ही चले आ रहे हैं...इनमें अरब भी न जाने कहाँसे कहाँ पैठ गये हैं...मुझसे यह सब भला कहाँ निबह सकता है ?...मेरे लिए गद्दी नहीं है भाई !'

'यह आप जानिये फिर न कहना...मैं इडरका दरवाजा तोड़ता हूँ।'

'हाथी बिना नहीं टूटेगा। तुम्हारे पास हाथी है कहाँ ?'

'तब ?'

'पहाड़के बगलसे चले जाओ...पश्चिमकी तरफ रास्ता है...'

'दिखाओ हमें।'

'बहुतसे नायक जानते हैं...मुझे माफ करो। मुझे अपनी जागीरपर जाकर चुपचाप बैठने दो भाई!'

'देखो जादव नायक! जो हमारे साथ नहीं है वह हमारा दुश्मन...'

'जो करना हो करो...नाहक मेरे साथ झगड़ा न बढ़ाओ। राजपूतोंके साथ बात करनेके लिए भी किसीको छोड़ेगा या नहीं?'

'अभी राजपूतों के साथ आपको बातें करना बाकी है?'

'तुम समझते हो कि इडरगढ़ लेनेसे सब ठंढा पड़ जायगा?...मेरा कहना मानो। इडरके किले पर भले ही कब्जा कर लो किन्तु... महाराजाकी अन्तिम क्रियाके लिए पराशरको भेज दो...कुमारको गद्दीपर बैठा दो...तुम सेनानायक हो जाओ...पीछे जो होगा देख लिया जायगा...अभी गद्दी पर न बैठो...'

दूदाको जादवकी सलाह पसंद नहीं आई। इडर लेनेके पूर्व ही राज्यके राजभक्त इस भीलको नाराज करनेके खतरेको वह अच्छी तरह समझता था। जादवको नाराज करते ही भीलोंमें मतभेद हो जानेकी पूर्ण संभावना थी, इसे वह अच्छी तरह समझ रहा था। साथ ही इसका भी उसे पूर्ण विश्वास था कि मतभेद होनेपर जादवका पक्ष क्षणभरके लिए भी उसे चैनकी नींद सोने न देगा। जादवका मान भीलोंमें अधिक था; उसीकी सलाहसे भीलोंको सैनिक शिक्षा मिली थी; उसीके प्रयत्नसे राज्यमें भीलोंका मान बढ़ने लगा था; उसीके नेतृत्वमें भीलोंने एकत्र हो महाराजके तंबूका बहिष्कार किया था और उसीकी गुप्त सूचनानुसार भीलों द्वारा रात्रि-आक्रमणकी योजना गढ़ी गई थी।

स्वप्नमें भी उसने जो सोचा न था, कल्पना न की थी वह थी महाराज महेन्द्रकी मृत्यु!

भीलोंका उग्र समुदाय देखकर अरबोंको दी जानेवाली जंगलोंकी राजनीति सुसाध्य बन जायगी, ऐसी उसकी धारणा थी। कदाचित् महेन्द्रकी मृत्यु न हुई होती तो जादव स्वयं समुदाय एवं महाराजके बीच

पड़ इतना तो अवश्य ही करा सका होता। किन्तु ऐसे ही अवसरपर उसने आहत महाराजको पकड़ लिया। राज-विद्रोहकी स्वप्नमें भी उसे इच्छा न थी। उसकी राजभक्ति अडिग थी। केवल अरब-व्यापारियोंसे प्राप्त धनकी चमक महाराज महेन्द्रको इडरके जंगलोंको नष्ट करनेके लिए प्रेरित कर रही थी। यह उसे अच्छा नहीं लग रहा था...साथ ही अरबोंके अधिक आवागमनमें भी उसे भय दिखाई पड़ रहा था। जादवने, धर्माधिकारी पराशरने एवं अन्य राजपूत मंत्रियोंने महाराजको रोका भी, परन्तु जिद पकड़े हुआ राजा सलाहकी परवाह नहीं करता। अनेकों विजय प्राप्त महाराज महेन्द्रकी दृष्टि विशाल बन रही थी एवं अरबोंके संपर्कमें उन्हें समुद्रपर दिग्विजय भी कदाचित् दृष्टिगत हुआ हो। इसीसे अरबोंका आवागमन घटनेके बदले बढ़ता ही गया। पराशरका विरोध भी कम पड़ गया।

भीलोंको उनका जंगल अति प्रिय था। इसके कारण ही अरबोंके प्रति विद्वेष मेलेमें आकार धारण कर सका। समुदायके विद्वेषको क्षण मात्रमें हिंसक बननेसे रोकना कठिन हो जाता है। महाराजका समुदायके प्रति तिरस्कार दूदाके यौवन एवं महत्वाकांक्षाको सहन नहीं हुआ। उसका मन विचलित हो गया। इसके पूर्व कि वह क्या कर रहा है इसका उसे ज्ञान हो, उसके हाथसे तीर छूटा, महाराज गिरे...और घोर निद्रामें सो गये।

महाराजको सफलतापूर्वक मार गिरानेवाला व्यक्ति इडरगढ़को तोड़ डालनेका बल प्रदर्शित करे तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। दूदाने पर्वतश्रेणीकी ओर टेढ़े-मेढ़े रास्तेसे इडरमें प्रवेश करनेके लिए सेनाकी एक टुकड़ी भेज दी, साथही इडरगढ़का दरवाजा तोड़नेका काम भी चालू रक्खा। गढ़की रक्षा करनेवाली छोटी-सी सेना छिन्न-भिन्न होगई। इसमें कुछ भील भी थे जिन्होंने अपनेही भाइयोंके विरुद्ध हथियार उठानेसे इन्कार कर दिया। एक ओर पहाड़ी मार्गसे दूदाकी सेनाने नगरमें प्रवेश किया और दूसरी ओर गढ़का दरवाजा टूटा; कदाचित् बिना टूटेही खुल गया। दूदाको जैसा उसने सोचा था इडर लेनेमें अधिक कठिनाई नहीं हुई।

अत्यधिक गरम युद्ध राजमहलके पास हुआ। राजमहल एक छोटे किलेके समान था। इडरमें स्थित सेनाका मुख्य भाग राजमहलके रक्षणमें तैनात था। महारानी उसका संचालन स्वयं कर रही थीं। बुद्धि, शक्ति और रूपमें महारानीकी ख्याति व्यापक थी।

विजेतागण प्रायः विजय प्राप्त करनेके पश्चात् रूप प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं। रूप भी विजयचिह्न जैसा ही उन्हें जान पड़ता है। दूदाके हृदयमें धुंधली आशा जन्मी। इडरके साथ ही इडरकी महारानीपर भी क्यों न कब्जा कर लिया जाय! एक राजपूत युवतीको अधिकारमें करनेसे उसकी प्रतिष्ठा अवश्य ही बढ़ जायगी और भीलोंमें से निकलकर उच्च कोटिमें बैठनेका उसे मान भी मिल जायगा।

दोपहर बीत चला किन्तु राजगढ़ हिल नहीं रहा था। दूदाकी विकलता बढ़ती जा रही थी। दो-तीन दिन राजगढ़पर घेरा डाले पड़े रहनेसे एक भी मानवका खून बहाये बिना किला फतह हो जानेकी आशा थी। किन्तु विजयका क्षण आगे बढ़ाना किसीको अच्छा नहीं लगता। साथ ही भील सेनानायकके मनमें भय तो समाया हुआ था ही कि अति शीघ्र राजपूत सैन्यका सामना करना पड़ेगा। घेरा डालनेसे शायद उसे दो मोरचे लेने पड़ें, जो अधिक भयप्रद था। अतः राजगढ़ लेनेके लिए उसने विकट प्रयत्न किया। सैनिक कितने कट रहे हैं इस ओर उसका ध्यान नहीं था। उसके सैनिक प्रबल उत्साहके साथ किलेपर टूट पड़े।

किलेपर अपने सैनिकोंको उत्साहित करती हुई महारानी कभी-कभी दूदाको दिखाई पड़ जाती थीं। क्षात्रतेज एवं क्षात्रवेशसे विभूषित नारी दूदाके हृदयको अधिक वेगवान बना रही थी। राजगढ़-विजयकी प्रतिक्षण बढ़ती हुई उत्कंठाका संध्या समय अंत दिखाई पड़ा। सूर्यास्तके साथ ही गढ़का द्वार खुल गया। हर्षनाद करती हुई भील सेना द्वारमें वेगसे प्रवेश कर राजमंदिरकी ओर बढ़ी। सबसे आगे दूदा था। सामना करनेवाला कोई भी सैनिक दिखाई नहीं पड़ा। चुने सैनिकोंको साथ ले वह अंतःपुरकी

ओर बढ़ा। एक वृद्ध राजपूत द्वारपाल शस्त्र म्यानमें किये हुए द्वारपर खड़ा था।

'महारानी कहाँ हैं?' नंगी तलवार उठाकर दूदाने द्वारपालसे पूछा।

'अन्दर जा। बाहर बरामदेमें खड़ा रह, और चौकमें नजर डाल। तुझे महारानी चौकमें दीख पड़ेंगी।' वृद्ध राजपूतने उत्तर दिया। उत्तरमें तिरस्कार उमड़ा पड़ रहा था।

दूदा तुरन्त भीतर के खंडमें दौड़ा। खंडसे सटा हुआ बरामदा उसे दीख पड़ा। बरामदेमेंसे विस्तृत चौकमें उसने महारानीको भी देखा। थोड़ी ही देरमें बरामदेसे चौकमें उतरते ही महारानीके हाथ लग जानें की संभावना थी कि तत्क्षण देहव्यापी एक कंप के साथ दूदाने देखा कि चौकमें एक भयंकर चिता हू-हू शब्द करती हुई जल रही है।

चिताके पास ही महारानी खड़ी थीं। बरामदेमें खड़ा रहे अथवा चौकमें कूद पड़े, यह सोचनेकी शक्ति दूदामें नहीं थी। उससे न रहा गया। पहाड़ियाँ कूद जानेवाले दूदाके लिए बरामदेसे चौकमें कूदना बायें हाथका खेल था। महारानीको प्राप्त करनेके लिए इतना ही समय रह गया था। वह तत्क्षण चौकमें कूद पड़ा। साथही 'जय अंबे' की गर्जनाके साथ महारानीने अग्निप्रवेश किया और महारानीके साथ ही उनकी असंख्य सखियाँ भी अग्निमें कूद पड़ीं।

प्रज्वलित अग्निने सुस्वरूप रमणियोंको अपने अंकमें छिपा लिया। नारीकी इच्छा बिना नारी-देहकी इच्छा करनेवाला अग्निशिखाका ही अनुभव करता है। चितामेंसे अनेक सखियोंकी जलती हुई देहोंके बीचसे महारानीको प्राप्त करना अब सैनिकोंके लिए ही नहीं बल्कि दूदाके लिए भी असाध्य था। इडरगढ़ जीतनेका उसका विजयोत्साह ठंढा पड़ गया, भयंकर पराजय जैसे भावका दूदाने अनुभव किया। युद्धमें विजयी

वीरपर रणभूमिमें पड़ा हुआ प्रत्येक शव हँसता है ! दूदा लौटा । मुख नीचा किये हुए वह बरामदेमें आया । प्रज्वलित चिता पर एक बार पुनः निराशापूर्ण दृष्टिपात कर खंडसे होता हुआ द्वार पर आया । शस्त्र म्यानमें कर खड़ा द्वारपाल अब शस्त्र म्यानसे बाहर निकालकर खड़ा था । उसने तिरस्कारकी पराकाष्ठाको वाणीमें भरकर पूछा—'महारानीसे मिल आये दूदा ?'

राजपूतके अट्टहास्य ने दूदा को सावधान कर दिया ।

'राजकुमार कहाँ है ?' दूदाको स्मरण आया कि महारानीके पश्चात् अधिकसे अधिक मूल्यवान देह राजकुमारकी थी ।

'राजकुमार ? तुझे सौंपनेके लिए राजकुमार बताऊँ ?'

'नहीं बतायेगा तो······मौत का बाजार गरम है यहाँ !'

'इस बाजारका व्यापार हमारे लिए तो बहुत सस्ता है । राजकुमार तुझे नहीं मिलेगा ।'

'मैंने उसे ढूँढ़ निकाला तो ?'

'उस समय या तो शव बनकर राजकुमारके पैरके पास लोटते रहोगे अथवा उनकी पदधूलि चाटते हुए नजर आओगे !'

'रूपसिंह ! मरनेकी इच्छा है क्या ? वृद्ध हो·········'

'वृद्ध ? तेरे साथ अब शब्दसे नहीं·········शस्त्रसे ही बात करूँगा !' कहकर वृद्ध द्वारपाल रूपसिंह युवकोंको भी लज्जित करे ऐसी चपलतासे दूदापर टूट पड़ा । उसके जबरदस्त आक्रमणको दो-एक भीलोंने रोक न लिया होता तो दूदा की देह कटकर दो टुकड़े हो गयी होती ।

तत्पश्चात् रनवासके द्वार पर एक छोटासा पर महाभयंकर युद्ध प्रारंभ हुआ । वृद्ध रूपसिंह अकेला था तथापि संध्याके बढ़ते हुए अंधकारमें उसने असंख्य भीलों को घायल किया । अन्तमें एक जबरदस्त आघातने रूपसिंहको गिरा दिया । मृत्युका तनिक भी

दुःख मुखपर प्रदर्शित न कर गढ़में जीवित अन्तिम राजपूत भी शय्यागत हुआ।

राजकुमार को कहीं छिपा रखा है ऐसा ख्याल कर राजमन्दिर का कोना-कोना छान डालने वाले सैनिक निराश हुए। एक रात और दिन की मानसिक एवं शारीरिक थकावट उतारनेके लिए दूदाने अपने एवं अपने सैनिकोंके लिए मिष्टान्न तथा मिष्ट आसव मँगाया। नगरसे नर्तकियोंको पकड़ लाकर नाच-गाना भी कराया।

एक सुन्दर राजशय्या पर आधीरातके पश्चात् दूदा सोया। पहली बार ऐसी मुलायम शैय्याका उसको देहने अनुभव किया। उसकी कोमलता उसे अच्छी लगी। उसकी इच्छा हुई कि दो एक नर्तकियों को अपने शयनखण्डमें बुलाकर पासमें बैठाये। सहसा उसकी दृष्टि अभीतक जलती हुई चिता पर पड़ी। मुँह फेर कर वह सो गया।

दूसरे दिन इडर गढ़की गद्दीपर सबकी सम्मतिसे दूदा बैठा। कितनी पीढ़ियोंसे खोयी हुई इडर की गद्दी पर आज एक भील बैठा।

२

बडनगर की महिमा एक तीर्थक्षेत्र जैसी थी। वेद, उपनिषद् एवं दर्शनके अभ्यासी ब्राह्मणोंकी कुटियाँ स्थल-स्थल पर शोभायमान थीं। छोटी-छोटी पर्णकुटियोंके आस-पास विस्तृत खुली जगह रहती थी। इस खुले स्थानमें गौशालाके मंडप, विद्यार्थियोंके रहनेके लिए झोपड़ियाँ एवं यज्ञ-स्थान होते थे। पर्णकुटीके पास एक कूआँ तो अवश्य ही बना होता था। छोटी-छोटी तुलसी एवं पुष्पोंकी क्यारियाँ भी इस विस्तारमें सौन्दर्य-दर्शन कराती थीं! बीच बीचमें खाली जमीनके टुकड़ों पर अच्छी खेती भी होती थी। बडनगरका वैश्य वर्ग प्रत्येक

आश्रमकी खाली विशाल भूमि से उत्पन्न अन्नको लेनेके लिए तत्पर रहता था, जिससे आश्रमवासियोंका पोषण होता। श्रमजीवियोंको कृषिका साधन और वैश्यों को बचे हुए अनाजसे व्यापारका मौका मिलता था। तप करता हुआ ब्राह्मण, श्रम करता हुआ श्रमजीवी एवं वस्तुका परिवर्तन करने वाला वैश्य, इसप्रकार तीनों मिलकर संस्कार, श्रम और व्यापारको एक ही जीवनसे उत्पन्न होनेवाली पुष्पकी पंखुरियोंके समान संगठित बना रहे थे। पूरा विस्तार पुकारा जाता था ब्रह्मपुरी। परंतु इस ब्रह्मपुरीमें वेदाध्ययन भी होता था, खरल भी घोंटी जाती थी और तौलनेवाले भी तराजू लेकर घूमा करते थे। क्रियाएँ तीनों भिन्न थीं फिरभी एक दूसरेसे ऐसी हिलमिल गयी थीं कि ब्रह्मपुरीका मुख्य व्यवसाय तप और स्वाध्याय उनमें सर्वोपरि तैरता हुआ दीख पड़ता था। तदुपरि विद्यार्थियोंको धनुर्वेदका भी ज्ञान प्रत्येक आश्रममें कराया जाता था।

बडनगरने विद्वत्ताके अनेक चमत्कार प्रदर्शित किये थे जिससे लोग इसे चमत्कारपुर भी कहते थे। बौद्धोंको वादविवादमें पराजित करनेवाले कई विद्वानोंके आश्रम यहाँ थे। अध्ययन, यज्ञयागादि, एवं तपध्यानमें निमग्न ब्राह्मणोंके इस महास्थानकमें पराशर सुशर्मन् देव अपनी पत्नीके साथ वापस आये। उस समय नगरभरको अत्यन्त आनंद हुआ। यहाँके ब्राह्मणोंकी विद्वत्तासे आकृष्ट हो अनेक राजस्थान आग्रह कर, विनती कर, ब्राह्मण कुटुम्बोंको बडनगरसे बुला ले जाकर अपने राजमें आदरपूर्वक बसाते थे। इडरके महाराज महेन्द्रके पिता अपराजितको बौद्ध भिक्षुओंपर अत्यधिक श्रद्धा होने लग गई थी। बौद्ध भिक्षुओंके लिए वे विहार बनवाने लगे थे एवं बौद्ध धर्म स्वीकार करनेके लिए भी वे तत्पर होगये थे। उस समय अपराजितके एक दक्ष मंत्रीने स्वयं आकर बडनगरसे एक परम विद्वान् एवं तपस्वी ब्राह्मणको अपने साथ इलदुर्ग—इडर भेजनेकी प्रार्थना की। सभी ब्राह्मणोंने मिलकर एक आवाजसे ब्रह्मचारी पराशरकी ओर निर्देश किया। यह ब्राह्मण युवक वयसे बहुत छोटा था। अभी

अभी उसने अध्ययन पूरा किया था। उसका विवाह भी अभी नहीं हुआ था। तथापि संपूर्ण ब्रह्मपुरीका भूषणरूप यह पराशर, वयोवृद्ध ब्राह्मणोंका भी मान्य बन गया था।

मंत्री पराशरको इलदुर्ग ले गया ; बौद्धोंके साथ शास्त्रार्थके लिए एक सभा बुलाई गयी जिसमें अल्पवयस्क पराशरने अपनी विद्वत्ता एवं ब्रह्मचर्यके प्रभावसे ऐसी सुंदर छाप डाली कि बौद्ध विद्वान निरुत्तर हो गये। सभाने पराशरको विजय वरमालसे विभूषित किया और महाराज अपराजितने इस किशोरके वयका विचार न कर उसे धर्माधिकारीके पदपर नियुक्त किया। राजकुमार महेन्द्रके अध्ययन एवं सहवासका भार भी पराशरको सौंपा।

महेन्द्र और पराशर लगभग समवयस्क थे। अपराजितकी मध्यवय पहुँचनेके पूर्व ही मृत्यु हो गई और महेन्द्रने गद्दीपर बैठते ही अपने सहवासी मित्र पराशरका मान पहलेसे भी अधिक बढ़ा दिया। महेन्द्रकी विजय अभिलाषा जाग्रत करनेवाला पराशर बहुधा युद्धमें भी साथ जाया करता था। साथ ही मठ-मंदिरोंकी स्थापना और विद्वत्ताके प्रचारमें उसने राज्यको अधिक अग्रसर किया। भील जैसी शूरवीर पर जंगली प्रजाको भी उसने सुसंस्कृत बनाना प्रारंभ किया और उनकी युद्धवृत्तिको प्रभावकारक उपयोगमें लानेके लिए उनका एक सुशिक्षित सैन्य खड़ा करनेकी प्रारंभिक राय भी पराशरने ही दी। एक सुशील एवं विदुषी ब्राह्मण कन्याके साथ विवाह कर महेन्द्रकी महारानीको संस्कार-सखी भी दी।

परन्तु महाराज महेन्द्रकी विजय-अभिलाषा उन्हें अधीर बना रही थी। अरबोंको लकड़ी देकर अरबी ढंगके जहाजोंमेंसे समुद्रपारके देशोंको देखनेकी उन्हें उत्कट अभिलाषा थी। साथ ही बुद्ध, आर्य, खिस्ती तथा यहूदी धर्मसे भिन्न ऐसे एक महाधर्म इस्लामकी विजयको वे प्रत्यक्ष देखना चाहते थे। इससे भील नाराज हुए। अकस्मात् बलवाकर बैठे; जिसमें

महेन्द्रकी मृत्यु हुई तथा इडरका राज्य गोहिलोंके हाथसे एकाएक निकल गया। महारानीने अग्निस्नान किया। राज्यधर्माधिकारी इलदुर्ग छोड़कर चले गये। एकत्र होनेका विचार करनेवाले राजपूत सरदारगण इस अचानक आ पड़नेवाली विपत्तिसे कैसे उद्धार हो, इसका विचार करनेके लिए भूगर्भमें समा गये।

महाराज महेन्द्रके शवका अग्निसंस्कार कर पराशर इलदुर्ग न जाकर बडनगरके अपने प्राचीन आश्रममें चले गये। पत्नी श्रीलेखा और एक तीन वर्षका बालक उनके साथ थे। इलदुर्गका पतन, महेन्द्रकी मृत्यु, यह घटना भारतवर्षभरमें प्रसिद्ध हो चुकी थी। पराशर सकुटुम्ब बडनगरमें जब पहुँचे तब संपूर्ण ब्रह्मपुरीको आनंदके साथ ही यह आश्चर्य भी हुआ कि वे कैसे बचकर आ सके। महाराज महेन्द्रके वधके साथ महेन्द्रके परममित्र एवं गुरु पराशरका भी असंस्कारी भीलोंके हाथ कचूमर निकल जाना चाहिये ऐसा मान बैठे हुए बडनगर-निवासियोंने पराशरको देख आनंदातिरेकका अनुभव किया।

'पराशर! बड़ा ही तेजस्वी बालक तू ले आया!' वृद्ध ब्राह्मण पराशरके पास खेलते हुए बालकको देख कहते।

'श्रीलेखा! पुत्रजन्मकी सूचना भी तूने नहीं दी? तीन वर्षका बालक हो जानेपर भी?' श्रीलेखाकी कोई सखी पूछती।

'यह तो अब बधाई देगी!...' कहकर कोई वृद्धा नारी मज़ाक करती।

तीन वर्ष पूर्व कोट्यार्कजीके यज्ञमें जब मैं गया था...तब...आपने बताया नहीं कि आपको पुत्र भी है...' कोई मित्र कहता।

'तो पुत्रका प्रदर्शन करता फिरे, क्यों?' दूसरा मित्र उत्तर देता।

और पराशर पंडित सबसे कहते 'प्रभुने दिया है यह पुत्र...'

'क्या आपकी उम्र निकल गई? अभी प्रभु आपको दूसरा पुत्र भी देगा!' कहकर साहस देनेवाले मित्रको चकित करते हुए, पराशर कहते 'मुझे दूसरा पुत्र है ही नहीं!'

'तो शायद आप रहेंगे भी नहीं, क्यों ? कितने ही ब्राह्मणोंको राजकाजने ब्रह्मत्वविहीन बना दिया ।'

बात सच थी । बडनगरके विद्वान ब्राह्मणोंकी सभी जगह अच्छी माँग थी । इस प्रकार बडनगरसे गये कुछ तेजस्वी ब्राह्मणोंका धीरे-धीरे राजकाजके साथ ही सैन्यमें भी उपयोग हो जाता । कितनीही बार वृद्धोंके मनमें यह भय भी उत्पन्न हो जाता कि भारतका राजद्वार ब्रह्मपुरीको ब्राह्मणविहीन कर देगा क्या ! परंतु पराशरने कहा, 'इच्छा तो नहीं है जानेकी...इस बालककी शिक्षा पूर्ण होने तक । आगे प्रभुकी इच्छा !'

सचमुच पराशर ने न जाने कितने ही आमंत्रणों को लौटा दिया, जिसमें सर्वप्रथम तो दूदा नायकका ही आमंत्रण था । इडर की गद्दी पर बैठनेके पश्चात् राज्यारोहणके समारोहमें योग देनेके लिए दूदा ने पराशरको मानपूर्ण पत्र लिखा एवं धर्माधिकारीके पद पर उनकी नियुक्ति का परवाना भी साथ ही भेजा । राजकर्ता व्यक्तियों में परिवर्तन होने से प्राचीन शासन प्रणालीमें तनिक भी परिवर्तन न किया जायगा इसकी भी घोषणा राज्य भर में कर दी गई थी एवं राजपूत राजकुटुम्ब जैसी रहन-सहन एवं व्यवस्था भी रखने का दूदा ने विचार कर लिया था । इसीलिए दूदाने पराशरको याद किया था ।

परन्तु पराशरको अब अपना आश्रम एवं आश्रममें मिलने वाली शांति को छोड़ने की तनिक भी इच्छा नहीं थी । उसने स्पष्ट रूप से यह कहला भेजा ।

किन्तु साल में तीन-चार मास पराशर दूर-दूर की यात्रा पर निकल जाया करते थे । यह यात्रा कभी काशी, हरिद्वार और अमरनाथ की होती; अथवा साँची, बुद्धगया और कामरूपकी तरफ होती । कभी सौराष्ट्र में सोमनाथ तथा द्वारका होते हुए कच्छ के नारायण सरोवर में स्नान कर सिंधुमुखसे भी दूर पश्चिममें जाकर हिंगलाज माताका दर्शन कर

आते; तो कभी नासिक, कांची और रामेश्वर होते हुए लंकाकी अशोक-वाटिका की परिक्रमा कर आते।

इन यात्राओं को छोड़ बाकी समय पराशर अपने आश्रम में ही व्यतीत करते थे। वहां वे अध्ययन करते, दीपिकायें लिखते, शंका समाधान करते साथ ही अपने बालक पुत्र की अपूर्व देखरेख भी रखते।

पराशर एवं श्रीलेखाके बडनगरमें आनेके पश्चात् ब्रह्मपुरी अथवा यों कहिए कि संपूर्ण बडनगरकी चमक अत्यधिक बढ़ गई थी। शास्त्राध्ययनके साथ ही शस्त्र-संचालनकी शिक्षा भी विद्यार्थियोंको अत्यधिक प्रिय हो गई थी। श्रीलेखाकी प्रवृत्तियोंने स्त्रियोंको भी जाग्रत कर दिया था। स्त्रियोंके व्रत तथा उत्सवोंमें श्रीलेखाके कारण नई जान आ गई थी। बडनगरकी ब्राह्मण कन्याओंका नृत्य-संगीतका शिक्षण रुक गया था। उसे श्रीलेखाने पुनः आरंभ किया। नृत्योंमें भी खञ्जर, कटार एवं तलवार भाले आदिके साथ होनेवाला नारी-नृत्य सबको अत्यंत प्रिय था।

कभी-कभी शास्त्रार्थके लिए भी पराशरको बुलावा आता। कभी वे जाते। कभी उसे अस्वीकार कर देते। ऐसी अवस्थामें शास्त्रार्थ बडनगरमें ही होता।

बालकका नाम भोज था। भोजकी वय ज्यों-ज्यों बढ़ती गयी त्यों-त्यों उसकी चपलता और बल भी बढ़ता गया। ब्रह्मकुमारकी जिह्वामें शुद्धि अवश्य होनी चाहिये परंतु उसके हाथकी सफाई किसी प्रवीण क्षत्रीयवीरको सुशोभित करनेवाली थी। उसमें परिश्रम करनेका शौक अत्यधिक था। दौड़ना, वृक्षपर चढ़ना, खोदना, लकड़ी काटना, व्यायाम करना, तैरना ऐसे ऐसे परिश्रमके कार्य इतनी फुर्तीके साथ करता कि लोग देखकर चकित हो जाते। छः सात वर्षकी वयतक उसे पराशर श्रीलेखाकी नजरसे बाहर कभी नहीं होने देते थे। किंतु इस वयमें बालकका शरीर इतना चपल बन जाता है कि माँ-बापकी दृष्टि उसके लिए अपर्याप्त होती है। एकबार शर्मिष्ठा तालाबके किनारे पराशर ध्यानमग्न बैठे थे;

जब बालक भोज मित्रोंके साथ ग्रामसीमाके बाहर खेलता हुआ निकल गया।

'अरे! दौड़ो, दौड़ो! भोजको कोई उठाये लिये जा रहा है!' जिधर बालक खेल रहे थे उस ओरसे चिल्लाहट सुन पड़ी। पराशरका ध्यान भंग हो गया और वे उसी ओर देखने लगे। तत्काल खड़े हो वे उस ओर दौड़कर बालकोंके पास पहुँच गये।

'कहाँ है भोज?' उन्होंने बालकोंसे पूछा?'

'वह देखिए कोई उसे लिये जा रहा है...।' बालकोंने उत्तर दिया।

पराशर दौड़कर वहाँ पहुँचे तो भोज और एक अनजान मनुष्यके बीच हाथापाई हो रही थी। चीख सुनकर दौड़कर आते हुए पराशर तथा आसपासके आश्रमोंमें काम करनेवाले श्रम जीवियोंको देख वह व्यक्ति भोजको छोड़ भाग खड़ा हुआ। भोजके हाथमें छोटा-सा बिछुआ था। वह छोटा-सा शस्त्र ताजे रक्तसे तर था। पराशरको देखते ही भोज दौड़कर उनके अंकमें समा गया।

'क्या हुआ बेटा?' पराशरने पूछा। भोजने एक छोटी-सी कहानी कह सुनाई कि खेलते हुए बालकोंको एक मनुष्य मिश्री देकर इस रास्तेसे ले आया। भोजभी सबके साथही आया किंतु मिश्री उसने नहीं ली। फुसलानेवाले व्यक्तिने भोजसे इसका कारण पूछा।

'किसीका दिया हुआ मैं नहीं खाता...और आम रास्तेपर तो नहीं ही।'

'अच्छा; तुम्हें खानेको नहीं दूँगा। कहो और क्या लोगे? पैसा... पुस्तक...आभूषण!'

'मैं हाथ फैला नहीं सकता। मेरा व्रत अयाचक है...।' इतना सुनते ही वह व्यक्ति भोजको उठाकर दौड़ पड़ा।

'मुझे कहाँ ले जा रहे हो?' भोजने पूछा।

'देख तो सही! तुझे मेरे साथ ऐसा अच्छा लगेगा...।'

'मुझे नहीं जाना है ! मुझे यहीं उतार दो ।'

'अरे, तुझे एक राजाके पास ले चल रहा हूँ...महलमें रहना, घोड़ेपर चढ़ना और अच्छा अच्छा वस्त्र पहनना...।'

'मुझे यह सब कुछ नहीं चाहिये, मुझे तुरंत उतार दो, नहीं तो...'

'ओ मूर्ख ! यहाँ उस भिखारी ब्राह्मण पराशरके यहाँ तुझे क्या मिलेगा ?'

इतना सुनते ही भोजने हाथमें लिया हुआ बिछुआ उसे उठाकर ले जानेवाले व्यक्तिके कंधेमें भोंक दिया। छःसात वर्षका बालक ऐसा आघात करनेकी शक्ति रखता है, यह विश्वास न कर उस व्यक्तिने भोजको कंधेसे नीचे उतार दिया और देखा तो सचमुच बालकके हाथमें रुधिरसे रंगा हुआ छोटा-सा हथियार था।

'इसे फेंक दे और चल मेरे साथ जल्दी !' उस व्यक्तिने कहा।

'अपने माता-पिता को छोड़ मैं किसी की आज्ञा नहीं मानता।'

उस व्यक्तिने पुनः भोजको पकड़नेका प्रयत्न किया। उसे अस्त्र-शस्त्र व्यवहार करने की मुमानियत पहलेसे ही न रही होती तो कदाचित् बल-प्रयोग कर भी भोज जैसे छोटेसे बालकको वह उठा ले जानेमें समर्थ हुआ होता। परंतु भोजपर अस्त्र-शस्त्र अथवा घातक बलप्रयोग करने की मनाही होनेसे सशस्त्र बालकको पुनः उठानेमें वह असमर्थ रहा। भोजने दूसरी बार उसे जख्मी किया और इतने ही में पीछेसे दौड़कर आनेवाले मनुष्यों को देख वह लुटेरा भाग गया।

'ऐसी जोखिम माथे ली जाती है ? तुझे उसने जख्मी कर दिया होता तो ?' पराशरने भोज की बात सुनकर पूछा।

'आपको भिखारी कहनेवाला वह कौन ?' भोजने आँखें तरेरकर कहा।

यह सुनकर वहाँ पर एकत्र मनुष्य एवं बालक प्रसन्नतासे चिल्ला उठे 'वाह वाह ! ठीक किया ! शाबाश भोज ! ब्राह्मणको भिखारी कहने वालेको यथोचित ही सजा दी !'

'किंतु तू है कितना बड़ा, बेटा ?' पराशरने पूछा।

'चाहे जितना बड़ा होऊँ । आपको उसने गाली क्यों दी ?' मुँह बनाकर छोटा-सा भोज बोल उठा ।

सबके हास्य एवं आनंदके बीच पराशरने उसे अपनी उँगली पकड़ा दी । सब लोग आश्रम की ओर लौटे ।

संपूर्ण ब्रह्मपुरीमें बात फैल गई कि पराशरके पुत्रका हरण कर कोई उठाये लिये जा रहा था । श्रीलेखा का हृदय धड़कने लगा । कुटीरके बाहर आकर उसने नजर की तो पराशर और भोजको आते हुए देखा । ताँबेका जलपूर्ण लोटा लाकर श्रीलेखाने भोजको द्वारके बाहर खड़ा रख तीन बार लोटा माथे पर घुमाकर पानी बाहर गिरा दिया और भोजको गोदमें उठा लिया ।

'मेरा राजकुँवर जैसा भोज ! तेरे आसपास शिवकवचकी रचना हो !' माता बोली ।

'राजकुँवर ? मैं नहीं, मा ! मैं तो तेरा बेटा हूँ !'

श्रीलेखा भोजके मुखकी ओर देखने लगी । उसकी आँखोंसे टप-टप आँसू टपकने लगे । उसने पुत्रके मुखसे घटनाका विवरण पुनः सुना । मा के हृदयने पिताकी अपेक्षा अधिक अधीरता का अनुभव किया । और एकांत होने पर श्रीलेखाने पराशर से अत्यंत चिंतातुर स्वरमें पूछा 'क्या होगा भोजका ?'

'बूढ़ा समझ गया है...कभी का । मुझे दिये जाने वाले निमंत्रण का मुख्य उद्देश्य भोजको पकड़ना था ।

'किंतु अब तो उठा ले जाने का प्रयत्न हो रहा है...मेरा तो प्राण आधा हो गया है...क्या होगा ?'

'दृष्टि रखना...जोखिम तो है ही ।'

'आश्रम छोड़ना न पड़े ।'

'आवश्यक होने पर यह भी करेंगे ।'

'कहाँ जाकर रहेंगे ?'

'प्रभु की दुनिया विशाल है !'

सचमुच पराशरके लिए अपना आश्रम छोड़नेका समय आ पहुँचा। एक रात्रिमें पराशरकी कुटीरके बाहर दो अश्वारोही-पुरुष आ पहुँचे। द्वारके पास आँगनमें ही पराशर ध्यानसे तारा, नक्षत्र तथा राशियों की गतिका निरीक्षण कर रहे थे। आकाश-दर्शन भी मनुष्य को ध्यानस्थ बना देता है।

'कौन ?' तारा-निरीक्षण करते हुए पराशर ने पूछा।

'मैं, जादव !'

'आह ! नायक आप ? इतनी दूर ? पधारिये।' पराशरने कहा।

'बैठनेका समय नहीं है। मैं सावधान करने के लिए आया हूँ।'

'कहिये, क्या चेतावनी है ?'

'वडनगर छोड़ दीजिये। जोखिम बढ़ती जा रही है...बिलकुल सिरपर झूल रही है।'

'हम दोनोंने इतना तो बहुत पहले ही समझ लिया है। किंतु हमने यह नहीं समझा था कि वह इतना सन्निकट है। खैर...कल प्रभातमें निकल जायँगे'

'कहाँ जाइयेगा ?'

'पावागढ़, गिरनार, आबू, अरावली ! क्या कोई गुफा हमें शरण नहीं देगी ?'

'नागद्रह...नागदाके पहाड़ पर पधारें तो कैसा ?'

'और तो कोई बात नहीं, इडर की सरहद पासही पड़ेगी...'

'वहाँ दूदा कुछ कर न सकेगा। वहाँकी नागप्रजा भीलप्रजासे कहीं बढ़-चढ़कर है और उनका क्षत्रिय सोलंकी राजा दूदाको डरा धमका भी रहा है।'

'अच्छा, दूदा की योजना क्या है ?'

'बडनगर पर आक्रमण कर आपको तथा भोजको पकड़ने की ।'

'और सब कैसा चल रहा है, इडर में ?'

'ठीक ही चल रहा है...क्षत्रियों का अनुसरण करनेमें हम उनसे हीन नहीं है...दूदा बिलकुलही मूर्ख नहीं है ।'

'सच है, यह आगे बढ़ेगा, यह मैं जानता था । जादव नायक ! मैं चाहता हूँ कि हमारे चारों वर्ण क्षत्रिय बन जायँ ।'

'ऐसा ?'

'आपके भील महाराज महेन्द्रको अच्छी तरह समझ नहीं सके । भारतवर्षके सिरपर मँडराता हुआ भय ऐसा वैसा नहीं है...जिस प्रकार अरब मित्र बन यहाँ आते हैं वैसेही हमें भी अपने आसपासके प्रदेशोंको देखना चाहिये और सबको मिलकर भारतकी रक्षा करनी चाहिये ।'

जादव कुछ बोला नहीं । पराशर के कार्यमें वह सम्मति पहलेसे ही देता चला आया था । भीलों का मन न दुखे ऐसी विनती करनेवाला जादव इडरके गोहिलोंका राजभक्त मित्र और सरदार था । महाराज महेन्द्रके कालकवलित होनेका समाचार इडरमें उसीने पराशरको दिया था तथा राजकुमारको इडरसे भाग जानेकी सुविधा कर दी थी । यह प्रमाणित करनेका प्रमाण न होनेसे, दूदाके गद्दी पर बैठनेमें कोई अड़चन न डालनेसे और उसे छेड़नेसे भीलप्रजामें ही आपसमें विरोध उत्पन्न हो जानेके भयसे, साथही इडरमें इससे आंतरिक विग्रह खड़े हो जानेके पूर्ण विश्वाससे, जादव-नायक से दूदा कुछ बोल नहीं रहा था और पहले ही जैसा उसका मान बनाये रखे था । दूदा यह अच्छी तरह जानता था कि गोहिल राजाके प्रति एकबार स्वीकार की हुई राजभक्तिकी जादव जीजानसे रक्षा करेगा !

दूदाको ऐसे राजभक्तों का भय स्वभावतः सदैव बना रहता था । बडनगरमें राज्यके उत्तराधिकारीका पालन-पोषण हो रहा है इसका भी दूदाको विश्वास हो गया था । पराशरको समझा बुझाकर, लालच देकर, अन्तमें

लाचारीवश भय दिखाकर भी भोज हाथमें आ जाय तो दूदाके मार्गका काँटा दूर हो जाय। ऐसा उसका विश्वास था। इसके लिए वारंवार वह प्रयत्न भी कर रहा था। साम-दामके वशीभूत न होनेवाले पराशर पर अब दूदाने बल-प्रयोग प्रारम्भ कर दिया था। भोजको उठा ले जाने की कुछ युक्तियोंमें विफल होनेपर दूदा सैन्य लेकर बडनगरपर चढ़ाई कर पराशर तथा भोजको पकड़कर तत्पश्चात् उनको नष्ट कर देने की योजना को बड़ी तेजीसे अमलमें ला रहा है यह समाचार देनेके लिए स्वयं जादव-नायक अपनी जागीरसे गुप्तरूपसे छिपकर आया था। भोज तथा पराशरका कुशल समाचार लेनेके लिए वह चार-छः मासपर बडनगरकी ओर किसी न किसी बहानेसे चला आया करता था।

जादव और उसके साथीका सम्मान, सत्कार कर रातमें बिदाकर देनेके पश्चात् पराशरने श्रीलेखाको अपने पास बुलाया। सौंदर्य एवं दीप्तिपूर्ण श्रीलेखा पर पराशरका अत्यधिक प्रेम और मान था। क्षणभर श्रीलेखाके रूपको मानो पराशर पी रहा हो ऐसा देख रमणी-संकोचका अनुभव करती हुई श्रीलेखाने हँसते हँसते पूछा, 'आज तुमकी रात है या आपकी।'

बडनगरमें ब्रह्मपुरीकी शिष्टता पतिपत्नीके प्रत्यक्ष संबोधनमें आपका-ही उपयोग करती थी। पतिको मानार्थी बहुवचन में संबोधन करने की प्रथा प्रत्यक्षमें व्यापक होती ही है; परन्तु बडनगरका ब्राह्मण संस्कार पति द्वारा पत्नी के संबोधनमें भी बहुवचनका उपयोग प्रचलित करनेमें समर्थ हो सका था। पत्नी जिस प्रकार पतिको 'आप' संबोधन कर बहुवचन की उच्चश्रेणी पर बैठाती वैसेही पति अपनी पत्नी को भी 'आप' के संबोधन की कक्षामें बैठाकर पत्नीके समानाधिकार को स्वीकार करता था।

परन्तु जाहिर शिष्टताका आवश्यक संबोधन आत्मीय शिष्टतामें बदल भी जाता है। पतिपत्नीके बीच मान और प्रेम दोनों होना चाहिये, यह सच है परन्तु मानार्थ-सूचक 'आप' शब्द प्रेमोर्मिमें 'तू, तुम' बन

जाता है। वह शिष्टता ब्राह्मणोंमें भी यह उतनीही मान्य है। श्रीलेखाको पराशरकी आँखमें 'तू' दीख पड़ा जिससे हँसकर उसने यह प्रश्न किया।

पराशर की आँख एकाएक बदल गई। प्रेमका ज्वार शांत पड़ गया और उसके स्थानमें महागांभीर्यका एक शिखर आँखमें आकर खड़ा हो गया हो, ऐसा लगा। तथापि पराशरने मुस्कुराते हुए कहा, 'रात सभी 'तू'की...परन्तु आजकी रात्रि हमारी अन्तिम रात भी हो सकती है।'

'अगमनिगम की...समझमें न आनेवाली...कोई बात है?'

'तेरी समझमें न आये ऐसा कोई शास्त्र या दर्शन मैंने पढ़ा नहीं है। ऐसी कोई बात हो भी नहीं सकती जो तेरी समझमें न आ सके।'

'व्याख्यान पीछे करना, कहना क्या चाहते हो, वह कहो? प्रथम रात्रि अथवा अन्तिम रात्रि?...तुम योगी हो, संन्यासी हो, खाखी हो, यह मैं प्रथम रात्रिसे ही जानती हूँ...'

'विवाहकर मैंने कभी तुम्हें सुखी नहीं बनाया।'

'सुख प्राप्त करने के लिए मैंने विवाह नहीं किया। पराशरको प्राप्त करने के लिए ही तुम्हारे साथ मैंने विवाह किया।'

'कदाचित्...कदाचित् नहीं...'

'क्या? स्पष्ट बोलो तो सही?'

'इस पराशर को तुझे त्याग देना पड़ेगा।'

'क्यों? किसलिए? सब हो सकेगा किंतु यह नहीं!'

'मेरे कारण संपूर्ण बडनगर तहस-नहस हो जायगा।'

'तुम्हारे कारण? तुमने ऐसा कौनसा पाप किया है?'

'मैंने और तुमने विवाहके पश्चात् साथही साथ पाप-पुण्य किया है। भोजको हम अपने साथ ले आये, यह दूदाकी दृष्टिमें महा पाप है।'

'तब?'

'भोजको दूदाके हाथ में सौंप दूँ तो बडनगर बच सकता है।'

'दुश्मनको सौंपनेके लिए मैंने इसे पाल-पोसकर बड़ा नहीं किया है।'

'तो इसे लेकर आज ही रातमें अभी भाग जाना मेरे लिए आवश्यक है।'

'भागनेमें तुम्हारे ही समान मैं भी फुर्ती रखूँगी।' हँसकर श्रीलेखा बोली।

'परंतु...मैं संन्यास लेनेका विचार कर रहा हूँ...खाखी बन जाना चाहता हूँ।'

'क्या ? किसलिये ? मेरी इच्छा बिना ! संन्यास कैसा ? तुम्हारे लिए खाख कैसा ? अभी तुम्हारी उम्र ही कितनी है ?'

'तुम्हारी इच्छा, तुम्हारी आज्ञा बिना कुछ न होगा; किंतु मुझे विश्वास है कि जो आज्ञा मैं तुमसे मागूँगा वह अवश्य मिलेगी। जब विराग उत्पन्न हो वही संन्यस्त होनेकी उम्र !...और संन्यस्तकी तटस्थता प्राप्त किये बिना अब कोई निपटारा होने वाला नहीं, ऐसा मेरा मन कह रहा है। अतः संन्यास...'

श्रीलेखा पराशरको देखती रही। उसकी दृष्टिमें 'हाँ' था या 'न' था इसे पराशर समझ नहीं सका। दोनोंके हृदयमें एक दूसरेके लिए प्रेमका पारावार उमड़ता ही रहता था, किन्तु इस प्रेमके साथ ही साथ परस्परकी मानवताके लिए उच्च धारणा कभी कम न हुई थी। प्रेम भी मानवताका उल्लंघन न करे ऐसा परस्परका मान वह क्षण उपस्थित कर रहा था जो संपूर्ण जीवनका अर्क बन रहा था।

तेजपूर्ण, लालीसे भरा हुआ श्रीलेखा का मुख एकदम शांत पड़ गया। उसके मुखसे उद्‌गार निकला : 'तुम्हारी जैसी इच्छा...मैं बीचमें रोड़ा नहीं बनूँगी...'

इतना कहते-कहते श्रीलेखाके नेत्र चौधार अश्रु बरसाने लगे और उसने अपने अंचलसे आँखें ढक लीं।

संन्यास लेनेके लिए तत्पर पराशरने देखा कि उसकी पत्नी अन्तिम भोग अर्पित कर भी पराशरकी इच्छा पूर्ण कर रही थी। प्रेम इससे बढ़कर उच्च स्वरूप क्या ले सकता है ? पत्नीको पार्श्वमें बैठाकर पराशर

उसके अश्रु पोंछने लगे। उनका हृदय बोल रहा था:– 'मेरी श्री ! श्रीलेखा ! मेरी जीवन लक्ष्मी !'

उसके स्पर्शसे भी यही ध्वनि निकल रही थी : 'मेरी श्री ! श्रीलेखा मेरी जीवन लक्ष्मी !'

जीभ पर आकर उच्चारणके लिए मथते हुए हृदयको उसने प्रोत्साहन नहीं दिया। उच्चारण न मिलते हुए भी उमड़ते हुए शब्दसे परे बना हुआ भाव पति-पत्नी न समझ सकें, यह असंभव था। दोनोंको देह पर घूमते हुए हाथके अन्तिम स्पर्श-सुखका अनुभव करते हुए देख समय भी ठहर गया था। परन्तु श्रीलेखा सावधान हुई। उसने आँखें पोंछ डालीं। पतिको गौरसे देखा। पतिका प्रेम-गांभीर्य असीम है, इसका उसने अनुभव किया। वह हँसी। दोनों हाथसे पतिका आलिंगन कर उसने पतिका मुख चूम लिया और दूर हटकर कहा : 'अब नहीं रोकूँगी, जो तुम्हें योग्य जान पड़े करो; जहाँ इच्छा हो भ्रमण करो। भिक्षा कोई न दे तो मेरे पास आना।'

'मेरे साथ अभी सच्चिदानन्द मठमें चल सकोगी ?'

'चलो, वे मेरी सम्मति अवश्य ही मागेंगे।'

पति-पत्नी पर्णकुटीसे बाहर निकले। आश्रमके विशाल खुले स्थानको पारकर ब्रह्मपुरीके विस्तृत विभागको पीछे छोड़ दोनोंने शिवालयकी एक अर्द्धखुली धर्मशालामें प्रवेश किया। अर्द्धरात्रि बीत चुकी थी। धर्मशालामें एक चौकी रखी हुई थी। चौकी के नीचे जमीन पर व्याघ्र-चर्म बिछा हुआ था। उसपर पद्मासन लगाये हुए एक वृद्ध किन्तु सुशोभित देहधारी संन्यासी ध्यानमग्न बैठे थे।

संन्यासीने आँखें खोलीं।

पति-पत्नीने दण्डवत किया।

'कल्याण हो दोनोंका ! पराशर, इस समय कैसे ?'

'आपकी शरणमें आया हूँ, स्वामीजी ! संन्यास दीक्षा चाहिये;

इसी समय !' पराशरने कहा ।

सर्व आश्चर्योंको घोलकर पी गये हुए वृद्ध संन्यासीको भी सचमुच आश्चर्य हुआ ।

'क्या कह रहे हो तुम, पराशर ? तुम्हारी वय कितनी ? अभी तुम्हें कई विवादोंको जीतना है, कई संग्रामों को पार करना है । होश हवास तो ठिकाने है न ?' सच्चिदानन्द स्वामीने कहा ।

'अब जो जयपराजय मिलनी हो, जो संग्राम पार करने हों, वे सब संन्यास की छायामें ही ! अहंभाव एक किनारे रखकर ! संसार से परे बनकर ही ।'

'कोई कारण ? श्रीलेखा को सम्मतिके लिए खींच लाया ?'

'खींचकर मैं लायी ही नहीं जा सकती, स्वामीजी ! मैं अपनी खुशी से आई हूँ !'

'मेरी आँखें वृद्ध हो गई हैं अवश्य किन्तु अभी तेजहीन नहीं हुई हैं । तेरी आँखों में से गिरे और पोंछे हुए अश्रुबिंदुओं के आँकड़ों को गिनकर बताऊँ क्या ?' वृद्ध स्वामीने सहज स्मितसे पूछा ।

पराशर और श्रीलेखा दोनोंका हृदय हिल उठा । श्रीलेखा की आँखों में अश्रु की चमक आकर अटक गई । हृदयको स्थिरकर श्रीलेखा बोली : 'महाराज ! आपतो सर्वज्ञ हैं ! क्षणभर मेरा हृदय आपेमें नहीं रहा, यह सच है किन्तु मेरे निजी सुखकी अपेक्षा अधिक सुख सर्वत्र, सबको देनेके लिए संन्यास लेना पड़े तो 'ना' कहकर मैं क्यों पाप मोल लूँ ?'

'संन्यास लेकर क्या करना है, वत्स ?'

'संन्यासियों की रचना करनी है, जोगी बनाना है, खाखी बनाना है; हृदय से सच्चे ! आजका भारत इसके बिना जीवित नहीं रह सकता ।' पराशरने कहा ।

'समझ में नहीं आया । तू स्वयं किस सच्चे संन्यासी से कम है ?'

'राजा, धनी और साधु सभी संन्यास लें । इसके बिना मानव-जाति

का उद्धार मुझे दिखाई नहीं पड़ रहा है।'

'किन्तु इतनी जल्दी क्या है ? इसमें भी मुहूर्त देखना पड़ेगा... समारंभ करना पड़ेगा...आश्रम बदलना सहज नहीं।'

'सहज कर डालिये, स्वामीजी ! एक राजवंशकी रक्षा करनी है। बचाये हुए राजपुत्र को सच्चा प्रजापालक वीर बनाना है और इस वीरके अन्तरसे एक राजसंन्यासी का सृजन करना है। नहीं तो भारत यवन प्रदेश बन जायगा।'

'समझ गया, जो शास्त्र समयानुसार नहीं चलता वह शास्त्र नष्ट हो जाता है।'

सच्चिदानन्दने पराशरको संन्यासकी दीक्षा देकर अपना गेरुवावस्त्र उन्हें पहना दिया और आशीर्वाद देते हुए कहा : 'मुनि बनना...योग्य जान पड़े तब तक। मौनमें बड़ा बल है। पूर्ण संन्यास पीछे ले लेना। हारित के नामसे विख्यात होना...तू तो संन्यासियों का भी संन्यासी है। तुझे शिक्षा देने वाला गुरु ढूँढ़नेसे भी नहीं मिल सकता। भारतवर्षमें ऋषि, मुनि, संन्यासी एवं साधु की कमी न पड़े।'

सच्चिदानन्दने पराशर को संन्यास न देकर मुनि-कक्षमें रखा।

पराशर भी समझ गये। अभी संन्यासी बनकर भी ऐहिक कार्य करना था। सच्चिदानन्दने पूर्ण संन्यास नहीं दिया यह भी ठीक ही किया। पूर्ण संन्यासमें ऐहिक कर्म पाप बन जाता है। केशलुंचन नहीं, केश वृद्धिकी दीक्षा मिली।

गुरुकी पदवन्दना कर दोनों व्यक्ति अपने आश्रमकी ओर चले। सूर्योदयके पूर्व पराशरको चला जाना था। जादव नायककी सूचनानुसार नागदा ही जानेका निश्चय उन्होंने कर लिया था—अकेले नहीं, बल्कि भोजकुमारके साथ; प्रकट नहीं बल्कि छिपकर। पत्नीको आश्रममें छोड़कर।

तीन-चार वर्षके समयमें जो नहीं हुआ वह अब होने वाला था। दूदाने भोजको पकड़ कर मरवा डालने का निश्चय किया था। इस

निर्णयके पीछे जबरदस्त सक्रिय जाल बिछाया गया था। सरलतम साधुका वेशपरिवर्तन। पराशरने दिखावटी नहीं बल्कि सच्चा वेशपरिवर्तन कर डाला। आश्रमकी सीमामें पहुँचते ही पराशरके एक विद्वान मित्र जो रातमें ही उनसे मिलने के लिए आये थे, मिले।

'तुम कहाँ गये थे ? यह वेश कैसा ?'

'मुझे यहाँ से भाग जाने की आवश्यकता है।'

'यही कहने के लिए तो मैं इस समय आया हूँ। तुम्हें ढूँढ़ने वाले सैनिक कुछ ही दूर पर पड़े हुए हैं...किन्तु तुम्हें डरनेकी जरूरत नहीं है।'

'क्यों ? मैं जाऊँगा नहीं तो यह नगर क्षेत्र नष्ट-भ्रष्ट कर दिया जायगा।'

'तुम समझ रहे हो कि इस क्षेत्रके ब्राह्मण बिलकुलही निर्माल्य हैं ? मैं तो तुम्हें खबर देने और संपूर्ण ब्रह्मपुरीको जागृत करनेके लिए दौड़ता चला आ रहा हूँ।'

'अर्थात् ?'

'सशस्त्र सामना करूँगा। यह ब्रह्मपुरी किसीभी राजाकी सत्ताको नहीं मानती। यहाँके ब्राह्मण युद्ध करना भी जानते हैं। यह तुमसे कहनेकी आवश्यकता नहीं...उतार कर फेंक दो यह गेरुआ...इस क्षेत्रको तुम्हारी बहुत जरूरत है।'

'मेरे कारण यह ब्रह्मक्षेत्र युद्धक्षेत्र बने यह मैं कभी नहीं चाह सकता...इस समय जाता हूँ...पीछे आऊँगा...श्रीलेखा यहीं रहेगी...' पराशर मित्रके साथ इस प्रकार बातें करते हुए आश्रममें पहुँच गये।

आश्रममें पहुँचते ही सोये हुए भोजको पराशरने बड़ीही सावधानीसे उठाया परन्तु चंचल बालक जाग गया।

'मुझे कौन उठाये लिये जा रहा है ?...मेरा बिछुवा...' भोज चिल्ला उठा।

'चुप रहो। हम जल्दी भाग चलें ; अच्छा हुआ तुम उठ गये।' पराशर बोले।

पराशरका गेरुआ वस्त्र देख भोज चौंक उठा। उसे पकड़नेके लिए, उसे समझा बुझा कर ले जानेके लिए किये गये हुए प्रयत्नोंका उसे स्मरण था। ऐसी ही कोई विपद पुनः आ खड़ी है सोच पराशरके साथ जानेके लिए वह तत्पर हो गया ; परन्तु अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे श्रीलेखा जब उसे बिदा करनेके लिए तैयार हुई तब तो भोज शंकित हो पूछ बैठा—'मा ! आप नहीं चल रही हैं ?'

'नहीं बेटा मैं पीछे आऊँगी।'

'आपके बिना मुझे कहीं नहीं जाना है।'

'यहाँ रहनेसे जीवन भय है। अपने पैर जल्दी बढ़ाओ।' पराशरने कहा।

'अं हं ! मा बिना नहीं।'

भोजको श्रीलेखा व पराशर युक्ति प्रयुक्तिसे समझाने लगे। दोनोंने उसे लालच भी दी। उसे सहज धमकी भी दी ; किन्तु भोज टससे मस नहीं हुआ।

'मा बिना मुझे कहीं जाना ही नहीं है !' उसका एक ही जवाब था।

'मेरा, मा का एवं तुम्हारा तीनोंका ही मस्तक यहाँ रहनेसे कट जानेकी पूर्ण संभावना है।' पराशरने भयका स्पष्ट रूप सामने रखा।

'मेरा बिछुवा है...मा कहती थी कि उन्हें भी तीर चलाने आता है... और आप तो संध्योपरांत ब्रह्मपुरीके बालकको तलवारका दावपेंच सिखाते हैं...सबको बुलाइए। देखें किसका साहस है कि हम पर अँगुलीभी उठा सके ?' भोजका उत्तर था।

'बहुत बड़ा सैन्य आ रहा है।'

'आने दीजिये ! आपही कहते थे न कि युद्धमें मरनेसे स्वर्ग मिलता है ?' भोज बोला।

'एक सच्ची बात तुम्हें बताऊँ ? तुम स्वयं ही इडर गढ़के बालराजा हो ! तुम्हें अपनी गई हुई गद्दीपर बैठानेका मैंने प्रण ले रखा है। मेरे और तुम्हारे जीवित न रहने पर यह कैसे संभव है ?'

भोज थोड़ा सोचमें पड़ गया। पिता कभी झूठ बोलकर उसे धोखा दें, यह असंभव था। इसकी वह स्वप्नमें कल्पना भी नहीं कर सकता था। इस समय उसके मनमें शंका उत्पन्न हो गई कि यहाँसे ले जानेके लिए पिताजी कोई कपोल कल्पित कहानी तो नहीं कह रहे हैं ?

'मुझे राजा नहीं बनना है...मा ! तू मेरी मा नहीं है ?'

मातृत्व एवं राजगद्दीकी तुलना होने पर मातृत्वका पलड़ा भारी पड़ गया।

श्रीलेखाके अंकमें छिपकर हाथसे निकलजाने वाले मातृत्वको भोज दृढ़ रज्जुमें बाँध रहा हो इस प्रकार श्रीलेखाके गलेसे लिपट गया। माताको खोकर हारी हुई गद्दीको प्राप्त करनेकी बालकको तनिक भी इच्छा नहीं हुई। गद्दीकी अपेक्षा उसे अपनी मा अधिक प्रिय थी।

पराशर की भी आँखें डबडबा आईं। श्रीलेखाकी तो वाचा ही जाती रही। मित्रने सूचना की : 'तो श्रीलेखाको भी साथ ले लो। देर न करो।'

'तो मैं तुरन्त साथ चलूँगा, पिताजी।' भोज बोला।

'श्रीलेखा ! तो अब तू भी साथ ही चल...कुछ लेनेमें देर मत लगा...मुझे दूर घोड़ोंकी हिनहिनाहट सुनाई पड़ रही है।' पराशरने कहा।

श्रीलेखाके शरीरमें नवीन चेतना आयी। खाखी बने हुए पतिके पास भी रहना उसे भाता था। उसने एक वस्त्र और एक दर्भासन मात्र लिया।

'चल, बेटा ! मैं तेरे साथ ही चल रही हूँ...' श्रीलेखाने कहा।

'मुझे गद्दी मिले तो भी तू मेरी मा, क्यों ?'

'हाँ, अवश्य ही, !'

'गद्दी स्वयं न लेकर तुझे बैठाऊँ तो कैसा, मा ?'

'तू आगे बढ़ ! मूढ़ ! गद्दीपर तो तेरी बहूको बैठाऊँगी।' हँसकर माताने कहा।

'अं हं...' माताका हाथ पकड़ कर चलते हुए भोज बोला।

'आश्रमसे बाहर पैर रखते ही काफी घोड़ों की हिनहिनाहट सुन पड़ी। पराशर जरा अटके। मित्रने कहा, 'जाना हो तो आगे पैर बढ़ाओ, मैं इन सैनिकोंको रोकूँगा।'

'युद्ध करके ?'

'नहीं, अत्यन्त आवश्यक न होने तक ब्राह्मण झगड़ा मोल नहीं लेता। मैं क्या करूँगा, यह मुझपर छोड़ दो। दो-तीन घड़ी तो मैं इन्हें ब्रह्मपुरीमें ही घुमाऊँगा...पश्चात् शिवालय है...शर्मिष्ठा सरोवर है...पर्वत है...तुम्हारे पीछे मैं किसीको जाने नहीं दूँगा।'

आभार प्रदर्शित कर पराशर आगे बढ़े। साथ में श्रीलेखा और बालक भोज थे। नगर बाहर पैर रखते-रखते रात्रि बीत गई। उषःकाल की लाली पूर्व दिशामें फैल गयी और नगरमें अश्वोंका संचार होते हुए भी उन्होंने सुना।

उन्होंने पैरोंका वेग बढ़ाया। श्रीलेखा अथवा बालभोज दोनोंमें से कोई भी पराशरकी गतिमें अवरोध उत्पन्न करता हो अथवा उसे शिथिल बनाता हो, ऐसा जान नहीं पड़ा। एक घड़ी बीती, दो घड़ी बीती। पीछे सैनिक आते हुए जान नहीं पड़े। फिर भी उन्होंने अपनी गति ढीली नहीं की। पहाड़ी प्रदेश एवं वनवाटका आश्रय लेते हुए सूर्य सिर पर आ गया। तीसरी घटिका भी बीत गई। पीछे कोई आ रहा हो इसका तनिक भी आभास नहीं मिला।

पराशरने रुककर पूछा। 'अब थक गये होगे! थोड़ा ठहर जाँय ?'

'मैं नहीं थका हूँ...मा थकी हों तो बैठ जाँय।' भोजने उत्तर दिया।

'तेरे इस पिताके साथ थकावटका नाम मैंने कभी जाना ही नहीं।' श्रीलेखा बोली।

'तो मैं आगे बढ़नेके लिए तैयार हूँ। मुझे तो थकावट कभी आती ही नहीं। मनमें आता है कि दौड़कर दुनियाका चक्कर लगा आऊँ!' भोज बोला।

'इसीलिए तो मैं तुझे केवल ले जा रहा था...किंतु तू ऐसा मातृ-भक्त निकला कि...' पराशरने कहा

'यह सच है। जहाँ माका मुख न दिखाई दे वहाँ मैं नहीं जा सकता। मा साथमें हो तो मैं महासागर पार कर जाऊँ...पिता जी...!'

'देख, अब मुझे पिताजी मत पुकार। साधु संन्यासी होनेके पश्चात् कोई सगा सम्बन्धी नहीं रह जाता।'

'आपको भले ही न रहे...हमें तो रहेगा ही?' भोजने उत्तर दिया।

श्रीलेखा खिलखिला कर हँस पड़ी।

'क्यों हँसती है मा? पिता जी संन्यासी हुए हैं, हम या तू तो नहीं!'

'न, न, न; ! तू तो बेटा, मेरा बाल, मेरा भोज...'

'बोल वत्स! बालभोज रहना है या कालभोज बनना है?' बैठकर सबको बैठाते हुए पराशरने पूछा।

'मा के समक्ष बालभोज, आपके सामने कालभोज—आप कहेंगे तो!'

पराशर-हारित मुनि बालक का मुख देखते रह गये।

थोड़ी देर आराम कर सब लोगोंने पुनः यात्रा प्रारंभ कर दी।

३

तीस-चालीस कोसकी यात्रा कुछ अधिक लंबी नहीं कही जा सकती। मार्गमें अनिर्धारित स्थलोंसे पाँच-पाँच दस-दस मानवों का समूह आकर मिलता। पराशरको नमनकर ठहरने का प्रबंध कर देता और कमसे कम बातें कर आगे का मार्ग दिखा अदृश्य हो जाता।

ये मानव साधु सदृश दीख पड़ते। उनका गेरुवा स्वच्छ वस्त्र, सिर पर जटा, हाथमें कड़ा, सिंदूर की बिंदी और स्कंध पर त्रिशूल देख,

उनका भयानक वेश उन्हें वरद मुद्रावाले विष्णुकी अपेक्षा तृतीय नेत्र खोलने के लिए उत्कंठित रुद्रके अधिक संनिकट ले जा रहा था।

छोटे भोजको ये साधु बहुत भाये। 'ऐसी पोशाक मुझे पहननेके लिए मिले तो कैसा!' उसके मनमें इच्छा होती। तीसरे दिन भोजसे न रहा गया।

'मा! मैं ऐसा वस्त्र धारण करूँ तो?' साधुओं को देख उसने अपनी माता से पूछा। पराशरने भी उसकी व्यक्त इच्छा सुन हँसकर कहा, 'तू भी भारतवर्ष का महान् साधु होगा!'

'मुझे बहुत अच्छा लगेगा।' भोजने उत्तर दिया।

'इसीलिए तो मैं तुझसे पहले साधु बना...तुझे महान् साधु बनाने के लिए ही!' पराशर ने थोड़ा गांभीर्य से कहा।

'तब मैं कमर में घुँघरू भी अवश्य बाधूँगा।'

बहुतसे साधु कमरमें घुँघरू बाँधे हुए थे जो भोजको अधिक भाया। बहुत दिनोंसे साधुका वेश धारण करनेकी इच्छा इन घुँघरुओंके घन-घन शब्दसे ही होती थी। उसे कहाँ पता कि महाराज महेन्द्रके पुत्रके लिए महेन्द्रका मित्र पराशर अनेकानेक कल्पनाओंको सत्य बना रहा था! इनमेंसे एक कल्पनाने सत्यरूप धारण किया साधुत्वमें—संन्यस्तमें। यों देखा जाय तो पराशरका जीवन साधु-जीवन ही था। परंतु सब संबंधोंसे परे खाखीपन पराशरका वर्षोंका आदर्श था। अपने मित्र महाराज महेन्द्रसे अनेक बार कहा था कि मैं अलख जगाना चाहता हूँ; किन्तु महेन्द्रने उन्हें रोक दिया था। फिर भी इसमेंसे एक परिणाम तो अवश्य निकला कि पश्चिमी किनारेपर खाखियोंके अनेक मठ स्थापित हो गये एवं पराशरका इन मठोंसे धर्माधिकारी रूपमें संबन्ध भी स्थापित हुआ।

श्रीलेखाको भी अभीतक उनका संन्यासके प्रति आग्रह समझमें नहीं आ रहा था। वह स्वानुभवसे जानती थी कि पराशरका गृहस्थजीवन

साधुजीवन ही था। उनके स्वभावकी तटस्थता एक विरागीको सुशोभित करनेवाली थी; यद्यपि किसी भी संबन्धमें कभी यह तटस्थता निरवधानता, प्रेमकी उष्णता अथवा निष्क्रिय वाग्विलास नहीं बनती थी। फिर भी पत्नी तथा पुत्रके प्रति उनका प्रेम एक अति अनुरागी प्रणयीके समान और वात्सल्यपूर्ण पिता सदृश था। केवल पत्नीके रूप, देह और यौवनके प्रति उन्होंने कभी लोलुपता प्रदर्शित नहीं की। संयमपूर्ण उनका जीवन पत्नीकी उपस्थिति अवश्य चाहता था परन्तु पत्नीके शरीरका सतत उपयोग नहीं।

ऐसे साधुचरित पुरुषको एकाएक संन्यास लेनेकी इच्छा हो यह श्रीलेखा जैसी समवयस्का पर पतिपरायणा नारीको अच्छा नहीं लग सकता था। उसे स्वयं भी पतिके देहोपयोगकी अधिक लालसा न थी तथापि संन्यस्तकी अलिप्तता पत्नीकी उपस्थितिको दूर कर दे, यह उसे नहीं भाया। पतिका साथ देनेकी, पतिका मार्ग सरल करनेकी सतत चिंता रखनेवाली पत्नी सर्वकालके लिए वियोगकी कल्पना भी नहीं कर सकती। संन्यास ऐसा वियोग सामने ला रहा था। इच्छा न होते हुए भी पतिके मार्गको सानुकूल बनानेके लिए पतिके सन्यस्त होनेमें उसने सम्मति भी दे दी। उसका मन नहीं मानता था। फिर भी पतिके प्रति अटूट विश्वास उसके मनको यह भयंकर आघात सहन करनेके लिए प्रेरित कर सका। हृदय मानता न था! इतनी शीघ्रतासे संन्यास ग्रहण करनेके पीछे पतिका क्या हेतु है, यह श्रीलेखा न समझ सकी।

साधुओंका समुदाय मार्गमें ज्यों-ज्यों मिलता गया त्यों-त्यों श्रीलेखाका आश्चर्य भी बढ़ता गया। इस प्रकार राजमार्गमें मिलनेवाले साधुओं एवं पराशरके संन्यासके बीच क्या कोई संबन्ध है? गृहस्थ पराशरको मानकी कमी न थी। विद्वत्ता एवं वैराग्यमें कुछ न कुछ अंतर तो अवश्य ही होता है। विद्वत्ताको मान सत्कार अवश्य मिलेगा परन्तु वैराग्यको पूजन मिलता है। पूजनके लिए पराशर संन्यासके प्रति आकृष्ट हुए होंगे?

असंभव ! अवश्य ही इससे भी अधिक गंभीर बात होनी चाहिये। भोजको गद्दीपर आसीन करनेमें संन्यास सहायक हो तो अवश्य ही पराशर उसका आश्रय ले सकते हैं। परन्तु पराशरके संन्यास एवं भोजके राज्यारोहणमें कोई संबन्ध प्रत्यक्ष दीख नहीं पड़ रहा था। परमार्थके लिए जीवन व्यतीत करनेवाले पराशरको मुक्तिका लोभ तो असंभव था। मुक्ति तो उनकी कभी की दासी बन चुकी थी।

तब पराशरने संन्यास क्यों लिया ? पूछ लिया जायगा किसी दिन ! अब तो नागदाका जंगल भी आ गया था। जंगल पार करते ही नगर भी आ जायगा। मेदपाट, मेवाड़के पर्वतोंको छिपा देनेवाला वन पराशर नामधारी ब्राह्मणको आश्रय देने योग्य था। नदी, नद, नाले पानीसे भरे हुए थे। गुफायें मानव एवं पशुको आश्रय-स्थान दें, ऐसी बड़ी और अनुकूल थीं। एक गुफामें से भैरवका स्मरण करानेवाला एक विकराल खाखी निकल आया। उससे पराशरने कहा 'आजकी रात यहीं एक साथ व्यतीत करेंगे।'

'आजकी ही रात क्यों ?' श्रीलेखाने पूछा।

मेरी तपश्चर्या यहींसे प्रारंभ होती है। भोजके साथ तुमको नागदामें रहना है। सभी व्यवस्था हो गई है। बारह वर्षकी तपश्चर्याके अंतमें यदि भारतवर्षकी आकृति बदल सका तो ठीक...नहीं तो...तपकी अवधि बढ़ानी होगी...! मुझे और तुम्हें दोनोंको...तप अकेले मुझसे नहीं हो सकता ; तुम्हारा तप पहले है।'

श्रीलेखाने कुछ उत्तर नहीं दिया। खाखीने थोड़ा फल लाकर उनके सम्मुख रख दिया। भोजको तो जंगल बहुत पसंद आया। मनुष्य मकानमें रहता ही क्यों है ? उसकी समझमें नहीं आ रहा था। वृक्षोंकी पंक्तियाँ इच्छानुसार छाया देतीं। टेकरी एवं घाटियाँ छत बन सूर्यका दर्शन करातीं। जलपूर्ण नदियाँ सतत पानी देतीं। तब घर—छोटीसी कौड़ी जैसा घर—क्यों बनाया जाय ? भोजका खेलना कूदना कभीका शुरू हो

गया था। खरगोश, हिरन, बारहसिंघे तथा नील गायका दौड़ना भी उसे बहुत पसंद आ गया था। नवीन खाखी भैरवनाथके साथ उसने मित्रता भी बाँध ली। बाघ, सिंह देखनेकी इच्छाका उत्पन्न होना स्वाभाविक था। उसने पूछा भी, 'यहाँ बाघ आता है या नहीं, बाबाजी?'

'हाँ' बाबाजीने उत्तर दिया।

'और सिंह?'

'इन जंगलोंमें सिंह नहीं है?'

'सिंह देखना हो तो?'

'तो गिरनार जाना पड़ेगा?'

'आपने सिंह देखा है?'

'हां'

'बाघ आये तो आप क्या करेंगे?'

'कुछ नहीं।'

'आपको मार डाले तो?'

'मार डाल भी सकता है।' मरनेका जरा भी भय न हो इस प्रकार खाखीने उत्तर दिया।

ऐसा विकराल खाखी जो सहज ही इस प्रकार बोल रहा है उसे इतनी सरलतापूर्वक बाघ मार डालेगा। यह बात भोजके मनमें बैठी नहीं।

'आप यहाँ बराबर रहते हैं।'

'हाँ'

'अब तक बाघने आपको मार क्यों नहीं डाला?'

खाखीके गंभीर मुख पर सहज मुस्कुराहट फैल गई। एकांतमें कठिन तपश्चर्या करनेवाले खाखीसे इस प्रकारका प्रश्न अभी तक किसीने नहीं पूछा था।

'यह तो बाघ जाने!' खाखीने बालक की जिज्ञासा संतुष्ट न की।

'आप मुझे बाघ दिखा सकते हैं ?'

'हाँ, जितने चाहो।'

'कब दिखाइयेगा ?'

'आज ही संध्या समय ?'

खाखीने भोजको संध्या समय बाघ दिखा भी दिया। संध्या कब हो और बाघ देखनेको कब मिले इस धुनमें भोजने मन ही मन दो-तीन बार संध्याका अनुमान कर लिया। अन्तमें भोजका हाथ पकड़कर वृन्दावेलिके बाहर ले जाकर खाखीने एक साधारण टेकरीकी ओर संकेतकर कहा, 'देखो वह बाघ है।'

भोजकी दृष्टि शिलाके शिखरपर चिपक-सी गई। पश्चिममें अस्ताचलगामी सूर्यने बाघको मानों रंगीनपट पहना दिया हो ऐसा स्पष्ट दीख पड़ा! विजित सृष्टिका अवलोकन करनेवाले विजयी वीरके समान वह अकेला बैठा हुआ चमकती हुई आँखोंसे खाखी और भोजको देख रहा था। थोड़ी देर देखनेके पश्चात् उसने सिर फेर लिया, पूँछ हिलायी और पुनः भोज तथा खाखीकी ओर देखा। बालकको बाघ देखनेमें बड़ा रस आया। खाखी साथमें था जिससे भयका कोई कारण न था। कदाचित भोज अकेला पड़ जाय तो! इस विचारने उसके मनमें कोई भय सञ्चार नहीं किया। उसे अपनी दौड़नेकी शक्तिपर अत्यधिक विश्वास था। बाघसे भी अधिक द्रुत वह दौड़ सकता है, यह उसने मान लिया। यदि दौड़ न सका तो पेड़ पर तो अवश्य ही चढ़ जायगा। बाघका पहुँचना असंभव था। किसी भी पेड़ पर चढ़ जानेकी शक्ति भोजने बहुत पहले प्राप्त कर ली थी। परन्तु वह दौड़कर भाग जानेका या पेड़ पर चढ़ जानेका विचार ही क्यों कर रहा था ? बाघका सामना क्या नहीं किया जा सकता ? बाघकी अपेक्षा मनुष्यमें अधिक बल क्या नहीं हो सकता ? और भोजका बिछुवा ! किसीका भी सामना करनेकी शक्ति

देने वाला यह शस्त्र उसके पास रहते हुए किसीसे भी डरनेका कारण उसे न था। बाघसे तो नहीं ही।

'यह कब जायगा?' भोजने पूछा।

'थोड़ी देरमें...शायद अभी चला जाय।' खाखीने उत्तर दिया।

'हाँ, हाँ, खड़ा हो गया। पता भी नहीं चला कि यह कब खड़ा हुआ! कैसा उतर रहा है? धीरे धीरे! मानो कहींका महाराजा हो!'

'तुम्हें बाघ अच्छा लगा?'

'जी हाँ...इधर आयेगा!'

'डर लगता है?'

'जरा भी नहीं, मुझे उसे सहलानेका मन हुआ।'

खाखी हँसा। उसका विकराल मुख आनन्दसे खिल उठा।

बाल भोजके पीठ पर हाथ रख उसने कहा, 'बाघ इस ओर नहीं आयेगा।'

'क्यों?'

'हमसे डरता है?'

'बाघ! हमसे...मनुष्यसे डरता है?'

'मनुष्य बड़ा भयंकर है।'

'बाघसे भी बढ़कर?'

'हाँ।'

'मैं मासे पूछूँगा।'

'चलो...अन्धेरा हो रहा है...थोड़े फल लेते चलें।'

रात्रिमें बाघ देखनेकी इच्छा पूरी कर लेनेके पश्चात् भोजको प्रातःकाल एक निश्चय करना पड़ा।

'तू यहाँ रहेगा या माके साथ जायगा?' पराशर ने पूछा।

'आप कहाँ रहेंगे?' भोज ने पूछा।

'मैं यहीं रहूँगा।'

'हम सब एक साथ यहीं रहें तो कैसा ?'

'ऐसा संभव नहीं है...इसीसे पूछता हूँ ।'

'तो मैं माके साथ जाऊँगा ?'

'ठीक ! मैं समझ ही रहा था !' पराशरने हँस कर कहा ।

'तब क्या आप कभी आयेंगे ही नहीं ?'

'कुछ वर्षों तक यहीं रहूँगा ।'

'हम कहाँ रहेंगे ?'

'पास ही नागदा है...वहीं अपनी माके साथ तुम रहना ।'

'तो कोई बात नहीं । मैं यहाँ आ तो सकूँगा ?'

'यहाँ आने की क्यों इच्छा हो रही है ?'

'क्यों न हो ? आपसे नहीं तो और किससे मिलनेकी इच्छा होगी ?'

'मैं पराशर मिट गया, यह तो तुझे मालूम है ?'

'नहीं, अब आप क्या बन गए ?'

'हारित-मौनी-मुनी ! उसे छोड़ दूसरा नाम मेरे लिए युक्त नहीं ।'

'हारित मुनि कह कर न बुलाऊँ तो आप नहीं बोलेंगे ?'

यह प्रश्न निरुत्तरित ही रहा और श्रीलेखा के साथ ही भोजको लेकर खाखी नागदा के लिए रवाना हो गया ।

नागदा भी ब्रह्मपुरी थी । नगर एवं गाँवोंमें ब्रह्मपुरी अवश्य ही रहती थी । सभी जगह दो-चार ब्राह्मणों के कुटुम्ब तो रहते ही थे । नागदा शहर था, जिससे ब्राह्मणों की बस्ती वहाँ अधिक थी । बौद्धों के के मठ भी पर्याप्त संख्यामें थे । जहाँ कहीं बौद्धों के मठ होते वहाँ किसी न किसी कारण ब्राह्मण अवश्य ही आकर बस जाते थे । बडनगर क्षेत्रके भी कितने ही ब्राह्मण यहाँ आकर बस गये थे एवं नागहृद में ही आकर अपने विद्या व्यवसाय में प्रवृत रहते थे ।

बौद्धों के मंत्र-तंत्र एवं पूजन-विधिकी जटिलताके समक्ष स्थल-स्थल

पर वेदोपनिषदके अभ्यासियोंके सुबोध जप-तप एवं तपश्चर्यादि कर्म प्रजाको अधिक आकर्षक प्रतीत होते। पूजनविधिके इच्छुक मनुष्यके लिए शंकरके छोटे-मोटे देवालय की स्थापना अधिक उत्तेजक होती। कला रसिकोंको विष्णु-पूजन अधिक प्रिय होता जा रहा था। साथ ही वाम-मार्गमें बह जाने वाले बौद्धोंको योनिलिंगके शिवपूजनमें अपनी गुप्त पूजनविधिके स्वीकृतिका भास भी होने लगा था। आर्य संस्कृति अथवा वैदिक संस्कृतिके पुनरुद्धारका कार्य ब्राह्मणोंका जीवन व्यवसाय बन रहा था एवं पुनरुद्धारका कार्य सचेष्ट बनानेके लिए ब्राह्मणोंने भी अपना अपना निवासस्थान व्यापक बनाया, क्षेत्रों की स्थापना की, अभ्यासको आकर्षक बनाया, जीवनमें तपश्चर्या व्याप्त कर धर्म-प्रचार अथवा धर्म हृदयमें साधारण रूपसे भी बीचमें आने वाले धन, वैभव, सत्ता एवं व्यवहारके स्पर्शको त्याज्य समझा।

इतनेही से उनकी महत्ता एवं सत्ता बढ़ गई। नागद्रहमें भी बौद्ध कुटुम्बोंमें से बहुतसे कुटुम्ब शिव-विष्णुकी उपासना करने लग गये थे और सत्ताधीश एवं धनिकोंने प्रार्थनाकर उन्हें बसाया था। वैभव एवं सत्ताका त्यागकर संस्कारको ही महत् समझने वाला ब्राह्मणवर्ग स्वाश्रयी और परम उदार बन जाय तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। नागद्रहकी ब्रह्मपुरीके स्वच्छ परंतु वैभव विहीन विस्तारमें श्रीलेखा, भोज एवं खाखीको एक छोटी-सी झोपड़ी रहनेके लिए दे दी गई। यह थी तो बांस-फूस, मिट्टीसे बनी हुई कुटीर किन्तु इसके चारो ओर विशाल आँगन थे और आँगनके बाहर विस्तृत मैदानथे जिनमें कुछ वृक्ष, तुलसी और पुष्पोंके पौधे जगह-जगह पर लगे हुए थे। बीचमें कूँआ था और दो-तीन वृक्षोंको घेरकर स्थान-स्थान पर मिट्टीसे निर्मित स्वस्थ चबूतरा बना हुआ था जो उपवनमें बैठनेके लिए व्यवहृत किया जा सकता था। पर्णकुटीके पास एक अधखुली दूसरी झोंपड़ी थी जिसमें वत्सवती दो गायें नवागन्तुकोंको आश्चर्यचकित नेत्रोंसे देख रही थीं।

झोपड़ीमें दर्भसे बना आसन और चटाई रखी हुई थी। श्रीलेखाके दालानमें पैर रखते ही अधेड़ उम्रकी गौरवर्णीया महिला सन्तरीने बाहर निकलकर स्वागत करते हुए कहा, 'आओ, बहन! तुम्हारे लिए कबका घर तैयार है, एक रात देरसे आईं।'

श्रीलेखा इस सन्तरीको देखती ही रह गई। सन्तरीने भोजको खींचकर उसका मुख चूम लिया। खाखीको नमस्कार किया। चटाईपर बैठनेका आग्रह करते हुए श्रीलेखासे कहा, 'मेरा नाम भागीरथी है। मैं भी मूल बडनगरकी हूँ। विवाहके पश्चात् भाग्यने बडनगर न आने दिया। तुम तो मुझसे बहुत छोटी हो। तुम्हारा पीहर श्री क्षेत्रमें होनेसे हम लोगोंका परिचय न हुआ...किन्तु बिना देखे भी तुम्हारा और पराशरका नाम सुनती रही...सारसकी जोड़ी टूट गई! भगवानकी जैसी इच्छा...अब यह घर भी तुम अपना ही समझो। हम दोनों एक साथही रहेंगी...'

'घरमें और कोई...' श्रीलेखाने उस वात्सल्यपूर्ण मध्यासे पूछा।

'घरमें दूसरा कोई नहीं है। पति देवने बहुत दिन पूर्व ही संन्यास ले लिया है...बालक भी कोई नहीं...! चलो, यह तुम्हारा पुत्र मेरा भी बन जायगा।'

भागीरथीने श्रीलेखाको संपूर्ण घर दिखा दिया। केवल दो-तीन कोठरियाँ, दालान और एक आँगन, बस।

भोजको गाय बहुत पसंद आई। बछड़े और भी अधिक आकर्षक। बछड़ोंके साथ उसका खेल भी प्रारम्भ हो गया। अपने बछड़ोंके साथ खेलनेवाले बालकके प्रति प्राथमिक अश्रद्धासे देखनेवाली गौओंने भी भोजका निःस्वार्थ प्रेम समझ उसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित किया। श्रीलेखा समझ गई कि उसके एवं भोजके आगमनकी सूचना ब्रह्मपुरीके प्रबंधकों को पराशरने पहलेही दे दी थी। पराशरके एक वृद्ध सहाध्यायी सन्यासीकी पत्नीके साथ उसके रहनेका प्रबंध भी ठीक कर दिया था।

ब्राह्मणोंकी उपजीविकाका भार प्रायः समाज उठा लेता था। उनकी उपजीविकाका मानदंड भी इतना साधारण था कि समाजको वे भाररूप न प्रतीत होते। ब्राह्मणोंको अन्न वस्त्र, धन दिया जाता। जमीन अर्पितकी जाती। उनके मकानके पासकी विशाल खुली भूमिपर वैश्य खेती करते। ब्रह्मभाग प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणोंके लिए छोड़ दिया जाता। बदलेमें समाज के कार्य, धर्म, कथावार्त्ता, ज्योतिष एवं वैद्यकके सामाजिक कर्तव्योंका ब्राह्मण पालन करते। पाठशालामें व्यावहारिक, दार्शनिक एवं धार्मिक शिक्षणका अत्यंत महत्वपूर्ण उत्तर-दायित्व भी ब्राह्मणही वहन करते।

समाजके शारीरिक व मानसिक आरोग्यका संरक्षण करते हुए आनंद, कला एवं ज्ञानका समाजके सर्व घटकोंमें संभार भरनेवाले ब्राह्मण अपनी उपजीविकाका मानदंड साधारण रखें और समाजका ब्राह्मणेतर वर्ग इसके बदलेमें उनके पोषणका उत्तरदायित्व अपने सिर लेकर ब्राह्मणोंको परोपकारी कार्य करनेकी सुविधा देते रहें, यह दोनों वर्गोंके लिए उपकारी एवं शोभास्पद समझा जाता था। यह दान भिखारीके प्रति दया अथवा अत्यन्त तुच्छ दृष्टिसे फेंके गए एक पैसेकी भाँति न था। अत्यन्त आदरकी भावनासे युक्त नम्रतासे, पूरा नहीं दे सकते ऐसे संकोचपूर्वक, ब्रह्म-आशीर्वादसे प्राप्त संपत्तिका यह धर्मभाग था। दान स्वीकार करनेवाला ब्राह्मण हाथ फैलानेवाले आजके बुभुक्षित कंगालकी तरह न था। यजमानकी शिक्षा, संस्कार, आरोग्य और धर्मका संरक्षण करने वाले अत्यन्त निस्पृह, समाज-रक्षकके प्रति यह दान तो उसका अधिकार था। शिक्षण, संस्कार-प्रसार एवं आरोग्य-रक्षणके लिए ब्राह्मणोंने कभी भाव नहीं ठहराया। ब्राह्मणकी पाठशालामें राजकुमार भी पढ़ता और उसके साथही एक कृषक पुत्र भी। किसी श्रेष्ठीकी चिकित्सामें मोतीभस्म प्रयुक्त हो एवं गरीबकी दवामें केवल काष्ठ-औषधिका प्रयोग किया जाय, ऐसा कभी न होता था। गरीबके लिए

मुक्ताभस्मकी आवश्यकता पड़ने पर श्रेष्ठी अथवा सामंतसे ब्राह्मण अपना अधिकार समझ अधिकार रूपमें उनसे मोती माँगते। ब्राह्मणकी माँग पूर्ण न करनेवाला व्यक्ति समाजका हास्यपात्र बनता। बंदीजनोंमें निकृष्ट समझा जाता। ब्राह्मणके आशीर्वादसे वंचित हो जाता। ब्राह्मण भी यह समझता था कि कौन मोती दे सकता है और कौन प्रवाल।

ब्राह्मणवर्गको द्रव्योपार्जनकी चिंतासे मुक्त रखनेवाले समाजमें एक महान् विद्वान् ब्राह्मणकी स्त्री और उसका पुत्र आर्थिक दृष्टिसे अपना जीवन-निर्वाह सुचारु रूपसे स्वछंदतापूर्वक कर सकें, इसमें कोई आश्चर्यकी बात न थी। भागीरथीके साथ श्रीलेखा भी जीवन व्यतीत करने लगी। परंतु श्रीलेखा की कठिनाई भिन्न प्रकार की थी। उसे न तो अपना पूर्ण परिचय देना था न भोज का ही। अपरिचित रख कर भी भोज को शिक्षा देनी ही थी। यह कार्य भी सरलता से सम्पन्न हो गया। परम विद्वान, ज्योतिष-निपुण राजगुरु त्र्यंबक भट्टने भोजके शिक्षण का भार लिया। भोज की अभ्यास के प्रति अरुचि न थी। उसका अभ्यास गुरु को आनंदित और संतुष्ट करने वाला था। गुरु की सेवा में भी वह सदैव तत्पर करता। यहाँ तक कि अपने घरकी गायके साथ गुरुकी दो गायों को भी कभी-कभी चराने के लिए ले जाया करता था। प्रातःकाल स्नान, संध्या और अभ्यास पूर्ण करनेके पश्चात् गउओंको संभाल कर गोचर भूमि में पहुँचा आता और संध्या समय पूजनविधि प्रारंभ होने के पूर्व ही उन्हें लाकर बाँध देता। यह उसका दैनिक कार्य बन गया था। यह कार्य उसे सुहाता। बछड़े, गाय, नंदी उसे अत्यन्त प्रिय थे। घरके सामने उनकी सेवा सुश्रूषा तो वह किया ही करता था, इस पर पशुओं को गाँवके बाहर ले जाने का कार्य मिलने पर उसके आनन्द का ठिकाना न रहा। भोज प्रति दिन गउओं को ले जाता और वापस ले आता।

समय होने पर वह स्वयं पशुओं के साथ गोचर भूमि में जाता और वहाँ से पर्वत, नदी तट पर घूमने के लिए भी निकल जाता। ब्राह्मणोंके

अभ्यास क्रममें अथवा यों कहिये कि सभीके अभ्यास क्रममें व्यायाम को मुख्य स्थान दिया जाता था । मल्लयुद्ध, मुष्टिदाँव, धनुर्धारण, भाला, खंजर, लाठी चलाना और तैरना विशेष रूपसे सबको सिखाया जाता था । भोज को यह सब खूब अच्छा लगता । बड़ी तत्परतासे वह सब दाँव-पेंच सीख लेता । पास में भाला या तीर कमान होने पर निर्भयतापूर्वक जहाँ चाहे घूम-फिर आता था ।

इस प्रकार वर्षों बीत गये । भोज समयके साथ विकसित हो रहा था । बौद्धिक विकास भी किसीसे कम न था ।

एक दिन संध्या समय गउओं के यथास्थान बाँधे जानेके पश्चात् श्रीलेखाने अपने बाड़ेमें बाँसुरीकी आवाज सुनी । गाय एवं बछड़ोंके कान खड़े हो गये और उनकी आँखें बाँसुरीकी आवाजकी ओर लग गईं । उस दिन गउओंने दूध भी अच्छे परिमाणमें दिये । श्रीलेखाको भी यह बाँसुरीका स्वर भाया । भोज तो नहीं बजा रहा है ! अपने मनमें उठा हुआ प्रश्न भोजसे उसने पूछा, 'अपने तपोवन में बाँसुरी कौन बजा रहा था ?'

'बाँसुरी क्या न बजानी चाहिए मा ?' भोजने पूछा ।

'नहीं, ब्रह्मदेवका ध्यान भंग हो जाय तो ?'

'आप ही तो कह रही थीं कि संगीत ध्यानको केन्द्रित करता है ?'

'तू ही बजाता रहा होगा ?'

'जी हाँ !'

'कहाँ सीखा ? और बाँसुरी किसने दी ?'

'एक ग्वाल मित्रने दी । सीखा तो मैंने स्वयं अपने आप ही । अपनी ब्रह्मपुरीमें ही । त्र्यंबक भट्ट संगीतज्ञ भी तो हैं । उन्हींका अनुकरण कर मैं सीखता हूँ ।'

धीरे-धीरे श्रीलेखाको सूचना मिली कि भोजकी बाँसुरी केवल उसकी एवं उसके गुरुकी गउओंकी ही नहीं बल्कि संपूर्ण ब्रह्मपुरीकी गउओंका

आकर्षण बन रही थी। भोजकी बाँसुरी सुनते ही सब गउयें एकत्र हो जातीं और उसके पीछे-पीछे आकर अपने-अपने घर चली जातीं। यह क्रम प्रति दिनका था। इस प्रकार वर्ष पर वर्ष व्यतीत होते गये।

नागदाकी विशाल गोचर भूमिमें एक दिन परकीय सीमा से मवेशियोंका एक बड़ा झुण्ड आया और गोचर भूमि पर ऐसा फैल गया कि वहाँके गोपालोंकी गायोंको चरनेके लिये स्थान ही न रह गया। झुण्डके साथही तीन-चार युवक एवं किशोर रक्षक भी थे। पहनावेसे वे पर्वतीय भील कुमार जान पड़ते। गोचरमें उसी गाँवकी गाय चर सकती थी। दूसरे गाँवके पशु गाँवके प्रतिनिधियोंकी आज्ञा बिना न चर सकते थे। यह अलिखित नियम अब टूट रहा था। गोपालोंने भील किशोरोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट किया, परंतु भील कुमारोंको इस समय नियमकी जरा भी परवाह न थी।

दोपहरके समय भ्रमणकी इच्छासे आये हुए भोजको गोपालोंने इस बातकी सूचना दी। भोजने भील कुमारोंसे प्रार्थना करते हुये कहा, 'भाई! यह गोचर तो हमारा है। आप इतना बड़ा झुण्ड लायेंगे तो हमारी गायें भूखी मर जायँगी।'

'कोई बात नहीं।' एक भील कुमार ने उत्तर दिया।

'आपके लिए भले ही न हो, हमारे लिए तो है न? आप परवाना लेकर भले ही ले आयें।'

'हमारा परवाना हमारा लठ...और तीर कमान...'

'यह तो हम भी चलाना जानते हैं!'

'ऐसा! देखें तो सही कि भीलोंके सामने नागदाके गोपाल लाठी कैसे चलाते हैं?' कह कर एक भील युवकने लाठी उठाई और भोजको मारनेके लिए पैंतरा बदला। भीलको स्वप्नमें भी जैसी आशा न थी उस फुर्तीसे अपनी रक्षामें तत्पर भोजने वार रोक कर प्रत्याक्रमण किया।

'बाली ! संभाल !' कह कर दूसरा भील युवक लाठीके प्रहारसे लड़-खड़ाते हुएको सतर्क करते हुए भोजपर टूट पड़ा ।

'सबका सामना करना है ? परवाह नहीं । सच्चा लड़ाकू तो वही है जो द्वंदमें उतरे ! अच्छा, आ जाओ !' कह कर भोज दोनों भील युवकोंका सामना करने लगा । नागदाके गोपालभी उत्तेजित हो गये । भील और गोपालोंके बीच छोटा-सा युद्ध छिड़ गया । हो-हल्लाहो रहा था, लाठी तड़ातड़ चल रही थी । गोचर पर युद्धका दृश्य उपस्थित हो गया ।

दोनों झुण्डके पशुओंने भी देखा कि उनके रक्षक युद्धमें तल्लीन हो रहे हैं । वे भी आपसमें लड़ने लग गये । गायें जब क्रुद्ध होती हैं तब जान देकर लड़ती हैं । इस प्रकार मनुष्य-मनुष्यके बीच और पशु-पशुके बीच जमे हुए तुमुल युद्धमें किसीकी समझमें पहले तो कुछ न आया कि लाठियोंके प्रहारके बीचसे सफाईपूर्वक निकल जाकर भोज एकाएक कहाँ छलांग मार रहा था । लाठीका चलाना कुछ थमा । पलायित भोजको पकड़ कर उसे पूरा हाथ बतावें अथवा यहीं रुकें इसका विचार करते हुए दोनों भील युवकोंने भोजकी ओर आँख फेरी । एक अनोखा दृश्य देखा । दोनोंके मुखसे एक साथही निकल गया ।

'देव !'

'बाली !'

'देखा ? बाघ है !'

'दौड़ !'

कहकर दोनों भील युवक भोजकी ओर दौड़ पड़े । आपसमें लड़ने वाले मानव रक्षक एवं पशु समूहोंकी मूर्खताका लाभ उठा पास ही किसी टीले पर छिपकर बैठे हुए बाघने अपनी लाग देख, कोई देखे सुने नहीं इस प्रकार गोचरमें उतरकर होशहवास भूली हुई गउओंके झुण्डमें से एक गायको झपटकर गर्दनसे पकड़ घसीटना प्रारम्भ किया । उत्तेजित गायने सामान्य पशुके समान ऐसे समय मौत के आधीन होनेके बजाय

उसका सामना किया । बाघकी कल्पनासे कहीं अधिक बलपूर्वक वह अपनेको झकझोरने लगी । झाड़ीमें अदृश्य होनेमें क्षण मात्रका विलंब था जबकि बाघके पीठ पर ऐसे जोरका लाठीका प्रहार हुआ कि उसका भयंकर जबड़ा खुल गया । छटपटाती हुई गाय दूर जा गिरी और बाघने अंगारपूर्ण आँखें पीछे फेर लाठीका प्रबल प्रहार करने वाले भोजको सामने देखा । बाघके आँखसे निकलती अग्निकी तनिक परवाह न कर भोजने बाघ पर दूसरा लाठी प्रहार किया । यह बाघको पहलेकी अपेक्षा कहीं अधिक कष्टप्रद जान पड़ा । अपमानित बाघकी विकरालता बढ़ गई । उसने भोज पर प्राणघातक हमला किया । लाठी द्वारा अपनी रक्षा करनेमें तत्पर भोजने देखा कि बाघ उसपर आकर गिरनेके बजाय एक ओर उछल कर गिर पड़ा । उसके शरीरमें तीर चुभा हुआ था । लाठीके दो प्रबल प्रहार एवं तीरके गंभीर घावके लगते ही बाघकी मृत्यु सन्निकट दीख पड़ी । जमीन पर पड़े-पड़े सहज हाथ पैर और पोंछ हिलाकर बड़ी कठिनतासे अपना शरीर घसीट कर वह झाड़ीके पास गया । कुछ क्षण खड़खड़ाहट हुई । भोजने देखा कि बाघका शरीर निर्जीव होकर ठंढा पड़ गया !

'अच्छा अब बताओ अपने गाय की रक्षा करनी है अथवा अभी लड़ कर मनकी मुराद पूरी करनी है ? मैं तैयार हूँ ।' भोजने अपने पास आ पहुँचते हुए भील युवकोंसे पूछा ।

'शाबाश बापा ! एक तो हमारे लाठी-प्रहारके बीचसे निकलना कठिन जिसे आपने कर दिखाया और उस पर हमारी गायको आपने बाघके मुँहसे बचा लिया ! बाघके मुँहसे गाय निकाल लाना साधारण काम नहीं !' भोजके प्रश्नको आश्चर्यपूर्वक सुनते हुए देवने उत्तर दिया ।

'अब आपके पक्षमें होकर ही लड़ा जा सकता है ? आइए इसी समय जीवन भरके लिए मित्रताके सूत्रमें हम बँध जाँय । इस वयमें

इतना साहस और लाठी चलानेमें दक्षता किसी दूसरेमें नहीं देखी !' कहकर भील युवक बाली भोजके गलेसे लिपट गया।

तीनोंने मिलकर घायल गायको मदद देकर खड़ा किया। आस पास से वनस्पति बनौषधि लाकर गायके घाव पर लगाया। अत्यन्त वात्सल्य-पूर्वक उसकी सेवा सुश्रूषा की। गाय मानो उसकी मा हो इस प्रकार उसकी सेवा सुश्रूषा करने वाले भोजसे देव ने पूछा।

'गोपाल ! आप यहाँ नये आये हैं क्या ?'

'जी नहीं, मैं तो वर्षों से नागदामें हूँ।'

'आपको कभी गाय हाँक कर लाते हुए नहीं देखा। किस गूजरको आप जैसा पुत्र-रत्न पानेका सौभाग्य प्राप्त है ?'

'मैं गोपाल या भरवाड़ नहीं, मैं तो ब्राह्मण हूँ।'

'ब्राह्मण ! अरे ! आप तो क्षत्री और भीलके समान लड़े !'

'ब्राह्मणोंको लड़ना नहीं आता, ऐसा आप समझते हैं ! अरे, हमारे पाठ्य शास्त्रोंमें तो धनुर्वेद भी है ! हम अपनी ब्रह्मपुरीसे चाहें तो एक छोटी-सी सेना खड़ी कर दें।'

'तो आप इस गोचरमें कैसे ?'

'मुझे गाय बहुत भाती है। कैसा सुन्दर इसका आकार है ! इसी बहाने पर्वत देखनेको मिल जाता है। जंगलमें घूमने-फिरनेका अवसर मिल जाता है। आप जैसे लोग मिल जाते हैं तो हथियारकी कसौटी भी हो जाती है।' मुस्कुरा कर भोजने उत्तर दिया।

भील जरा लजाये। हथियारकी कसौटीमें भोज निपुण सिद्ध हुआ था।

'चोट तो नहीं लगी ? हम बेकार भिड़ गये !' देव बोला।

'चोट लगनेकी जरा भी चिंता नहीं है। दो हाथ मारेंगे तो दो हाथ खायेंगे भी...। मैं नाहक तो नहीं लड़ा...अभी भी पंचोंके परवाना बिना गउओंको चराने नहीं दूँगा।'

'जरा पूछो तो सही कि हम गाय यहाँ क्यों ले आये ? क्या लड़नेकी शौक से ?' बालीने कहा ।

'पूछने गया तो आपने लाठी उठाई ! बताइये, इतना बड़ा गोधन आप कहाँसे ले आये ? भील तो इतनी गायोंका झुण्ड नहीं रखते ।'

'रखना ही पड़ रहा है न भाई ! सिंधु देश है न ! वहींसे आई हैं ।' देवने कहा ।

'क्यों ?'

'पता नहीं है क्या कि वहां क्या हो रहा है ?'

'कुछ-कुछ सुनता हूँ । कुछ विदेशी विधर्मियोंने सिंधुके आस पास भयंकर मारकाट मचा रखी है । कुछ ब्राह्मण भी वहाँसे भाग कर हमारे नागदामें आये हैं, जो यह बता रहे थे ।' वहाँ के मचे हुए उत्पातकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते । गोमांसका म्लेच्छोंको बड़ा शौक है । अतः वहाँका गो समूह यहाँ चला आया । हम तो रख नहीं रहे थे किंतु फिलहाल इन पहाड़ों में खाखी साधु बहुत घूम रहे हैं । उनमेंसे एकने इस गोवृंदका संरक्षण करनेके लिए हमसे कहा । आशीर्वाद भी दिया । शापके भयसे हमने संभाल लिया । अभी गाय-नंदीकी टोली आती ही जा रही है ।' बालीने कारण बताया ।

'अतः आज चरानेके लिए इधर बढ़ आये । पर्वतकी घास समाप्त हो गई और नागदाका गोचर हरा-भरा है । फिर गायें हाथमें भला रह सकती है ?' देवने आगे कहा ।

'ठीक है, मैं आपको पंच का परवाना दिला दूँगा । सिंधु देश बहुत दूर है क्या ?' भोजने पूछा ।

'जी नहीं, यह त्रिकूट पर्वत पार किया कि पश्चिममें आती है मरुभूमि । उसे पार करते ही सिंधुमें पहुँच जाँयगे ।'

'क्या हम वहाँ नहीं जा सकते ?' भोजने पूछा ।

'आपको पढ़ना है या इधर-उधर मारे-मारे फिरना है ?'

'जो पढ़ना था वह तो पढ़ चुका, मारे-मारे फिरना बाकी है। आप लोग वहां कभी गये हैं ?'

'जी हाँ, एक बार गये थे—थोड़ी करामातके लिए। जाकर वहीं फँस भी गये। खाखी बाबा न मिले होते तो हम वहीं रह गये होते !' बाली ने कहा।

'और मुसलमान बनकर अल्ला-अल्ला चिल्लाते होते !' देवने हँसते-हँसते कहा।

'कौन खाखी बाबा ?'

'किसी दिन आपको मिला दूँगा। आपही जैसे लोगोंकी उन्हें बहुत आवश्यकता है। देखिये आजसे हमारी गायें यहाँ नहीं आवेंगी और आपको जरूरत पड़े तो हमें सूचना दीजियेगा। हम एक साथ रहें तो खाखी बाबा का बहुत काम निकलना संभव है।' देवने कहा।

'आपको कहाँ सूचना दूँ ? खाखी बाबासे मैं अवश्य मिलना चाहता हूँ।' भोज बोला।

'दो दिन बाद यहीं हम आपसे मिलेंगे।'

'गंउएँ तो नहीं लाना है न ?' सहज हँसकर भोजने प्रश्न किया।

'आपकी खातिर नहीं...बस !'

'आपको भी जरूरत पड़े तो मुझे याद करना। नागदाकी ब्रह्मपुरीमें जिस किसीसे पूछियेगा तो मेरी कुटी आपको मिल जायगी। अपना नाम आपने नहीं बताया।'

'मेरा नाम बाली, इसका देव...और आपका नाम ?'

'हमने तो आपका नाम रख दिया—बापा—बापा—हमें लड़ाका बहुत पसंद है।' देव बोला।

'मेरा नाम भोज।'

'अं हं ! हमें तो बप्पा ही अच्छा लगता है । बाघके मुखसे अपनी गाय निकाल लाने वालेको तो हम बप्पा ही पुकारेंगे...।'

कहकर भील हँसे और गउओंको एकत्र करने लगे । बाघको देख दोनों पक्षकी गउएँ जड़वत् हो गयी थीं । आपसका झगड़ा शान्त हो गया था । ऐसा मालूम पड़ रहा था कि गउएँ भी इस विचारमें थीं कि बाघपर हमला कैसे किया जाय । देव और बालीने अपने सधे हुए शब्दोच्चार द्वारा अपनी गउओंको एक ओर करने लगे । भोजने अपनी बाँसुरी बजाकर नागदाकी गउओंको एक ओर कर लिया । बाघके पंजेसे घायल गायको भोजने अपने साथ ले लिया ताकि उसकी देखभाल सरलतापूर्वक हो सके । दोनों भील युवकोंने इसमें अपनी सम्मति भी दे दी । भोजके बलका विचार करते हुए आश्चर्यचकित हो वे वहाँसे बिदा हुए । दो दिन बाद पुनः मिलनेके निर्णयसे वे बहुत प्रसन्न भी थे ।

प्रतिदिनकी अपेक्षा आज भोजको अधिक विलंब हो गया था । ब्रह्मपुरीमें किसीने खबर पहुँचा दी थी कि गोचर में भीलों और भोजके बीच लाठी चल रही है । ब्राह्मण युवक यह सुनतेही तैयार हो गोचरके लिए रवाना हो रहे थे । इतनेमें ही भोज पहुँच गया । स्वस्थतासे हंसते हुए भोजने सबसे बात की । घर पहुँचते ही अत्यंत चिंतातुर माता श्रीलेखाने पुत्रको अंकमें भर लिया ।

'क्या हुआ ? अधिक चोट तो नहीं लगी ? कौन हरामखोर थे ?' ऐसेही एक पर एक अनेक प्रश्न माताने कर डाले ।

परंतु बालभोजको कोई दुश्मन या हरामखोर अभी तक न मिला था । झगड़ा करने वाले मित्र बन चुके थे । थोड़ीसी जो चोट लगी भी थी उसकी उसे तनिक भी चिंता न थी । पुरस्कारमें एक घायल गाय सेवा सुश्रूषाके लिए अपने साथ ले आया था । गायकी देखभाल उसका मुख्य आकर्षण बन गया था ।

बाघके मुँहसे भोज गाय निकाल लाया, यह चर्चा ब्रह्मपुरीमें ही

नहीं वल्कि उसके चारो ओर फैल गई। गायको देखनेके लिए आने-वालोंका ताँता बँध गया। त्र्यंबक भट्ट सदृश भोजके गुरुभी गायको देखनेके लिए आये। इससे भोजके हृदयमें कुछ स्वाभिमान जागृत हुआ। गुरु अपने कार्यको देखनेके लिए आयें इससे बढ़ कर आह्लादजनक बात शिष्यके लिए दूसरी हो ही क्या सकती है ?

'वत्स ! तेरा भविष्य उज्ज्वल है !' त्र्यंबक भट्टने कहा।

'जिस दिन आपका शिष्य बना उसी दिनसे मेरा भविष्य उज्ज्वल हो गया।' भोजने विवेकसे उत्तर दिया।

'बाघके मुँह गायको बचा लाना क्या कोई साधारण काम है ?'

'शस्त्र चलाना भी तो यहीं ब्रह्मपुरी में ही सीखता हूँ।'

'आवश्यकता पड़ने पर ब्राह्मण यदि शस्त्र व्यवहार न करे तो ब्राह्मणत्व ही नष्ट हो जायगा। ब्राह्मणके लिए तो शस्त्रास्त्रमें भी गुरुस्थान स्थापित करना ही होगा...किंतु मैं तो दूसरे प्रकारसे तेरा भावी देख रहा हूँ। तूने एक अद्‌भुत गाय बचायी है।'

'गुरुजी ! मैं तो किसीभी गायको बचानेका प्रयत्न करता।'

'यह मैं जानता हूँ। यह तो दुधारी गाय है। कैसी दर्शनीय है ! कामधेनु शायद ही दर्शन करनेको मिलती है। यह गाय सचमुच कामधेनु वर्गकी है। तूने महापुण्यका कार्य किया है। इस जातिका गोवंश अदृश्य होता जा रहा है।' गुरुने प्रसन्नतापूर्वक कहा।

ब्राह्मण शास्त्र, शस्त्र, कृषि, वाणिज्य तथा गोपालन विद्याके भी जानकार थे। ब्राह्मणत्वका एक मुख्य लक्षण यह था कि विद्या बेची नहीं जाती थी। विद्यासे लाभ नहीं उठाया जाता था। विद्या अर्थ-संग्रहके लिए न थी। जीवन साधारणसे साधारण ढंगसे व्यतीत किया जाता था। इसके विपरीत संचय करने वाला ब्राह्मण अब्राह्मण माना जाता। आनेवाले कलकी चिंता रखने वाला ब्राह्मण गुरुपदके योग्य ही न रह जाता। परन्तु उसके अध्ययन, अभ्यास, प्रयोगमें अकिंचनत्व तनिकभी

शिथिलता न आने दे तभी ब्राह्मणत्व सुरक्षित समझा जाता था। यही ब्रह्म आदर्श था।

तीन-चार दिनमें गायके घाव भर गये। उसके भील मित्र भी भोजकी पर्णकुटीमें बराबर आते। वे भी उसकी देखभालमें सहयोग देते। वनौषधि लाकर भोजके साथ गाय पर उसका प्रयोग भी करते थे। गायके स्वस्थ हो जाने पर भोजने उसे गोचरमें भेज दिया और एक संध्याको दोनों भील मित्रोंके मिलने पर उसने कहा, 'देव अपनी गाय ले जायें।'

'कौन गाय? मेरी कैसी?'

'क्यों? जिसे बाघने घायल कर दिया था, वह!'

'उसे अब आपही रखें।' बालीने कहा।

'गाय मेरी नहीं है। तब भला मैं उसे कैसे रख सकता हूँ?'

'इसे अब अपनीही समझें।' देवने कहा

'आपने बचाई न होती तो अब तक वह मर चुकी होती।'

'पर इसे मैं कभी नहीं रख सकता, बाली!'

'हमारी भेंट समझ लो, बापा!' देवने कहा।

'मैं भेंट स्वीकार नहीं कर सकता, देव!' भोजने भेंट लेना भी अस्वीकार कर दिया!'

'तुमतो बड़े हठी हो बापा! जो तुम्हारी इच्छा हो करो। पर हम इस गायको वापस नहीं ले जाँयगे!'

'क्यों?'

'इसका दूध अमृत जैसा है। हमारी इच्छा है कि इसका उपयोग तुम करो। देवने कहा।

'चाहे जितना हठ करो, हम इसे वापस लेने वाले नहीं है। इसे हमारी मित्रताका चिह्न समझो।'

भोजका इन दोनों भील युवकोंके साथ ऐसा स्नेह हो गया था कि

वह फिर कुछ न कह सका। उसने गाय स्वीकार कर ली किंतु उसने कहा, 'मुझे भी मैत्रीके चिह्न स्वरूप कुछ तुम्हें देना चाहिये!'

'अवश्य, किंतु फिलहाल उसे रहने दो।'

'क्यों?'

'हम माँग लेंगे।'

'कब?'

'गायसे बढ़कर कीमती वस्तु तुम्हारे हाथमें देखेंगे तब!'

'यह तो कामधेनु है...इससे बढ़कर बहुमूल्य पदार्थ और क्या हो सकता है?' भोजने कहा।

'गायकी जाति हम अच्छी तरह जानते हैं। इसीलिए यह गाय हमने तुम्हें दी। तुमसे हमें क्या लेना है सो हमारी इच्छा पर छोड़ दो!'

गाय तो भोजके पास ही रही। परंतु उसके ब्राह्मणत्वको ऐसी भेंट चुभ रही थी। केवल आशीर्वाद देकर दान ग्रहण करना अधम ब्राह्मणत्व कहा जा सकता है। दान देने वालेके पुण्यार्थ तपश्चर्या विधि करनेमें दान देने वालेकी स्थिति ध्यान में रखना आवश्यक है। परंतु यह भेंट दान या दक्षिणा नहीं कही जा सकती थी। भेंटका एक पक्षीय होना भी उचित नहीं। जब तक इसके बदलेमें कोई भेंट न दिया जाय तब तक यह दान ही था।

उसके मनमें एक विचार आया। माता एवं माता सदृश भागीरथीसे भी राय ली। एक दिन प्रातःकाल नहा धोकर, गायको भी नहला धुलाकर उस पर एक छोटा वस्त्रखंड डाल वह त्र्यंबक भट्टके यहां गया। गुरुको साष्टांग दण्डवत कर संकोचपूर्ण स्वरमें प्रार्थना करते हुए उसने कहा, 'गुरु जी! मेरी एक विनती है।'

'कह बेटा! तेरी पढ़ाई निर्धारित समयसे बहुत पहले ही समाप्त हो रही है। अब तुझे सिखानेके लिए मेरे पास कुछ शेष न रहा। अब

जो कुछ तूने सीखा है उसका प्रत्यक्ष जीवनमें व्यवहार कर। यही मेरी अंतिम इच्छा और आशीर्वाद है!'

'आपका तो आशीर्वाद है ही किंतु मैं...अपनी...अल्पतानुसार...कुछ...'

'साफ साफ बोल! मेरे सामने इस प्रकार शर्माता क्यों है!'

'तुच्छ...गुरु...दक्षिणा...!'

'तेरा भावी जीवन ही मेरी गुरु-दक्षिणा है'''वत्स! भव्य तपचिन्ह और राजचिन्ह तेरी रेखाओंमें देख रहा हूँ...इतना ही मेरे लिए बहुत है।'

''गुरुजी! यह कामधेनु आपके आश्रममें छोड़ जानेके लिए लाया हूँ और भला किस योग्य हूँ कि आपके चरणमें कुछ अर्पित कर सकूँ! अपने...प्रथम विजय का फल आपको अर्पण करूँ...तुच्छ है फिर भी आप अस्वीकार न करें।'

'भोज, बेटा! यह कामधेनुतो देव दरबार अथवा राजदरबारमें ही शोभा दे सकती है।'

'आपके आश्रमसे बढ़कर उच्च देव दरबार में खोजनेसे भी कहाँ पाऊँगा।' भोजने अत्यंत विनय पूर्वक कहा।

'अच्छी बात है, तेरी इच्छा है तो छोड़ जा...किंतु...'

'क्या आपको यह गाय पसंद नहीं!'

'मुझे प्रसंद न आई होती तो इसकी प्रशंसा ही क्यों करता! कामधेनु जातिकी गाय किसे कहते है, यह मैंने तुझे इस गायको देखकर ही बता दिया था। न पसंद आनेका तो प्रश्न ही नहीं है।'

'तब!'

'इस गायकी उपस्थिति सतत इतिहासकी रचना करती है। ऐतिहासिक प्रसंगों की परंपरा खड़ी करती है। तेरे ही पास रहनेके लिए इसकी उत्पत्ति हुई है। मुझे तो...शायद यह दूध भी न दे...कारण मेरा भावी

मेरे ब्रह्मकर्ममें ही समाप्त होता है...अच्छी बात है ! अपनी इच्छा भले ही पूर्ण कर ले ।' कह कर भोजके अभ्यास गुरु त्र्यंबकने गायको अपने आश्रममें बँधवा दिया। अत्यंत हर्षोत्फुल्ल शिष्य गुरु-दक्षिणा देनेका संतोष अनुभव करता हुआ अपने कुटीको वापस लौटा।

४

थोड़ेही दिनों पश्चात् भोजने सुना कि गुरु-दक्षिणामें दी हुई गाय गुरुको दूधही न देती । गुरुजीके पास जाकर इस रहस्यको पूछा। हँस कर गुरुने कहा, 'मैंने क्या कहा था ? मेरे भाग्यमें इस गायका दूध नहीं लिखा है ।'

'क्यों ? क्या बात है ?'

'जो भी हो । कामधेनुकी जाति ही ऐसी है कि दे तो सर्वस्व, न दे तो कुछ भी नहीं ।'

'मैं इसकी खोज तो करूँ !'

'ठीक है, शायद इस खोजमें तुझे कोई मार्ग मिल जाय !'

'मुझे मार्ग मिल जाय...! मेरा मार्ग तो निश्चित हो चुका है गुरुजी !'

'कौनसा मार्ग निश्चित हो चुका है ?'

'नागदाकी ब्रह्मपुरीमें रहते हुए अपना जीवन व्यतीत कर दूँगा... आपके एक ब्राह्मण शिष्यको शोभा देगा न !'

'तेरे ग्रह इसके विपरीत हैं । तेरे लिए राजयोग दिखाई पड़ रहा है ।'

'ब्राह्मणको राजयोग ! असंभव ! मिले तो आचार्य पद मिल सकता है, दूसरा क्या !'

'जीवित रहूँगा तो देखूँगा...कि तू सच्चा है या तेरा ग्रह !' हँस कर गुरुने कहा ।

दूधके लिए दी गई गाय गुरुको दूध नहीं देती, इसका भोज जैसे मानी विद्यार्थीको दुःख होना स्वाभाविक है। देव और बालीसे भी इसकी उसने चर्चाकी। गायने इस प्रकारका पहले कभी आचरण न किया था। इससे वे भी इसका कारण पता लगाने में तत्पर हो गये।

टोलीके साथ चरनेके लिए गई हुई गायकी ओर तीनों व्यक्तियोंने विशेष ध्यान रखा। पहले तो सबके साथ वह गाय चरती रही परंतु दो घंटे पश्चात् टोलीसे बिछुड़ कर वह जंगलके संकुल मार्ग की ओर चल पड़ी। भोज एवं उसके दोनों मित्रोंको छोड़ किसीका ध्यान उस ओर नहीं गया। तीनों मित्र गायको आहट न लगे इसका ध्यान रखते हुए चुपकेसे उसका पीछा करने लगे। गाय काफी दूर तक जंगलमें बढ़ती चली गई। बाघसे पकड़ी गई गायको न जाने क्यों अब बाघ अथवा अन्य हिंस्र पशुओंका तनिकभी भय नहीं लग रहा था। घनके वृक्षावलिके बीचसे मार्ग बनाती हुई, नये मार्गसे काफी देर तक चलनेके बाद एक घनी झाड़ीके पास जाकर वह खड़ी हो गई। पश्चात् उसी घनी झाड़ीके बीचसे सींगों और खुरोंसे रास्ता साफ करते हुए एक स्थल पर जाकर उसने चारो ओर दृष्टि दौड़ा कर देखा। गायकी दृष्टिसे अपनेको छिपाते हुए तीनों मित्रोंने आश्चर्यसे देखा कि कामधेनु उस स्थल पर अपने चारो थनोंसे दुग्ध-वर्षा कर रही है।

दुग्ध वर्षण कर चुकनेके पश्चात् गायके मुख पर स्पष्ट संतोषकी छाया आ गई। वहाँसे वह कुछ आगे बढ़ी। एक गुफाके पास जाकर खड़ी हो गई। गुफाके सामने एक त्रिशूल सीधा गड़ा हुआ था। त्रिशूलके पास ही छोटा-सा एक अग्निकुण्ड भी था। चार मोटे-मोटे लट्ठोंके बीचमें कभी धूआँ, कभी ज्वाला प्रकट हो रही थी। गाय वहाँ खड़ी रही। गुफाके भीतरसे कौपीनधारी एक खाखी बाहर आया।

'मैया आ गई!' खाखी बोला। गायके पास आकर उसने गायको सहलाया, थपथपाया, पास ही में पड़ी हुई घास उठाकर उसे खिलाया।

पश्चात् गुफामें से एक खप्पर जैसा कमण्डलु लाकर दूध दुह लिया। तत्पश्चात् कुछ दूर पर बँधा हुआ एक बछड़ा खोल लाया। आनंदसे उछलते और नाचते हुए आकर बछड़ेने माँ अघा कर दुग्ध-पान किया।

भोज, देव और बाली दूरसे छिपकर यह अपूर्व दृश्य देख रहे थे। जिस स्थल पर गायने दुग्ध वर्षण किया था उसे ध्यानसे देखने पर उन्हें शिवलिंग दिखाई दिया। गुफासे निकलकर आने वाले खाखीको भी उन्होंने पहचाना। हारित मुनिको झोपड़ीमें छोड़ नागदाकी ब्रह्मपुरीमें माताके साथ उसे पहुँचाने वाला खाखी यही था। यह भोजको याद आया। सिंधु प्रदेशमें घूमनेके लिए जाने वाले दोनों भील कुमारोंकी विपत्तिसे रक्षा करने वाला खाखी भी यही था। इसका विश्वास देव एवं बालीको भी हो गया।

खाखीकी तीव्र श्रवणेन्द्रियने उसे बहुत पहले बता दिया था कि आसपासमें कोई मानव छिपा हुआ है। उसने चारो ओर दृष्टि दौड़ाई। वनकी घनी वृक्षावलियोंके बीचसे।खाखीकी दृष्टि बहुत कुछ देख सकती थी; तथापि बहुत ही सावधानी छिपे हुए तीनों व्यक्तियोंको वह नहीं देख सका।

'अ...ल...ख...!' खाखीने गर्जना की।

तीनों एक दूसरेका मुँह ताकने लगे। पुनः खाखी की गर्जना सुन पड़ी ; 'कौन छिपा हुआ है; इस झाड़ीमें ?...बाहर निकलो !'

खाखीका चेहरा क्रूरतापूर्ण क्यों लग रहा था ?

'गायके पीछे आये हो तो लौट जाओ, गाय नहीं मिलेगी।' खाखीने कहा।

गायके पीछे तीनों व्यक्ति आये थे यह सच है; परंतु गायको ले जाने की उनकी इच्छा न थी। भोजको एकाएक अपने पिता पराशर-हारित मुनि याद आ गये। अनेक वर्षों से अदृश्य पितासे इस खाखी द्वारा मिलनेका अवसर मिल रहा था। यह उसे बहुत ही रुचिकर लगा। खाखी

एवं हारितमुनिको ढूँढ़ निकालनेका भोजने अनेकानेक प्रयास नागदामें रहते हुए किया था। गउओंके झुण्डके साथ घूमनेके शौकका मुख्य और प्रबल कारण पराशरको ढूँढ़ निकालना था, इसमें संशय नहीं। अनेकानेक पर्वतों व गुफाओंका उसने अन्वेषण किया था। ऐसा कोई भी घनासे घना कुंज न था जहाँ वह न पहुँचा हो। वह नित्य ही कोई नये मार्गकी खोज करनेमें निरत रहता। किंतु उसे वह मार्ग नहीं मिला जिस मार्गसे खाखी उसे नागदा पहुँचा गया था। वर्षों बीत गये। पर्वत और वनका एक भी भाग ऐसा नहीं रहा जिसे उसने न छाना हो; ऐसा भोजका विश्वास था। पराशरसे भी मिलनेकी आशा लगभग लुप्त प्राय हो गई। श्रीलेखासे पूछने पर वह भी अपना अज्ञान ही प्रदर्शित करतीं। गुरु त्र्यंबक भट्ट पराशरको एक परम विद्वान् एवं राजनीतिज्ञ रूपमें जानते थे; परंतु संन्यास ले पराशरसे हारित बने हुए ऋषिका पता उन्हें भी नहीं था। वनसे भी अधिक विकट प्रदेशोंमें विचरण करते होंगे क्या? ऐसी अवस्था होने पर मनुष्यकी आशा दिन प्रति दिन घटती जाती है। घटती हुई आशाका स्थान धीरे-धीरे शून्यतामें परिवर्तित होने लगता है। भोजकी भी पितासे मिलनेकी उत्कंठा क्रमशः ठंढी पड़ गई। निराश भोजका हृदय अंतमें पिताकी अनुपस्थितिको एक साधारण-सी घटना मान बैठा।

पर यह कहना तो असंभव ही है कि अपने पिताके प्रति उसके सद्भाव अथवा ऊर्मिमें कमी आ गई थी। पहचाने हुए खाखीको देखते ही आशा एवं उत्कंठा एकाएक अत्यंत वेगसे जाग्रत हो उठी। तीनों मित्रोंने वृक्षके पीछेसे निकलकर खाखीको साष्टांग प्रणाम किया।

'अ...ल...ख निरंजन।' खाखीने मुस्कुराते हुए आशीर्वाद दिया। इस हास्यपूर्ण चेहरेमें परिचित होने की छाया अवश्य थी। ये भैरव नाम-धारी खाखी तो नहीं हैं?

'गायके पीछे-पीछे हम लोग ही आये हैं।' भोजने कहा।

'गाय चाहिये, बेटा ?' खाखीने पूछा।

'यह तो अकस्मात् ही मिल गई। इन मित्रोंके झुण्डमें थी। इस पर बाघने वार किया। मैं पास ही में था। हम तीनोंने मिलकर इसकी रक्षा की।' भोज बोला।

'हम सबने नहीं...इस बापाने ही इसे बचाया।' देव बोला।

'बापाने ?' खाखीने जरा आँख बंद कर पूछा।

'नाम तो इनका भोज है...पर हम इन्हें बापाके नामसे ही बुलाते हैं। हमें यह नाम अधिक प्रिय है।' बाली बोला।

'अच्छा ! तो गाय तुम्हारे झुण्डमें कहाँसे आई ?' प्रसन्न हो खाखीने पूछा।

'कौन जाने ! लगभग एक महीना हुआ होगा, कहींसे भाग आकर हमारे गो-वृंदमें छिप गई। फिर वहाँसे कहीं नहीं गई। कदाचित् बाघ-बाघसे डर गई होगी।' देवने संक्षेपमें विवरण दिया।

'बाघकी तो नहीं जानता ! किंतु यह चोरी गई थी ; यह बात सच है।' खाखीने कहा।

'बापाजी ! विश्वास मानिये हमने नहीं चुराया !' बाली बोला।

'तुमने नहीं। इसे चुराने वाला केवल इसे ही नहीं बल्कि संपूर्ण कामधेनु धनको ही चुरा ले गया है।'

'मुझे उसका नाम बताइये। मैं छुड़ा लाऊँ।' भोजने कहा।

'बापाके साथ हम भी रहेंगे।' देव बोला।

'कितनी दूर तक जा सकोगे ?'

'पृथ्वीके दूसरें कोने पर होगी तो वहाँ भी जाकर छुड़ा लाऊँगा। गाय तो हमारी मा है !' भोजके शब्दोंमें दृढ़ता थी।

'अवश्य, अवश्य !' बाली बोला।

'गुरुजीके पास चलो, डरोगे तो नहीं ?' खाखी ने पूछा।

'डर किस बात का ? जरा भी नहीं, चलो !' भोजने कहा।

चारो व्यक्ति गुफासे आगे बढ़ एक अत्यन्त घनी झाड़ीमें घुसे। भीतर वृक्षोंके झुरमुटके नीचेकी साफ की हुई समथल भूमि पर धूनी जल रही थी। चमकता सिंदूरका तिलक लगा हुआ एक त्रिशूल जमीनमें गड़ा था। तीन-चार बड़े शंख पास ही में पड़े थे। एक नौबत भी रखी हुई थी। एक चिपटा घंट स्तम्भसे टँगा हुआ था। दो मानव पिञ्जर बगलमें खड़े किये हुए थे। एक व्याघ्र मुख वाले व्याघ्र-चर्मके आसपास दो-तीन मानव खोपड़ियाँ सजा कर रखी थीं। तनिक भी न डरनेका भोजने वचन दिया था; तथापि एकान्तमें उस भयानक दृश्यको देख क्षण भरके लिए भोजका हृदय भी धड़क उठा। किसीसे भी न डरने वाले उसके दोनों भील मित्र भी चौंके। सोचने लगे कि जितनी जल्दी इस स्थानसे दूर हो जायँ उतना ही अच्छा। चारो ओर सूनसान, भयोत्पादक वातावरण उनके मन पर कुछ प्रभाव डाले इसके पूर्व ही खड़ाऊँकी आवाज सुनाई दी और पर्वतके पास बने हुए गुफा-मुखसे एक जटाजूटधारी, श्मश्रुयुक्त चेहरा, पुष्ट तथा दीर्घ शरीर वाला साधू निकला। भोजको जान पड़ा कि सिंधु, सरस्वता अथवा दृशाद्वतीके तट पर तपश्चर्या करने वाले, गायत्रीका उच्चारण करते हुए विश्वामित्र अथवा गोरक्षण करते हुए वशिष्ठ स्वयं वेदकालको लेकर वहाँ अवतीर्ण हुए हैं।

भोजने साधुके पास आते ही उनके चरणोंमें मस्तक टेक दिया। देव, बालीने भी अपने मित्रका अनुसरण किया। तीनोंके मस्तक पर हाथ रख साधुने उन्हें उठाया। सम्पूर्ण भयंकर वातावरणको इस साधुका प्रवेश अधिक भयंकर बना रहा था क्या? नहीं, नहीं; जटा और दाढ़ीसे आवृत चेहरे पर अग्नि सदृश चमकती हुई दोनों आँखें इस समय अग्नि-कण नहीं बल्कि आशीर्वाद बरसा रही थीं।

'बेटा! तुम तीनों ऐसे घोर जंगलमें कहाँसे आ रहे हो?' साधुने पूछा।

साधुका मुख गौरसे देखने वाले भोजके मुखसे कोई उत्तर न बन पड़ा; बल्कि उसकी आँखोंसे सावन-भादोंकी झड़ी लग गई।

साधुने जरा ध्यानसे भोजको देखा। उनकी शायद ही कभी निमीलित होने वाली आँखें क्षण भरके लिए निमीलित हो गईं; किंतु खुलनेपर पुनः स्थिर बन गईं। दाढ़ीसे आच्छन्न कंठमें साधारण-सा प्रकंपन हुआ था नहीं, समझा नहीं जा सका; किंतु साधुका हाथ सहज ही दाढ़ी पर घूमने लगा। नेत्रोंमें अश्रु तो नहीं परन्तु अश्रुओंको उत्पन्न करने वाली परम अनुकम्पा अवश्य उमड़ पड़ी।

'भोज है क्या?' सामान्यतः समझमें न आने वाले कंपसे आन्दोलित साधुने प्रश्न पूछा।

'पिता जी!' कह कर भोज उस पवित्र साधुके कंठसे लिपट गया।

संन्यासीके हृदयमें भावना की ऊर्मि नहीं हो सकती। न उसे सामान्य स्नेहोपचार ही सुहाता है। साधुके चरणका स्पर्श हो सकता है; न कि कंठ का। फिर भी भोजसे न रहा गया। वह जानता था कि साधुका देह सामान्य जनका देह-स्पर्श नहीं करना चाहता। वह ये सब बातें भूल गया और आवेशमें साधुके गलेसे लिपट गया। साधुने अपनी पवित्रताका वर्त्तुल अवश्य बना रक्खा था। किंतु इस समय इस वर्त्तुलको छिन्नभिन्न हो जाने दिया। गलेसे लिपटे हुए भोजको हटाया नहीं। वह उसके मस्तक पर हाथ फेरते रहे। भोजकी आँखोंसे बहने वाली अश्रुधारा साधुके वक्षःस्थलको गीला कर रही थी। पिता-पुत्रके वर्षोंके बाद मिलन में उमड़ती हुई ऊर्मिको अब शान्त करनेका क्षण आ पहुँचा। ऐसा समझ साधु हारित मुनिने सहज हास्य मुख पर लाकर कहा, 'वत्स तू बढ़ा तो अवश्य किंतु मेरी ऊँचाईको नहीं पहुँचा।'

'आप अपने पास रहने दें तो...मैं शीघ्र ही आप जितना ऊँचा हो जाऊँगा।' हारित मुनिके कंधे परसे अपना मस्तक हटा कर अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे भोजने उत्तर दिया।

'खूब पढ़-लिख लिया या नहीं ?'

भोज निरुत्तर रहा।

'बैठ जा, तेरे ये मित्र तुझे रोते हुए देख कर हँसेंगे।' कहते हुए हारित मुनि व्याघ्रचर्म पर बैठ गये। उनके पश्चात् चारो व्यक्ति योग्य स्थान पर बैठ गये।

'वर्षोंके बाद पितासे भेंट होने पर आँसू नहीं आयेंगे।'

'देख भोज ! संन्यास ग्रहण करनेके पश्चात् अब...एक पुत्रके स्थान पर मुझे असंख्य पुत्र मिल गये हैं। वत्स, तूने और क्या-क्या सीखा।'

'आयुर्वेद भी सीख लिया। गुरु जी कहते थे कि बौद्धोंके साथ विवाद करनेके लिए मुझे भेजें या सैनिकोंकी शस्त्रस्पर्द्धामें भेजें, इसका निर्णय वे अभी नहीं कर सके हैं।'

'तूने तो त्र्यंबक भट्टसे शिक्षा प्राप्त की है न ?'

'जी हां, वे स्वयं एक महान् पंडित हैं।'

'मैं जानता हूँ, उनका संगीत-ज्ञान भी बड़ा ऊँचा है।'

'गांधर्ववेद पर वे दीपिका लिख रहे हैं...और स्वर आन्दोलनके गणितको भी वे बैठाते हैं।'

'तूने कुछ संगीत भी सीखा ?'

'जी हाँ, वाद्यमें बांसुरी पसंद की।'

'देवकीनन्दन बनना है ?' थोड़ा हँसकर हारित मुनिने पूछा।

'योगेश्वरके स्थानको भला क्या पहुँचा जा सकता है ?'

'योग याद किया ; यह ठीक। वत्स मा क्या करती है ?'

'मुझे पालती हैं...'

'पागल ! अब तो तू बड़ा हो गया...'

'मुझे तो नहीं लगता...बाकी समय निःश्वासें भरा करती हैं, पूजा-पाठ करती हैं, गायको...'

'वत्स ! तुझे ऐसी मा मिली यह अपना सद्भाग्य समझ। मेरा

भी यह सद्भाग्य ही था कि मुझे ऐसी पत्नी मिली! सरस्वती, गौरी और लक्ष्मी ; तीनोंका अवतार! उसने मुझे अपना जीवन सफल करने दिया।'

कुछ देर तक वहाँ सन्नाटा रहा। पश्चात् भोज किस प्रकार आश्रममें पहुँचा, यह पूछताछ करने पर कामधेनु-शोधका संपूर्ण प्रसंग सामने आया। खाखीने गाय द्वारा शङ्कर-लिंग पर दुग्धाभिषेक किये जानेकी सूचना भी हारित मुनिको दी।

'भोज! हम दोनोंको शुभ शकुन हुआ।' हारितने कहा।

'कैसे?' भोजने पूछा।

'एकलिंगजी की स्थापना इस दुग्धाभिषेक बिना रुकी हुई थी। अब सोमवारको प्रातःकाल यह स्थापना हो सकेगी।' हारितने प्रश्नका संदिग्ध उत्तर दिया।

'इसमें शकुन क्या हुआ, यह मेरी समझमें नहीं आया।'

'तू रविवारको रात्रिमें यहाँ आ जा।'

'देव और बाली भी आयें न!' भोजने पूछा।

'अवश्य! अब इन्हें अपना आजीवन मित्र समझना।'

'फिर!'

'पश्चात् तुझे मैं अपनी खोई हुई कामधेनुओंको ढूँढ़ लानेके लिए भेजूँगा—शिव स्थापनाके बाद।'

'कहां-कहां जाना पड़ेगा? मा पूछेंगी...! यद्यपि मैं कहीं भी जानेके लिए तैयार हूँ।'

'ठीक है, मा से कहना कि पृथ्वी-पर्यटन करना पड़ेगा। इसमें भारतवर्षकी कामधेनु कहां-कहां बिखरी हुई हैं इसका तुझे पता लगाना होगा। तेरे शास्त्र और शस्त्र दोनों की परीक्षा भी हो जायगी...कहना त्र्यंबक भट्टसे।'

'गाय तो यहीं रहेगी?'

'हाँ !'

किंतु इसे तो मैंने त्र्यंबक भट्टको समर्पित कर दी है।'

'उनसे कहना कि मैंने यह गाय उधार ली है...दूसरी कामधेनुके मिलते ही पहुँचा दूँगा...यों तो यह गाय उन्हें दूध भी न देगी...जिससे यह गाय यहीं रहे तो अच्छा।'

हारित मुनिका चरण स्पर्श कर तीनों मित्र वनसे नागद्रहको ओर जानेके लिए तैयार हुए। वनमें प्रवेश करनेके समयसे ही संध्या जैसा मद्धिम प्रकाश वहां बराबर बना रहा। परन्तु अब यह प्रकाश तेजीसे अदृश्य हो रहा था। उसके स्थान पर घोर अन्धकार वनको कवलित किये जा रहा था। मार्ग प्रदर्शनके लिए खालीको साथ चलनेके लिए कहनेमें तीनों मित्रोंको लज्जाका अनुभव हुआ। आगे बढ़ने पर भोजने देखा कि उसके दोनों मित्रोंने मार्ग पहचाननेके लिए आते समय ही चिह्न बना रखा था। अन्धकार जहाँ घना होता वहां देव-बाली चकमकके दो टुकड़ोंको रगड़ कर सूखी पत्तियाँ, सूखी वृक्ष-डाली अथवा बाँसको जला कर उससे मसालका काम लेते हुए आगे बढ़ते।

वनकी सीमा पूरी हो गई। देव-बालीका अपने पर्वतीय आवासमें जानेका मार्ग आ पहुँचा। भोजको घर पहुँचानेकी उनकी बड़ी इच्छा थी। उन्होंने काफी आग्रह भी किया किन्तु भोजने इसे अस्वीकार कर दिया। दिन हो या रात; भोजको कभी भय न लगता था। रविवारकी रात्रिके पूर्व इसी स्थल पर मिलनेका निश्चय कर मित्र अलग एहु। तीनोंकी बातचीतमें उत्साह प्रदर्शित हो रहा था। कामधेनुओंकी खोजमें होने वाला प्रवास एवं प्रवासमें आ पड़नेवाले साहसपूर्ण प्रसंगोंकी कल्पना तीनोंको खूब उत्तेजित कर रही थी। वन तथा गोचर पीछे छोड़ नागद्रह की अपनी कुटीमें प्रवेश करते समय भोजने देखा कि मध्यरात्रि हो गई है। आँगनमें एक तुलसीकी क्यारीके पास बैठी श्रीलेखा खुली आँखोंसे भोजकी प्रतीक्षा कर रही थी।

भोजका पदचाप माताने दूरसे ही पहचान लिया। उसके मुँहसे निकल गया, 'इतनी देर !'

'मा ! आज तो पिताजीके दर्शन हुए।' तेजीसे दौड़ कर माके गलेसे लिपट भोजने कहा।

'ऐं ?...किंतु वे तो संन्यासी हैं...उनके लिए पिता और पुत्र कैसा ?' निःश्वास लेते हुए श्रीलेखाने कहा।

'मुझे पहचान लिया, मा ! आपको भी बहुत याद किया। मुझे अगले रविवारको पुनः बुलाया है।'

'शरीर कैसा है ?' पतिका संन्यास पत्नीकी भावनाका भला कैसे निवारण कर सकता है।

'संन्यासी मिट गये-से लगते हैं।'

'अर्थात् !'

'मुनि सदृश जटा एवं दाढ़ी मैंने देखी...जरा गौर करके देखा... पहले तो भयानक लगे...पश्चात् तुरन्त पहचान लिया ! मा ! मुझे तो रुलाई आ गई।' भोजके कंठमें अभी भी कंप था। उसने देखा कि श्रीलेखा भी अञ्चलसे अपने चक्षु पोंछ रही है।

'तुम्हें क्यों बुलाया है ?...यहाँ आयेंगे या नहीं ?...हम भिक्षाके लिए बुलायें तो ?' श्रीलेखाने रुद्ध आवाजमें पूछा।

सोमवारको महादेवकी स्थापना करनी है। वह गाय जो यहां थी वह कामधेनु जाति की है। देव-बालीके साथ मैं जंगलमें गया—बहुत ही घने जंगलमें। शिवलिंग पर उसने दुग्धवृष्टि की। उसी स्थल पर शिव-स्थापना की जायगी...यहां आनेके संबंधमें तो पूछ नहीं सका...साहस नहीं हुआ। ऐसा तेज उनके नेत्रोंमें था ! और मुखके चारो ओर...'

बातें करते-करते मा-बेटा रात्रिमें सो गये। संन्यासमें अभाव अथवा वैरभाव रहता ही नहीं। अतः कोमल भावनासे हारित मुनिका पराशर शरीर श्रीलेखा स्मरण करे इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं।

प्रभात होते ही अपने हृदयमें खटकने वाली एक शंका उसने गुरुके समक्ष रखी।

'गुरु जी! संन्यासीको संन्याससे विरत किया जा सकता है?'

'यह प्रश्न तेरे मनमें क्यों उठा?'

'मैंने एक संन्यासीको मुनि वेषमें देखा।'

'संन्यासी संन्यासका त्याग तो कभी नहीं कर सकता...मात्र उसके लिए किसी बातकी बाधा नहीं रहती। परमहंस, मुक्त संन्यासीके लिए तो किसी प्रकारकी मर्यादा निर्धारित है ही नहीं। साधुओंके प्रति मनमें अश्रद्धा न होनी चाहिए।'

'साधु...संन्यासी संसारी नहीं बन सकता?'

'ऐसे प्रश्नका कारण?'

'मैंने अपने संन्यासी बने हुए पिताको मुनिवेशमें देखा है।'

'संसार-सेवनके लिए नहीं! संसारको मार्गदर्शन करानेके लिए भले ही वे संन्यासी बने हों। कदाचित मुनि बननेके लिए उन्होंने संन्यास ग्रहण किया हो—तू जानता ही होगा कि हमारी धर्म संस्कृतिको इस समय कितने संरक्षण की आवश्यकता है!'

'क्या हम कुछ नहीं कर सकते? मेरा मन और शरीर कुछ न कुछ करनेके लिए तड़फड़ाया करता है।' कहकर गतरात्रिकी सब बातें बताईं।

'वत्स! संन्यास लेनेके पश्चात् पराशर जैसा पण्डित मुक्तात्मा बन जाता है। उनकी तपश्चर्या अत्यंत भव्य है! वे मुनि हों अथवा अग्नि-होत्री, उनके लिए कोई प्रश्न नहीं उठता। जहाँ तक मुझे ज्ञान है... उनका आशय कुछ दूसरा ही है, अत्यंत विशाल। तुझे बुलानेका कारण भी यही है कि तू उनके कार्यमें सहायक बन!'

'भला वह कार्य क्या होगा?'

'वहीं तुझे मालूम होगा। अब अधिक चिंता करनेकी तुझे आवश्य-कता क्या है? तुझे आयुध भी साध्य है और वाचा भी...तेरे आसपास

नवीन-सृष्टि रचना होती हुई मैं देख रहा हूँ। बेटा! यह मत भूल कि हम तो केवल साधन मात्र हैं। यंत्र हैं, निमित्त हैं...' गुरुने सहर्ष उत्तम शिक्षा दी।

उत्साह प्रेरित करने वाला रविवार देखते ही देखते आ पहुँचा। गुरु एवं माताकी आज्ञा लेकर भोज उमंगके साथ हारित आश्रम जानेके लिए निकल पड़ा। गोचरमें बाली और देवके लिए उसे थोड़ा ठहरना पड़ा। ये मित्र भोजका साथ कभी छोड़ते न थे। दूर टीले पर चढ़ते-उतरते हुए दोनों युवकोंको भोजने तत्काल पहचान लिया और बातकी बातमें दोनों भील मित्र भोजके पास आ पहुँचे।

'थोड़ी देर हो गई, बापा!' देवने कहा।

'क्यों?'

'हमारे भीलावासमें एक साईं बाबा आ गये थे।' बालीने कहा।

'साईं!'

'जी हाँ, आपके साखी जैसा....लगभग!'

'तब?' भोजने पूछा।

'उन्हें नागद्रह जाना था। मार्ग खोजते हुए वे हमारे आवासमें आ गये थे।'

'इस समय ऐसे साईं बहुत दिखाई पड़ने लगे हैं। ये लोगोंको समझाते फिरते हैं कि मूर्ति, देवीकी पूजा आवश्यक नहीं है।' भोजने कहा।

'हुआ भी ऐसा ही। भील लोगोंको उनका यह कथन पसंद नहीं आया। सभी उसे मारनेके लिए दौड़ पड़े। हम दोनोंने बीच-बचाव न किया होता तो साईं बाबा जीवित न बचते। तुम्हारा परिचय न हुआ होता तो शायद हम मारनेमें भी शामिल हो गये होते।' देव बोला।

'मेरा परिचय? मैंने भला क्या कहा है?' भोजने पूछा।

'कुछ कहा या नहीं कहा इसकी बात नहीं है...किंतु तुम्हारा साथ

होनेके पश्चात् अकेले, निर्बल, निःसहायको मारने अथवा लूटनेका मन नहीं करता।' बालीने स्पष्टीकरण किया।

अपनी प्रशंसा अपने ही समक्ष हो और व्यक्ति उसे सुनकर फूला न समाये तो समझना चाहिये कि वह मनुष्य गिर रहा है।

अतः भोजने चलते-चलते बात बदलते हुए कहा—'मुझे तुमलोगों जैसा चापल्य नहीं मिला, देव!'

'मतलब?'

'तुम लोगोंके समान फुर्तीके साथ पर्वत पर चढ़ना-उतरना मुझे नहीं आता।'

'इसमें क्या रखा है! चार दिन हमारे साथ पहाड़ों पर घूमो, अपने आपही आ जायगा! लकड़ी या बाँस हो तो हम चौड़ीसे चौड़ी घाटी कूद कर पार कर जाँय।'

'तुम्हारा डोरीका खेल मैं प्रायः देखा करता हूँ किन्तु मुझे अभी तक नहीं आया।'

'बाँस, डोरी और तीर भीलके हाथमें ये तीनों हों तो दुनियामें उन्हें किसी बातका भय नहीं! देखो, यह डोरीका फंदा, इसे मैं उस डाल पर फेंकता हूँ...' कहकर बालीने वृक्षकी एक ऊँची डाल पर डोरी फेंकी।

'बिलकुल सटीक!' भोज चिल्ला उठा। उसकी आँखें सचमुच आनंदसे प्रदीप्त हो उठीं।

'अब तुम फेंककर देखो।' देवने एक डोरीमें फंदा बनाकर भोजके हाथमें देते हुए कहा।

भोजने एक डाल पर फंदा फेंका किंतु ठीक उस डाल पर न पड़ा। उसने पुनः डोरी फेंकी। वह डाल पर पड़ी तो जरूर किंतु फंदा उसमें नहीं फँसा। तीसरी बार उसने फिर फेंका और देव-बाली हर्षसे पुकार उठे, 'शाबाश! अब तुम्हें डोरी फेंकना आ गया।'

'इसका उपयोग?' भोजने पूछा।

'डाली तोड़ना हो तो इससे तोड़ी जा सकती है। बाघ, सिंहसे बचनेके लिए पेड़ों पर चढ़ा जा सकता है। किला डाँकना हो तो वह भी इससे किया जा सकता है।'

इस प्रकार बातचीत, खेलकूद करते और हवाई किले बनाते हुए तीनों मित्रोंने गोचर भूमि पार कर वनमें प्रवेश किया। प्रवेश करते ही शंखनाद, घंटानाद और दुंदुभिनाद सुनाई पड़ने लगा। तीनों मित्र एक दूसरेका मुँह ताकने लगे। आगे पैर बढ़ानेमें उन्हें थोड़ा संकोच हुआ। वन निश्चय ही गंभीरता प्रेरित करता है।

बीच-बीचमें 'अ...ल...ख' का उद्‌गार भी सुनाई पड़ जाता था। कभी त्रिशूलधारी, सिंदूर तिलक विभूषित, कौपीन अथवा मृगचर्म पहने हुए, जटा एवं दाढ़ीसे वनकी विकरालताको बढ़ाने वाले, शरीरके अनावृत भागमें राख मले हुए खाखी भी आगे या पीछे आते-आते दिखाई पड़ रहे थे। खाखीके पास आ जाने पर तीनों मित्र उन्हें गौरसे देखते अवश्य थे परन्तु किसी खाखीने उनके साथ बातचीत करने अथवा उनकी ओर आँख उठाकर देखनेकी चेष्टा तक नहीं की। अधिकसे अधिक कभी-कभी वे केवल 'अ...ल...ख...' पुकार उठते थे।

'इन खाखी साधुओंको देखा!' भोजने पूछा।

'अति भयंकर!' देवने कहा।

'कैसे!'

'इनमेंके अघोर पंथी तो मनुष्यको भी मारकर खा जाते हैं।' बाली बोला।

'इससे लाभ?' भोजने पूछा।

'इनके मंत्र-तंत्रमें कुछ होगा।'

'भूत, पिशाच, योगिनी, डाकिनी-शाकिनी सभीकी ये साधना करते हैं।'

'हम कहें तो क्या ये भूत-पिशाच बुला देंगे?' भोजने पूछा।

'हमारा कहना भला ये कभी करने वाले हैं !'

'अधिक बोलें तो ये हमें कच्चा ही खा जायँ ।'

'किसीको खाते हुए देखा है ?' भोजने प्रश्न किया ।

'कुछ लोगोंने देखा है ।...बाघ, सिंह तो इन्हें देख गुफामें घुस जाते हैं ।'

'अ...ल...ख...' पीछे एक अति कर्कश कंठ सुन पड़ा । तीनोंने पीछे घूमकर देखा तो एक बलवान अवधूत, भस्ममर्दित देह पर भयंकर नागको खिलाता हुआ चला आ रहा था । उसकी भयंकरता चौंकाने वाली थी ।

'साधो ! कहाँ जा रहे हैं ?' पास आये हुए अवधूतसे डरते-डरते भोजने पूछा ।

साधुने तीनोंकी ओर आँख उठाकर देखा । अंगारेके समान लाल दोनों नेत्र मानवकी सामान्यता सूचक तो थे ही नहीं । शरीर पर खेलने वाले भुजंगने भी फन उठाकर अपनी लपलपाती हुई जीभ बाहर फेंकी । यह कहना कठिन था कि भुजंगकी जिह्वा अधिक तीक्ष्ण थी अथवा साधुके नेत्र !

घूरकर साधुने पूछा, 'तुझसे मतलब ?'

'यदि आपको कोई अड़चन न हो तो हम सब साथही चलें ।' भोजने अधिक साहस कर कहा । देव-बाली भोजके इस प्रकारके साहससे प्रसन्न नहीं जान पड़े । खाखी जहाँ जाते हों, जाने देना चाहिये । उनसे छेड़छाड़ नहीं करना चाहिये । व्यर्थमें संकट मोल लेनेके वे पक्ष में न थे ।

'तुम सब कहाँ जा रहे हो ?' साधुने पूछा ।

'जहाँ आप जा रहे हैं ।' कल्पना की कुछ सहायता ले भोजने संक्षेपमें उत्तर दिया ।

'कहाँ जा रहा हूँ, जानता है ?' कुछ उग्र स्वरमें खाखीने पूछा ।

'अवश्य !'

'बता, कहाँ जा रहा हूँ ? ठीक न निकला...तो समझ रखना।' साधुने धमकी दी। साथही उसके गलेमें लिपटे हुए सर्पने भी फूत्कार किया। पर भोज तक उसकी फूत्कार नहीं पहुँची।

'महाराज! जाने दीजिये, यह तो विवेक शून्य है।' डरकर देवने कहा। उसे डर लग रहा था कि साधु तरेर कर भोजको भस्म न कर डाले।

'आप शिव स्थापनामें जा रहे हैं, ठीक है न ?' भोजने कहा।

'तुझसे किसने कहा ?' साधुने विस्मित हो पूछा।

'मैं भी वहीं जा रहा हूँ।'

'तुझे किसने बुलाया ?'

'हारित मुनि ने!'

साधु कुछ देर तक भोजकी ओर ताकता रह गया। भोजका कथन सत्य है, इसका उसे विश्वास हो गया। कुछ देर तक चारो व्यक्ति एक साथ ही आगे बढ़ते गये। आसपाससे 'अ...ल...ख' का उद्‌गार अधिक सुन पड़ रहा था। घंटानाद अथवा शंखनाद दूरसे ही बराबर सुनाई पड़ रहा था। क्रमशः वह और अधिक स्पष्ट होता जा रहा था।

एकाएक साधुने भोजसे पूछा, 'तुझे दीक्षा लेनी है ?'

'जो कुछ मुनि कहेंगे, वही करूँगा।' भोजने उत्तर दिया।

'कितना पढ़ा है ?'

'नागद्रहके पण्डित जितना पढ़ा सके।'

'शिवागम पढ़ा ?'

'जी नहीं।'

'शस्त्र व्यवहार करना आता है ?'

'जी हाँ, जो बाकी रह गया था उसे इन मित्रोंने सिखा दिया।'

'बाकी क्या रह गया था ?'

'डोरीका शस्त्र साधन रूपमें उपयोग।'

'विषज्ञान है तुझे ?'

'जी नहीं, जान पड़ता है आपको है।'

'कैसे जाना ?'

'इस विष-भंडार सदृश नागको आप देह पर लपेटे हुए हैं...इसीसे।'

'खाखी बनना हो तो विश्वका सब विष पचा जाना आवश्यक है।'

'आप जैसे योगियोंकी कृपा होनेसे सब कुछ हो सकता है।'

योगी-खाखीके मुखपर स्मित रेखा फूट निकली। भोजके कुछ पास जाकर उसके मस्तक पर उसने हाथ रक्खा। भयंकर सर्पका चिकना शरीर भोजसे जरा छू गया। वह काँप उठा। सर्पको दूरसे पत्थर फेंककर अथवा नजदीकमें लकड़ीसे मार डालना उसके लिए सरल था। परंतु नागका प्रथम स्पर्श उसे असह्य लगा।

'कुमार, जीवन क्या है। सजीव सर्पके साथ खेल। साधुकी दीक्षा विषधर सर्पको मित्र बनानेका शिक्षण ही है।' साधुने कहा।

उसके मुखकी रेखाएँ उत्तरोत्तर कोमल होती जा रही थीं।

'खाखी बने बिना यह नहीं आ सकता ?' भोजने पूछा।

खाखी बननेमें या साधुवेश धारण करनेमें उसे कोई भी अड़चन नहीं मालूम पड़ रही थी। उसके स्वभावको साधुपनका साहस एवं स्वातंत्र्य अत्यधिक प्रिय था। केवल एक ही चीज उसे अच्छी न लगती। वह थी माता से विच्छेद। वह सब कुछ करनेके लिए तैयार था परंतु श्रीलेखा के बिना जीवित रहना उसे असम्भव-सा जान पड़ता था। इसका ज्ञान उसे सदैव बना रहता था। इसीसे उसने यह प्रश्न पूछा।

खाखी इस प्रश्नकर्त्ताको समझ नहीं सका; तथापि अधिक प्रसन्नता-पूर्वक उसने उत्तर किया—'खाखी बने बिना यदि यह कला तुझे आ जाय तो तू योगीसे भी श्रेष्ठ योगेश्वर बन जाय।'

'यानी ?'

'शिव एवं कृष्णकी श्रेणीमें तू पहुँच जाय।'

'एक अजन्मा, दूसरा जन्मयोगी ! मैं तो अति पामर हूँ, महाराज !'

भोजने नम्रतापूर्वक कहा। शिव या कृष्णकी चरण-रज बननेकी भी योग्यता उसमें नहीं है। यह वह अच्छी तरह जानता था। अपने शरीर एवं ज्ञानकी मर्यादाका ज्ञान उसे नहीं था, यह कहना मूर्खता होगी। उसके दोनों मित्र प्रसन्न हो गये। उनकी समझमें न आने वाली भोजकी शास्त्र-वाणीसे खाखी प्रसन्न हो रहा था। इसे दोनों मित्रोंने देखा। तब उन्हें विश्वास हो गया कि खाखी अवश्य ही उसे आशीर्वाद देगा।

अब शङ्खनाद अत्यन्त सन्निकट सुन पड़ा। रात्रिका अन्धकार तेजीसे सबको अपने उदरमें लीन किये जा रहा था। परन्तु एक झुरमुटके पीछे प्रकाशकी झिलमिलाहट दृष्टिगोचर हो रही थी। उसी ओरसे शङ्खनाद भी आ रहा था। सभी उसी प्रकाशकी ओर बढ़े। चारो व्यक्ति कुछ ही क्षणमें हरिताश्रममें पहुँच गये। 'अ...ल...ख' के नादसे उनका स्वागत करनेके लिए सहस्रों खाखी वहाँ उपस्थित थे।

सभी साधुओंका शरीर अत्यंत हृष्ट और पुष्ट था। कौपीन मात्रसे ढाँके हुए अंगको छोड़ समूची देह विभूतिमार्जित कपिश दिखती थी। किसीके कपाल पर सिंदूर-तिलक था तो किसीके अंग पर चक्र, गदा अथवा त्रिशूलकी अमिट चित्रकारी बनी हुई थी। सभी जटा-श्मश्रुधारी थे। किसीके हाथमें चिमटा, किसीके हाथमें शूल, किसीके हाथमें त्रिशूल तो किसीके हाथमें खड्ग चमक रहा था। किसीके गलेमें भयंकर विषधर खेल रहा था। किसीके गलेमें विकराल मुखवाले सर्प जीभ निकालकर फणधर नागकी अपेक्षा अपना अधिक चापल्य प्रदर्शित कर रहे थे। किसीकी देहके चारो ओर मानो गति शून्यतामें ही सजीवता हो यह मानने वाला विशालकाय अजगर यज्ञोपवीतके समान लिपटा पड़ा था। दो-एक खाखी तो बिसखापड़े पर ध्यान लगाये बैठे थे। कुछ साधु बिच्छुओंकी माला गलेमें धारण किये हुए सबका ध्यान आकृष्ट कर रहे थे।

देव व बालीके पहाड़ोंमें निवासने सामान्यतः उन्हें निर्भय बना दिया

था। भोजका शास्त्र-अध्ययन एवं सात्विक निस्पृहता उसे भी अभय बना रही थी। परंतु यह दृश्य सचमुच तीनोंके लिए कल्पनातीत था। यदि एकाध साधु सर्पको खिलाते हों, या हाथ पर बिच्छू रखे हों, तो थोड़ा कुतूहल उत्पन्न हो सकता है और वह तुरंत शांत भी हो जाता है। परंतु जहाँ सैकड़ों खाखी एकसे बढ़कर एक भयंकर दृश्यकी स्पर्द्धा कर रहे हों तो वह दृश्य कितना भयंकर होगा? जहाँ दृष्टि चली जाय वहीं संपूर्ण दृश्य-परंपरा खड़ी हो जाय। उन्हें देखकर किसी भी उद्भट वीरके हृदयमें कंपन हो जाना स्वाभाविक ही है। जो शेष था उसे एक नये खाखीने आकर पूरा कर दिया। एक ओर मुक्त बाघ और दूसरी ओर मुक्त सिंह लिए, 'अ...ल...ख' पुकारता हुआ एक साधु आ पहुँचा।

भयानक रसका प्रदर्शन तो नहीं हो रहा था?

खाखी भी स्वयं इस भयानकताको बढ़ा रहे थे। उनके मुख, आँख और क्षण-क्षण पर होने वाला अलखका गर्जन किसीको भी कँपा देने वाला था। इसमें शङ्खनाद, घंटनाद भी हो रहा था। नौबत भी बज रही थी; जिससे संपूर्ण वातावरण भय-प्रेरणा करता हुआ विलक्षणतापूर्ण बन गया था।

इसी समुदायमें तीनों मित्रोंको प्रवेश करना था। किसी खाखीकी आँखें विशेष मैत्रीपूर्ण दिखाई नहीं दीं। कोई भी उनका स्वागत करनेके लिए आगे नहीं आया। अलखके सिवा और कोई उद्गार न सुनाई देता। ऐसा मालूम पड़ रहा था मानो यही उनके लिए स्वागतके शब्द थे। कितने ही खाखी बैठे थे। कुछ घूम रहे थे और कुछ ध्यानमग्न थे। प्रथम प्रवेशके समय तीनों उद्भट वीरोंनें अलक्षित कंपनका अनुभव किया। विचित्र प्रकाश-योजनामें भोजने चारो ओर नजर दौड़ाई। हारित मुनि उसे कहीं दिखाई न दिये। ये मुनि ही केवल उसे पहचानते थे। उन्हींकी आज्ञासे वह वहाँ आया था और वे वहाँ थे ही नहीं! उसने पुनः प्रकंपनका अनुभव किया। तत्क्षण एक दृढ़ हाथ उसके कंधे पर पड़ा।

वर्षों पहिले बाघ दिखाने वाला, नागद्रह पहुँचाने वाला, खाखी भैरवनाथ का यह हाथ था। इस अपरिचित भयंकर मेलेमें एक परिचित मुख दिखाई पड़ जानेसे उसका भय जाता रहा। भैरवनाथने मुस्कुराकर पूछा, 'आ गया ?'

'जी।'

'अच्छा लगता है न ?'

'उसीके सब साधन तो यहाँ एकत्र हैं! अब थोड़े भूत-प्रेतोंका आवाहन कीजिए ताकि सब उपकरण पूर्ण हो जाय।' भोजने कहा।

भैरवनाथ हँस पड़े। पास बैठे हुए नागधारी खाखी भी यह सुनकर हँस पड़े और बोले, 'आ भी सकते हैं! देखो, डरोगे तो नहीं ?'

'भयकी भूमिका तो कभी ही पार कर गया!' कह कर भोज अपने मित्रोंके साथ साहसपूर्वक धीरे-धीरे घूमने लगा। किसी-किसी खाखीने उनसे बातचीत भी की; किंतु कुछने तो उनकी ओर दृष्टिपात तक भी नहीं किया। पर सबने यह अवश्य समझ लिया कि आज उनकी मंडलीमें तीन साधु बढ़ने वाले हैं।

सिंगा और शंख एकाएक बज उठा। दो खाखी साधुओंके साथ हारित मुनि गुफासे बाहर आये और साधुसभामें प्रवेश किया। एकत्र सभी साधु उठ कर खड़े हो गये और एक कुछ ऊँची वेदिका पर बिछाये हुए व्याघ्रचर्म पर सबका नमन स्वीकार करते हुए हारित मुनि जाकर खड़े हो गये। सबने उन्हें नमस्कार किया। साथही उन्होंने यह भी देख लिया कि अपने मित्रोंके साथ भोज आ गया है। इतना ही नहीं; वे स्थिरतापूर्वक सबके बीच घूम फिर रहे हैं। खाखी साधुओंके ऐसे मेलेमें प्रवेश करना और स्थिरता कायम रखना सचमुच कठिन था...ऐसा नहीं था कि हारित मुनि इसे अच्छी तरह न समझते हों।

स्मितयुक्त नमस्कार कर हाथके इशारेसे सबको बैठनेकी प्रार्थना कर अलखके उद्गारके साथ वे नीचे बैठ गये। संपूर्ण समुदायने अलखका

उद्‌गार ग्रहण कर एक स्वरसे प्रत्युद्‌गार किया। अलखके सामूहिक घोषसे जंगल प्रतिध्वनित हो उठा। मुनिके बैठ जानेके पश्चात् सब खाखी बैठ गये।

वीणास्वर एवं मृदंग-ताल भी एक ओरसे सुनाई दिया। घुँघरुओंकी झंकारके साथही संपूर्ण समुदाय शांत और स्तब्ध बन गया। दस-बारह योगिनी युवतियोंने बीचके खुले स्थानमें आकर पहले हारित मुनिको और तब संपूर्ण साधु-समाजको नमस्कार किया। नमस्कार करनेके साथही शरीरमें बिजली दौड़ गयी हो इस प्रकार योगिनियोंने अपने अंगोंको मरोड़ना तथा मुद्राओं द्वारा शून्यमें रेखाएँ खींचना प्रारंभ कर दिया। मुद्रामें ही सबको नमन कर उन्होंने पायल झंकारना प्रारंभ किया। वीणा तथा मृदंग उनके नर्तनके साथ स्वर और ताल देने लगे। मृदंग बजते ही एक खाखीके कंठसे शिवस्तोत्रका वीर विक्रमशाली शब्द संगीतमें उच्चरित हुआ।

जटा कटाह संभ्रम भ्रमन्निलिंप निर्झरी,
विलोल विचिवल्लरी विराजमान मूर्धनि।
धगद् धगद् धगद् ज्वलल्ललाटपट्टपावके,
किशोरचंद्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम॥

मानो प्रत्येक शब्द नृत्यमें अवतरित हो रहा हो इस प्रकार योगिनियोंने अभिनयके साथ ओजस्वितापूर्ण एवं ललित नृत्य प्रारंभ कर दिया। रावण द्वारा की गई शिवस्तुतिका नृत्य रावणको भी प्रकट कर रहा था और शिवको भी। भक्त और भगवान दोनों थ्र! जहाँ शब्द-रचना भार और भयानकता चाहती थी वहाँ योगिनियोंका नर्तन भी भार और भयानक दर्शक बन जाता था। वनमें, खाखी साधुओंके बीच किसी प्रकारके साज बिना नर्तकियोंके नृत्याभिनयने, वीणाकी सुरश्रुति मूर्च्छनाने, मृदंग वाद्यकारके ताल और बीच-बीचमें गीतके उच्चारणने सबके समक्ष तत्काल कैलाश, हिमराशि, शिवका तपःस्थान, चन्द्रमौलि शिव,

गंगावतरण, नंदी सिंहवाहिनी दुर्गा और शिवको गणोंके एक साथ खड़ा कर दिया।

भोजका संगीतसे परिचय था परंतु नृत्यसे नहीं। ब्राह्मण नृत्य जानते थे। नृत्य-शास्त्र सीखते-सिखाते थे। परंतु ब्रह्मपुरीमें नृत्यका अधिक प्रचलन भोजने नहीं देखा था। संगीत सीखते समय नृत्यके विषयमें गुरुसे उसने पूछा भी था कि क्या वह नृत्यकलाकी शिक्षा ग्रहण कर सकता है? गुरुने इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। भोजके आग्रह पर त्र्यंबक भट्ट उत्तर देते, 'वत्स! नृत्य मुक्तोंकी साधना मानी जाती है। हम अभी उसके अधिकारी नहीं समझे जा सकते।'

'क्यों?'

'नृत्य योगिनियाँ कर सकती हैं अथवा अप्सरायें! नृत्य देख सकते हैं खाखी, योगी अथवा व्यसनमें लिप्त पुरुष।'

गुरुवाक्यमें नृत्यके प्रति अरुचि थी।

'आपने कहा न कि यह मुक्तोंकी साधना है!'

'हाँ, या तो योग मानवको मुक्ति देता है या व्यसन। योगिनियोंको देहका मान नहीं रहता और वारांगनाओंकी तो देहकी उपलब्धि भूल ही जान पड़ता है। किसी दिन मेरा कथन तेरी समझमें आ जायगा।'

यह गुरु-वाक्य आज भोजको स्पष्ट होता हुआ जान पड़ा। नृत्य द्वारा उत्पादित तादृश्यतामें भोज तल्लीन हो गया था। अनेक महान्, क्रूरताके प्रतिबिंब स्वरूप दिखाई पड़ने वाले, सर्प और बिच्छूके साथ खेलने वाले खाखी सभी तल्लीन हो अपने आपको भूल गये-से जान पड़ रहे थे। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों नृत्यमें उत्तरोत्तर सजीवता आती गई। एक-एक कथाका सब प्रसंग प्रत्यक्ष होता गया। शिव-कथाके जिन-जिन अंशोंका भोजको ज्ञान नहीं था वह इस प्रकार प्रदर्शित किया गया कि भोजको अपने आपही सब समझमें आ गया।

उसके दोनों मित्र भी स्तब्ध हो इस नृत्य-सृष्टिको देख रहे थे। जब पार्वतीका भील-नृत्य-प्रयोग प्रारंभ हुआ तब दोनोंने सानन्दाश्चर्य देखा कि भील-पोशाक, भील-आभूषण, भील-कन्याकी विशिष्ट मुद्रा एवं भील-नारीके देहमें निखर उठने वाला सौंदर्य इन नर्त्तन-प्रवीण योगि-नियोंने अत्यंत स्पष्टता पूर्वक एक भी भूल किये बिना बड़ी ही प्रवीणताके साथ नृत्यमें प्रदर्शित कर दिया था। वीणाने भील-कंठके अनुरूप सुरावलि भी खड़ी कर दी। मृदंगने वन, टीले, घाटी एवं पशु प्रकट कर भील-आवासको इस स्थल पर उतार दिया था। देव-बालीके शरीर भी नृत्यके आन्दोलनसे फड़कने लगे। भील-सृष्टि, भील-सुन्दरी, भील-कंठ एवं भील-नृत्यमें इतना अधिक सौंदर्य होना संभव है, इसका ज्ञान पहली बार इन दोनों भील कुमारोंको हुआ।

जब पशुपतिका स्वरूप धारण किये शिवका तांडव-नृत्य होने लगा तब तो संपूर्ण खाखी समाजने एक अजीब वीरत्व भावका अनुभव किया। एकाएक संगीतकार रुद्र एवं मरुत्की वेदऋचाओंको प्रलंब संगीतमय वाणीमें प्रकट करने लगे और झंझावातकी प्रचंड सनसनाहट एवं समुद्र-गर्जन जैसे नादके साथ तांडवकी धमक नृत्य-शिखर पर जा पहुँची। उस समय भोजको ऐसा जान पड़ा मानो उसमें शिवका—शिवके रुद्र स्वरूपका आविर्भाव हुआ हो। उसे ऐसा लगा मानो आकाशको वह हथेली पर उठाये हुए है। पृथ्वीको एक ही पदाघातसे रसातलको भेज रहा है। समुद्रमें कूद दो हाथमें उसे पार कर रहा है और एक ही छलांगमें हिमगिरि पार कर मध्य एशियाके मैदानोंको प्रकंपित कर रहा है। उसके देहमें सामर्थ्यका वेग उमड़ आया। उसका अंग-प्रत्यंग पार्थिव हाड़-माँस मिटकर शक्ति-शिखा बन गया। इस समय वह विश्व विजयी वीर बन गया...अथवा सर्वस्वको—स्वयंको अग्निमें होम करने की शक्ति धारण करने वाला प्रचंड बली बन गया। मृत्युको मानो कंडुकवत् उछाल रहा है, ऐसा उसे जान पड़ा।

यह भावना अकेले भोजमें ही नहीं बल्कि वहाँ उपस्थित सब खाखी साधुओंमें भी जागृत होती हुई दीख रही थी। पूरे मैदानमें जीवन उमड़ पड़ा था। मृत्यु मानो न दिखाई पड़ने वाली, डूब गई हुई या डूबती हुई तृणकी पत्ती ऐसी अदृश्य हो गई थी। जीवन के इस अतुल प्रवाहके समक्ष संपूर्ण विश्व पिछड़-सा गया था। केवल हारित मुनि, मुनिके पास रहकर सेवा करने वाले भैरवनाथ, भुजंगधारी खाखी, इन तीन व्यक्तियोंके नेत्र सर्वविकार रहित ध्यानस्थ जैसे, किसी प्रकारका भाव प्रकट किये बिना नृत्यको देख रहे थे। बीच-बीचमें चारो ओर नृत्यके प्रभावकी थाह भी लेते थे। सर्वोपरि हारित मुनिकी दृष्टि अत्यन्त दक्षतापूर्वक भोज और उसके मित्रों पर भी घूम जाती थी। उनके मुख पर सतत प्रसन्नता बरस रही थी। वे नृत्यसे—नृत्यके सामान्य प्रभावसे अथवा नृत्यके विशेषतः भोज पर होने वाले असरसे प्रसन्न हो रहे थे; अथवा किसी अन्य कारणसे, यह बताना कठिन है। जिस समय प्रथम उन्होंने प्रवेश किया उस समय एवं भिन्न-भिन्न नृत्योंकी रचनाके अन्तमें लगभग एक ही प्रकारकी सुहावनी शान्ति उनके मुख पर बनी रही।

एकाएक नृत्य बन्द हो गया। सम्पूर्ण साधु-मंडलने एक भयंकर झटकेका अनुभव किया। भोजने भी अनुभव किया। तथापि नृत्यकी झंकार, वीणाका मानव-कंठके साथ स्पर्द्धा करता हुआ रव, नृत्यके साथ ही साथ श्रोताओंके हृदयोंको दौड़ाता हुआ मृदंगका घोष एवं विविध अभिनय बन्द हो जाने पर भी अभी श्रवण, दृष्टि एवं हृदयसे लुप्त नहीं हुआ था।

'प्रभात नक्षत्र उदयाचल पर आ गये हैं...सूर्यके प्रथम किरणके साथ ही शिवलिंगका उद्यापन करना है...साधु-मंडलको विश्वास तो हो ही गया होगा कि साक्षात् शिव इस समारंभ में पधार चुके हैं...' हारित मुनिने नृत्यकी तल्लीनताको दूर करने वाले इन शब्दोंका उच्चारण किया।

'अ...ल...ख' का उच्चारण कर साधुसभाने मुनिके कथनका अनुमोदन किया।

अब 'अ...ल...ख' के जय घोषमें भोज भी शामिल हो गया।

'अपनी कामधेनु लाओ, दुग्धाभिषेक हो।' मुनिने कहा।

भोज द्वारा रक्षित कामधेनु कुछ आगे लाई गई। कामधेनुका सुन्दर शृङ्गार किया गया था एवं एक गेरुआ वस्त्र भी उस पर डाल दिया गया था। जहां मुनि विराज रहे थे, वहीं पास ही में शिवकी एक पाषाण पिंडी स्थापित थी। गायने आकर इसी पिंडी पर दूधकी धारा बहा दी।

'अरे, इतनेमें ही प्रभात हो गया!' भोजने धीमे स्वरमें बालीसे कहा।

'समय तो बिलकुल जान ही नहीं पड़ा।' देव बोला।

सचमुच प्रभात हो गया था। हारित मुनिके निम्न वाक्योंने सबको पुनः शांत कर दिया।

'हमारी कामधेनुओंको लोग लूटकर, चुराकर लिये जा रहे हैं। अन्तिम गोधनके साथ मेरे आश्रमकी अन्तिम गाय भी लूट ली गई। सद्भावसे इन भील कुमारोंके झुण्डमें आकर मिल गई एवं नागद्रह के एक ब्रह्मकुमारने उसे बाघके मुखसे बचाकर मुझे पुनः वापस सौंपा। मैं चाहता हूँ कि यह ब्रह्मकुमार हमारे इस खाखी-मंडलका दर्शन करे।'

भोज संकोचसे संकुचित हो गया। खड़े हो सबका दर्शन करनेकी उसे इच्छा हुई अवश्य; परन्तु इच्छाका दमन करने वाली नम्रता उसे उठने नहीं दे रही थी। हारित मुनिने कहा, 'वत्स! तुम तीनों मित्रगण खड़े होकर इस महात्मा-समूहका दर्शन करो। मृत्युजित इन महात्माओंका दर्शन दुर्लभ है।'

भोज, बाली एवं देव तीनों मित्रोंने संकोचपूर्वक खड़े होकर महात्माओंका दर्शन किया और हारित मुनिके पास जा उन्हें साष्टांग प्रणाम कर अपने आसन पर आकर वे पुनः बैठ गये।

'अ...ल...ख' की गगनभेदी गर्जना वनको गुञ्जित कर रही थी।

'एकलिंग जीकी स्थापना मेरे जीवनका लक्ष्यका था। आज आप महात्माओंकी कृपासे सिद्ध हो रहा है। कार्य-सिद्धिमें विघ्न आया था। किन्तु हमारी छीनी गई कामधेनुको लाकर शिव-स्थापना संभव बनाने वाला ब्रह्मकुमार भोजके हाथसे ही यह कार्य हो—यह मुझे इष्ट जान पड़ता है...पर आप सबकी सम्मति होने पर ही!' हारित मुनिने सभासे सम्मति माँगी।

सर्व मंडलीके गुरु-स्थान पर विराजे हुए हारित मुनिको सम्मतिकी कोई आवश्यकता न थी। उनकी आज्ञा ही यथेष्ट थी। सबने 'अ...ल...ख' के उद्गार द्वारा सम्मति दी। पश्चात् भोजको विधिपूर्वक स्नान कराया गया। शिवके आवाहनके लिए वेदकी ऋचाओंके भव्य सामूहिक घोषके बीच सब क्रिया भोजके हाथ से कराई गई।

आकाशमें प्रथम सूर्य-किरण फूटनेके साथ ही क्रिया समाप्त हो गई। भोजको दिये गये महत्वका गांभीर्य उसके हृदयमें पूर्ण रूपसे व्याप्त हो गया। यदि संयोग दूसरा होता तो महत्वने उसे अत्यंत पुलकित कर दिया होता। महत्व अथवा आनन्दका प्रदर्शन भी हो गया होता! परन्तु शक्तिसे उमड़ती हुई भोजकी सुगठित देह एवं संस्कार समृद्धिसे ओत-प्रोत उसका हृदय विजयके समय अल्प मति बननेके बदले अत्यन्त गांभीर्य धारण कर रहा था। एकलिंग जी की स्थापनाके पश्चात् पूजन अर्चन, आराधना एवं प्रार्थनाकी विधि दिन भर चली। उपवास तो धर्म कार्यका आवश्यक अंग ही समझा जाता था। साधु, भोज एवं उसके मित्रोंको एक दिन-रातका उपवास करना था। उन्हें कोई विशेष कष्ट नहीं हुआ। संपूर्ण रात्रि और दिन सतत चलने वाले कार्यक्रमकी विविधता और गांभीर्य में उपवासका किसीको स्मरण भी नहीं रहा।

सायंकाल प्रदोष समय शिवको भोग लगानेके पश्चात् संपूर्ण खाखी-समूहके साथ भोज एवं उसके मित्रोंने एक पंक्तिमें बैठकर प्रसाद

ग्रहण किया। खाखीओंके समाजमें जाति-भेद दिखाई नहीं दिया। पार्वती पति शंकरके विजय-नादके साथ उपवासी हारित मुनिका दर्शन कर अनेक खाखी रवाना हो गये। कुछ आश्रममें ही विश्राम करने लगे। खाखीका विश्राम अर्थात् अग्निकी धूनी का सान्निध्य, भस्मका मार्जन और चर्म अथवा दर्भासन पर शयन! ऊपर आकाश और नीचे धरती!

६

इसी गंभीर रात्रिमें शिवस्थानके पास स्थित गुफाके भीतर हारित मुनि, भैरवनाथ, नागको देह पर सतत खिलाने वाले भोरिंगनाथ और भोज बैठे थे। गुफाके एक कोनेमें दीपक टिमटिमाता हुआ गुफाकी विचित्रता को बढ़ा रहा था। दीवालसे एक त्रिशूल लटक रहा था। एक छोटी-सी वेदी पर रक्षा रखी हुई थी। दो-एक गेरुए वस्त्र बाँस पर टँगे हुए थे।

भोजका मुख जमीनकी ओर झुका हुआ था। तीनों व्यक्ति अत्यंत कृपापूर्ण दृष्टिसे भोजको देख रहे थे।

'तो तुम्हारा साधु बननेका अन्तिम निश्चय है?' हारितने भोजसे पूछा।

'जी हाँ, शङ्करको समर्पित जीवन अब साधु नहीं तो और क्या बनेगा?'

'अच्छा, शङ्करका अर्थ क्या है; यह तो समझ ही गये होगे?'

'जी हाँ! सुखकर देवत्व ही शङ्कर हैं। इनकी आँखोंसे सदैव आशीर्वादकी वर्षा होती रहती है...आपकी आँखोंके सदृश!'

'सम्भवतः तुम्हारा आशय है कि शङ्करके उपासकोंको भी सर्वत्र समृद्ध और शान्ति फैलानी चाहिये!'

'जी!'

'हमारे शङ्करको दो के अलावा तृतीय नेत्र भी है, यह भी तुम जानते ही हो ?'

'कदाचित वह सदैव बन्द ही रहता है।'

'सदैव नहीं। सदैव बंद रहने वाले नेत्रको नेत्र नहीं, केवल नेत्रका चित्र कह सकते हैं।'

'हो सकता है कि वह कभी खुलता हो, किंतु बंद रहनेके लिए ही।'

'शङ्करका तृतीय नेत्र सदा खुला रहे तो संपूर्ण सृष्टि जलकर भस्म हो जाय। भस्म करनेकी आवश्यकता होने पर बंद नेत्र अवश्य खुल सकता है। यह नेत्र निर्जीव तो कभी भी नहीं कहा जा सकता!' हारित मुनिने विवेचन किया।

'संहार और प्रलय उत्पन्न करने वाली आँख भला निर्जीव कैसे कही जा सकती है ?'

'तब अग्नि-पूर्ण आँख शङ्करका एक अंग तो अवश्य ही है। शङ्करका पूजन अर्थात् शंकरके तीनों नेत्रोंका पूजन! तृतीय नेत्र प्रायः बंद ही रहता है। यह तृतीय नेत्र कब खुलता है, इसका तुम्हें कुछ ज्ञान है ?'

'याद आता है...काम-दहनका प्रसंग!'

'बहुत ठीक! कामका दहन किये बिना शङ्कर पदको प्राप्त किया ही नहीं जा सकता। शङ्करकी सच्ची भक्तिका अर्थ है काम, कामना, कामिनीकी वासनाका संपूर्ण दहन!'

'हम खाखीयोंके पास रहने वाली राख कामदहनका सतत स्मरण कराती है। काम भस्म करनेके पश्चात् जो शेष रहे वही हमारी विभूति!' भोरिंगनाथने कहा।

'अच्छा...भोज! तुझे शङ्करकी आकृतिमें—आकृति-संकेतमें कुछ वैचित्र्य नहीं लगता ?' हारितने पूछा।

'जी, कुछ नहीं...बहुत...'

'रुको मत...शर्माओ भी नहीं...दीक्षितोंको शर्म सत्यसे दूर रखती

है। तो तुम्हें, शङ्कर-संकेतमें क्या वैचित्र्य जान पड़ा ?' हारितने गम्भीरता-पूर्वक पूछा।

'शङ्कर शिश्नदेव हैं...कामदेवको भस्म करने वाले...' पर भोज आगे कुछ न कह सका। उसका गला रुँध गया। उसे जान पड़ा कि गुरुजनोंके समक्ष वह अनुचित शब्द मुँहसे निकाल रहा है।

'कामको भस्म करने वाला कामेन्द्रियके रूप में पूजा जाता है! यह परम वैचित्र्य है! क्यों ?'

भोजने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। उत्तरकी कुछ आवश्यकता भी न थी। मौन प्रायः सम्मति सूचक बन जाता है।

'वत्स! सत्योंमें सबसे बढ़कर सत्य यही है। जातिलक्षणमें पूज्यभाव के स्थान पर वीभत्स, क्षुद्रता लाने वाला महापाप करता है। शङ्करके द्वारा होने वाला संहार सृजनार्थ है! इसे मानव भूल न जाय, इसीलिए यह शङ्कर-पूजा है।' हारित मुनिने नवीन साधकको बताया।

भोजका विचारपट इस नव-ज्ञानसे विशाल बना। मौन ही उसका उत्तर था।

'शङ्करका पूजन कर हम सुखका आवाहन करते हैं। जो सुख सार्वभौम नहीं है वह हमारे लिए भी नहीं हो सकता। किसी याचकके लिए शङ्करके समान दाता दूसरा कोई देव नहीं है। और रूठ जायँ तो तृतीय नेत्र खोलकर भस्म भी कर डालें! फिर भी भस्म करनेके पश्चात् नव-निर्माण अवश्य करेंगे। भस्मके एक क्षणमें विनाश और दूसरेमें नवसृजन, इसीका नाम शिवभक्ति है।' हारितने स्पष्ट किया।

'मैं भी यही चाहता हूँ।'

'परंतु केवल खाखी बननेसे ही भक्ति मिल जायगी, यह मत समझ बैठो। शंकर स्वयं संसारी थे...और तुम्हारे भोगमें सांसारिक भोग उचित है या नहीं इसका निर्णय हम एक वर्ष बाद करेंगे।'

'तब तक मुझे क्या करना होगा ?'

'भारतवर्षके यात्राधामोंकी एक बार परिक्रमा करना।'

'यात्राधामोंमें क्या देखना है? मेरी तो योगसाधन करनेकी इच्छा है।'

'आँखें खुली रख कर देखो। ईश्वर-दर्शन आँख मींच लेनेसे ही हो जाता है यह धारणा गलत है। शांभवी मुद्रा ही शंभु-मुद्रा है।...खुली आँख और आत्मस्वरूपका दर्शन...'

'पीछे!'

'जो तुम्हें उचित समझ पड़े करना।'

'कबसे देशाटन प्रारंभ करूँ?'

'अभी, माँसे मिल लो। जहाँ कहीं भी जाओगे; तुम्हें मार्ग-दर्शक खाखी मिल जायँगे।'

'मैं पश्चिम किनारे हूँ। कायावरोहण (आजका कारवण ग्राम! लकुलेश संप्रदायका यह एक समय मुख्य धाम था।) होते हुए सोमनाथजी, सोमनाथसे द्वारका, वहाँसे नारायण सरोवर और वहाँ स्नानकर भारतवर्षके छोर पर हिंगलाज माताका दर्शन करनेके लिए आना, मैं वहीं मिलूँगा।' भोरिंगनाथने कहा।

'वहाँ तो मुस्लिमोंका राज्य है?' भोजने पूछा।

'हाँ, इसीलिए तो प्रत्येक साधुको हिंगलाज माताका दर्शन करना चाहिये। इसके बिना खाखीपन सफल हो ही नहीं सकता।' भोरिंगनाथने कहा।

भोज हारित मुनिकी आज्ञापालनके लिए तत्पर हो गया।

प्रभातमें माताके पास जानेके लिए वह तैयार हुआ। चेहरा अत्यन्त गम्भीर और विचारमग्न!

देव और बालीने पूछा भी, 'बापा तुम इतने गम्भीर क्यों हो गये?'

'एक वर्षका तीर्थाटन जो करना है।'

'हम भी आपके साथ चलेंगे।'

'मेरे साथ कहाँ मारे-मारे फिरोगे ? और ऐसा करनेका कोई कारण भी तो हो!'

'आपको अकेले तीर्थाटन पर जाने देनेकी इच्छा नहीं है।'

'क्यों ? मेरे खो जानेका डर लग रहा है क्या ?'

'चाहे जो समझिये। पर इतना तय है कि नागह्रद या पराशर क्षेत्रसे पैर बाहर रखते ही हमें आप अवश्य ही अपने साथ पायेंगे।'

'मैं इसे अस्वीकार करूँ तो ?'

'तो आपसे दस कदम आगे या पीछे रहेंगे।'

'किन्तु यदि मैं बिलकुल ही अपने साथ चलनेसे मना करूँ तो ?'

'आप किसी ग्राम या देशके राजा बन जायँ तब आपकी आज्ञा चल सकती है। उस समय तक हम आपके आदेशोंको माननेके लिए बाध्य नहीं।'

'बाली, देव! मैं तो साधु बननेकी तैयारी में हूँ।'

'कल्पना जगतमें जो बनना हो बन जाइयेगा! पर रही बात साधु बननेकी तैयारी सो तो हम भी देखेंगे न!'

'यहाँ क्या आपको अपने कामकी चिंता नहीं है ?'

'हम भीलोंके लिए काम ही क्या रक्खा है ? पहाड़ोंमें भटकना; जहाँ कहीं झोपड़ी बन जाय वहीं पड़े रहना। रोज कुँआ खोदना और पानी पीना। दो-चार मवेशी हों तो उनकी देखभाल भी कर लेना! आप जैसे ब्राह्मणोंकी पढ़ाई-लिखाई अथवा बनियों जैसा धनका जंजाल थोड़े ही पालना है!'

'आप लोग पढ़ते क्यों नहीं ?'

'कोई पढ़ाये तब तो ?' बालीके स्वरमें निराशा थी।

'आप साथ रहेंगे तो आपसे पढ़ भी लेंगे।' देवने साथ रहनेके लिए एक युक्ति निकाली।

'कुछ नहीं तो पढ़नेके लिए ही हम आपके साथ चलेंगे।'

इस प्रकार दोनों मित्रोंने भोजके साथ जानेका निश्चय कर लिया। जंगलोंमें अदृश्य होने वाले अनेक खाखीओंको नमस्कार करता हुआ भोज मित्रोंके साथ नागद्रहमें आ पहुँचा। खाखीओंका भाव उसके प्रति अब बिलकुल ही बदल गया था। उनकी दृष्टि अब स्नेहपूर्ण दीख पड़ती। रास्तेमें मिलनेपर उत्तर देनेका कष्ट न करने वाले खाखी अब उसके साथ देर तक बातें करते। यह आश्चर्य अनुभव करता भोज घर पहुँच कर माताका पैर छू कर बोला, 'माँ! मैं साधु होनेका विचार कर रहा हूँ।'

श्रीलेखाने उसे बगलमें बैठा लिया। भोज अब गोदमें बैठाकर खिलाने लायक बालक तो न था फिर भी माँके हाथों और गोदमें वह फूल जैसा हलका बन जाता। माताने उसके सिर, हाथ और पीठ पर हाथ फेरा। भोज कोई वस्तु भूल तो नहीं आया, इस प्रकार उसे आपाद-मस्तक निहार कर श्रीलेखाने पूछाः 'क्या कहा?'

'सुना नहीं माँ?'

'नहीं, तीन-चार दिनसे तुझे देखा नहीं था सो मेरा ध्यान देखनेमें ही था।'

'मैं साधु होनेका विचार कर रहा हूँ।' भोजने अपना वाक्य पुनः दुहराया।

'तुझे कौन साधु बनाता है? सुनूँ तो सही कि कौन है वह!'

'मुनि! हारित मुनि! पराशर! पिताजी!'

'अभी देर है तुझे साधु-पद धारण करने में!'

'दो-एक वर्ष, अधिक नहीं।'

'तू और तेरे मुनि कोई न कोई नया बखेड़ा उपस्थित कर ही देते हैं! मैं तुझे साधु नहीं बनने दूँगी।

'हमारा धर्म, वेद, यज्ञ, याग, संस्कार सभी प्रायः नष्ट-से हो गए हैं। मुझे इन्हें पुनरुज्जीवित करना एवं ज्वलंत बनाना है। शिवकी कृपा होगी तो मैं साधु बन...'

'स्वयं संन्यासी बने। कुछ साधुओंको एकत्र किया। अब तेरे बिना उनका कार्य नहीं चल सकता, क्यों ? यह असम्भव है, मेरे जीवित रहते तो कभी भी नहीं !'

'मा ! इस प्रकार तू आवेशपूर्ण निश्चय न कर। मुझे मुनिसे अधिक तुम्हारा भय लगता है। मुनिकी बात मैं टाल सकता हूँ किंतु तुम्हारी नहीं। मा ! मैं साधु बनने पर भी तुम्हारे बिना जीवित रह न सकूँगा।' कहकर भोज एक छोटे बालकके समान श्रीलेखाके गलेसे लिपट गया।

धीरे-धीरे उसने हारित मुनिके यहाँ घटी हुई सभी बातें बता दीं। एक वर्ष पर्यटनकी आज्ञा भी कह सुनाई। साथ ही यह भी बता दिया कि उसके दोनों भील-मित्र भी उसके साथ जायँगे।

'तू चाहे जो कह, तुझे अकेला नहीं जाने दूँगी। मैं भी साथ चलूँगी।'

'अभी इतना और दुःख देना बाकी है। मा ! एक वर्षके लिए विश्वास रखो ! जिस दिन मैं यहाँसे रवाना हूँगा, एक वर्ष बाद ठीक उसी दिन यहाँ पहुँच कर तुम्हारा चरण स्पर्श करूँगा।'

पुत्रका मन सदैव रखने वाली माताने देखा कि युवावस्थामें प्रवेश करने वाले कुमारका तन और मन पर्यटन चाह रहा है। पर्यटन भी पराक्रम और साहसका एक प्रकार है। यह समझ कर भी पुत्रमें ही अपना सुख देखने वाली श्रीलेखाको यह पुत्र वियोग तनिक भी अच्छा नहीं लगा। उसे भीतरसे रुलाई आ रही थी।

'तुम मना करोगी तो मैं न जाऊँगा मा ! किन्तु इस प्रकार उदास न हो !' भोजने श्रीलेखाको सान्त्वना दी।

अपने मानसिक क्लेशको दूर कर माताने शुभ दिन देख-दिखा कर हँसते-हँसते पुत्रको पर्यटनके लिए भेज देनेका निश्चय किया। मातासे दूर जाने वाले पुत्रके पैरमें भी जैसे ब्रह्माण्डका भार आ गया था। पुत्रको

उत्तेजन देनेवाली वाणी से श्रीलेखाने हँसते हुए पुत्रके सिरपर हाथ फेरकर गायका शकुन होते ही विदा कर दिया ।

परन्तु भोजके आँखोंसे ओझल होते ही नियंत्रणका बांध टूट गया । हृदय रो उठा । पूरे दिन-रात श्रीलेखाकी आँखें आँसू बहाती रहीं । पुत्र-वियोगिनी माताके कष्टकी सीमा न थी ।

६

पर्यटनके अंतमें तक्षशिला महाविद्यालयमें भोजकुमार द्वारा दिये गये व्याख्यानसे प्रसन्न हो वहाँके विद्यार्थी एवं विद्यालयके शिक्षक मंडल ने उससे कुछ दिन और ठहरनेका आग्रह किया । किन्तु वह आग्रह उसे वहां न रोक सका । उसे वहांका शांत वातावरण और विद्यालय की उदारता पूर्ण शिक्षा-पद्धति सभी पसंद आये । अधिकांशतः वहां बौद्धमार्गके ही सिद्धांतकी शिक्षा दी जाती थी । परन्तु भोज जैसे वैदिक मतवादी का व्याख्यान सुननेके लिए भी शिष्यवर्ग अत्यधिक संख्यामें वहां उपस्थित रहता था । इतना ही नहीं, यूनानी, चीनी तथा अरबी विद्यार्थी भी वहां शिक्षा लेते और वे भी उसका भाषण सुननेके लिए प्रचुर संख्यामें आते । यह देख उसके हृदयने एक विशाल आलोड़नका अनुभव किया । उसकी प्रबल इच्छा हुई नागद्रह पहुँच कर वहां एक महाविद्यालयकी स्थापना की जाय और विश्वके विद्वानोंको वहां बुलाकर उनके साथ चर्चा की जाय ।

परन्तु मानव-जाति केवल चर्चाओंसे ही आगे नहीं बढ़ सकती । भोजके पर्यटन केवल चर्चासे ही बोझिल न थे । इस पर्यटनमें प्रकृतिने उसे नये-नये पहाड़-पर्वत नदियाँ, प्रदेश आदि देखनेका अवसर दिया । प्रकृति दीवालकी रचनाके साथ-साथ नये मार्ग भी ढूँढ़ निकालती है ।

तैरना न जानने वालेको समुद्र डुबा देता है किन्तु जो तैरना जानता है उसके लिए समुद्र विश्व-सेतु बन जाता है। अनजान व्यक्तिको रेगिस्तान की रेत प्यास से तड़पा-तड़पाकर मृत्यु-मुखमें झोंक देती है किंतु वही रेगिस्तानका मार्ग जानने वाला उसे पार कर उज्ज्वल यश प्राप्त करता है। नागद्रहके शील एवं हिंगलाजके शीलमें पर्याप्त अंतर था। रजाई ओढ़नेसे एक शीत दूर हो सकती थी किंतु दूसरी शीत शरीर पर राख मले बिना अथवा गलेमें छोटी-सी अँगीठी लटकाये बिना शांत न होती। भयानक वनोंमें सर्प, बिच्छू, बिसखोपड़े आदि विचरण करते रहते थे। साथ ही वहां ऐसे-ऐसे खाखी लोगोंसे भी भेंट हो जाती थी जो ऐसी कोई वनस्पति दे देते थे जिसके खानेसे भूख-प्यास पर अंकुश बना रहता और उन औषधियोंके लेपनसे विषैले जानवरोंका विष उतर जाता।

प्रकृतिसे बढ़कर प्रकृति द्वारा रचित मानव अधिक दर्शनीय होता है। कोई काला, कोई गोरा, कोई लंबा, कोई नाटा! फिर भी सभी पर अमुक प्रदेशकी छाप बनी ही रहती। मेदपाटका वासी और आनर्तका रहने वाला पहचाना जा सकता है। लाट और सौराष्ट्रके मनुष्योंके चेहरोंमें भिन्नता होती है। सिंधु तटके निवासी एवं समुद्रके किनारे बसने वाले मछुवाहोंके रूपरंगमें भिन्नता स्पष्ट दीख पड़ती है।

और स्त्रियाँ? सौन्दर्यमें अद्वितीय! तथापि कैसी विविधता? भोजको होता कि उसका ध्यान अब विशेषकर स्त्रियोंकी ओर इस पर्यटनमें क्यों जाने लगा है! यह तो कहा नहीं जा सकता कि इसके पूर्व उसने स्त्रियाँ देखी न थीं। परन्तु स्त्रियोंमें आँखोंको आकृष्ट करनेकी कोई स्वयं-भू शक्ति है इसका ज्ञान उसे सर्व प्रथम इस पर्यटनमें ही हुआ।

साथ ही साथ उसने कामको भी पहचाना। स्त्रीके प्रति आकर्षणकी ऊर्मि ही काम है। भोज जैसे शिव-लिंगके स्थापकको यह काम-दहन आवश्यक जान पड़ा! इसी उद्देश्यको सामने रख कर तो शिव स्थापना का महत्व हारित मुनिने उसे नहीं समझाया था क्या! ऊर्मि अनुभवशील

तो है ही ! साथ ही उसका अध्ययन भी आवश्यक हो जाता है ! इसे बहने नहीं दिया जा सकता ! इसके साथ बहा भी नहीं जा सकता...! भोजको इस भावको सामने रखकर बहुधा सचेत रहना पड़ता ।

आश्चर्य सहित उसने यह भी अनुभव किया कि स्त्रियोंको देखकर उत्पन्न होने वाले कोमल भावके प्रति कठोरतम भाव उत्पन्न करने वाले मनुष्य भी इस विश्वमें विद्यमान हो सकते हैं। निष्कांचन भोजके पास ऐसी कोई वस्तु न थी जिसे लूटनेके लिए कोई प्रेरित हो सके। तथापि कार्यावरोहणमें लकुलेशका दर्शन करनेके पश्चात् कावी बन्दरसे सौराष्ट्र होते हुए वल्लभी जाते समय उसकी नौका लूटनेका प्रयत्न किया गया। नौकामें उसके साथ दो जैन श्रेष्ठी बैठे हुए थे। अंगों पर मुक्ताभूषण थे। सामनेसे समुद्री लुटेरोंकी एक बड़ी नौका तेजीसे आ पहुँची। दूरसे ही उन्होंने हथियार उठाकर धमकी दो। नौकाके यात्रियोंमें पहले तो स्तब्धता छा गई, पश्चात् स्त्री-बालक सभी डर से चीत्कार कर उठे।

'बापा ! हमारे रहते यह नाव लूटी जाय ?' देवने कहा।

'हमारे पास अस्त्र-शस्त्र कुछ भी तो नहीं है।' भोजने कहा।

'हम अस्त्र-शस्त्र तैयार करें ?' बाली बोला।

'किस प्रकार ?' भोजने पूछा।

'इस नावका रस्सा है न ?...' देव बोला।

'हाँ हाँ ! ठीक, याद आ गया। आपने ही हमें फंदा बना कर फेंकना सिखाया था। हो जाँय तैयार...!' कहते हुए भोजने एक रस्सी उठा ली, बालीने दूसरी और देवने तीसरी।

'नावकी ओर आँख उठायी तो समझ रखना ! बेड़े में से जीवित नहीं लौट पाओगे !' देवने गरज कर लुटेरोंको सचेत किया।

नावके सवार और भी घबड़ा उठे। सीधे-सादे, साधुताकी ओर अग्रसर होने वाले ये तीनों शांत युवक लुटेरों को फटकार कर कहीं अधिक विपत्ति तो नहीं बुला लेंगे ?

'हमारे ही समुद्रमें तुम्हारा यह रंग ?' लुटेरोंके सरदारने उत्तर दिया और बेड़ाको नजदीक लाकर नौकाको पकड़नेके लिए ज्योंही डोर उठाया त्योंही उसने तथा उसके अन्य साथी लुटेरों ने विस्मित होकर देखा कि उनके हाथके साथ उनके शरीर इस प्रकार जकड़ लिये गये हैं कि वे हिलडुल भी नहीं सकते ।

'दुष्टों ! सिर पर मौत मँडरा रही है क्या ?' क्रोधसे लुटेरोंके सरदारने चिल्लाकर कहा ।

'किसके सिर पर इसका तो पहले निर्णय कर ले... ।' रस्सेको झकझोरते हुए बाली बोला । दृढ़ बन्धनमें बँधे हुए दो-तीन लुटेरे रस्सीसे छूटनेका प्रयत्न करने लगे; जिसे देख खिलखिलाकर हँसते हुए देवने कहा:—'बोल, दूँ गोता ?'

'हम तो समुद्र पार करने वाले हैं, हमारे लिए इस खाड़ीकी क्या बिसात ?' एकने कहा ।

'देखूँ कैसे तैरता है ?' कहते हुए देवने रस्सीके शिकंजेमें जकड़े हुए दो-तीन लुटेरोंको खींचकर पानीमें डाल दिया ।

हाथ बँधे होनेसे समुद्रमें गिरे हुए लुटेरोंने बड़ी कठिनाईका अनुभव किया । केवल पैरसे अधिक समय तक तैरना असंभव-सा था । और फिर विरोधीके हाथमें रस्सी थी, वह भला उसे पैरों द्वारा तैरनेकी सुविधा कब देने वाला था !

'दुष्टों ! तुम नये नायक मालूम देते हो ! कौन हो तुम ?...हमें जाने दो...नहीं तो...' सरदारने कुछ धमकीके साथ विनती की ।

'धमकी छोड़ दो नायक !' बाली ने कहा ।

'साथ दो तो तुम्हारा भी हिस्सा रहेगा ।' सरदारने साम-दामसे काम निकालना चाहा ।

'हिस्सा ? तुम दोगे ? पहले लूटो तो सही ! हिस्सेकी बात तो पीछे होगी ।' देवने हँसते-हँसते कहा ।

'अरे, वे डूब रहे हैं छोड़ !' डुबकी खाते हुए साथियोंको देख सरदार लुटेरेने कहा ।

'एक शर्त पर छोड़ सकता हूं, अब यह धन्धा छोड़ देनेकी प्रतिज्ञा करो, समुद्र-देव साक्षी !' भोजने कहा ।

'दूसरा धन्धा मिले तब न इसे छोड़ें !' सरदारने उत्तर दिया ।

'ये श्रेष्ठी तुम्हें कोई काम देंगे, है स्वीकार ?' कहते हुए भोजने श्रेष्ठियोंकी ओर देखा ।

श्रेष्ठियोंके मुखपर अस्वीकृति झलक रही थी । तीन छोकड़ोंने नौका को लूटे जानेसे बचा लिया । यह उन्हें बहुत ही अच्छा लगा; किंतु रक्षककी इच्छानुसार किसीको काम देना उन्हें नहीं रुचा ।

'ऐसे चोर-लुटेरोंको कैसे काम दिया जा सकता है ?' एक श्रेष्ठी ने अपना असंतोष स्पष्ट किया ।

'सच्चे लुटेरे तो ये हैं, दोस्त ! हमें ठग कर हमारा मोती भी ये ले जाते हैं । हम तो गोताखोर हैं, अपनी आवश्यकता पूरी होते ही हमें दूधकी मक्खी की तरह निकाल कर फेंक देते हैं । हमें इन्हें लूटनेसे रोकोगे तो हमारे बाल-बच्चोंकी आह पड़ेगी !' लुटेरे सरदारने कहा ।

अन्त में श्रेष्ठियोंसे प्रत्येक लुटेरेको एक-एक बहुमूल्य मोती दिलाकर बिदा किया गया । इस प्रकार श्रेष्ठी एवं लुटेरोंका असन्तोष मोल लेनेका अनुभव उन्होंने प्राप्त किया । श्रेष्ठी अच्छे थे या लुटेरे, इसका निर्णय वे अभी तक कर न सके थे । लुटे जानेसे बचानेके लिए उनका आभार श्रेष्ठियों ने नहीं माना । इसके बाद तट पर उतरते ही राज कर्मचारियोंको उन्होंने सूचना दे दी कि भोज, देव एवं बाली इन तीनों व्यक्तियों पर कड़ी निगरानी रहनी चाहिये । ये भावी लुटेरे भी हो सकते हैं !

सोमनाथका दर्शन कर जहाजमें द्वारका जाते समय काले सीदी एवं गोरे अरबोंके एक जहाजने आक्रमण कर, सबको कैद कर, गुलाम बना कर

बेच देनेकी योजना गढ़ी। इसमें एक महत्त्वपूर्ण शर्त यह थी कि मुस्लिम धर्म स्वीकार करने वाला छोड़ दिया जायगा। इतना ही नहीं उसके साथ इस्लामी रीतिरिवाजसे चार कन्याओंका विवाह भी कर दिया जायगा ये कन्यायें जहाज पर ही थीं।

परंतु इस्लाम धर्म स्वीकार न करनेवालेको विदेशमें गुलाम बनाकर बेच दिया जायगा। विदेशमें काफिर कब तक अपने धर्माचारकी रक्षा कर सकेंगे? गुलाम रूपमें बेचे जाकर, प्रतिक्षण धर्माचारको भ्रष्ट कर अंतमें विवश हो मुसलमान बननेकी अपेक्षा यह शर्त तत्काल स्वीकार कर चार कन्यायोंके साथ विवाह कर लेना क्या बुरा था? पकड़े गए अनेक आर्य धर्मावलंबी मुस्लिम बननेका सरल मार्ग स्वीकार करनेके लिए तैयार हो गए।

मात्र भोज एवं उसके दोनों मित्र अडिग रहे। उन्होंने किसी प्रकार भी मुस्लिम बननेसे इनकार कर दिया। साथियोंने बहुत समझाया; 'अभी तो कच्ची उम्र है, सारी जिन्दगी मार खाते हुए व्यतीत करनी होगी।'

'धर्मप-रिवर्तनमें लाभ है! चार युवतियाँ मिलती हैं। इस सुखके अलावा मानपूर्वक दुनियामें हम घूम-फिर सकेंगे।'

'पीछे भाग कर अपने धर्ममें मिल जानेसे हमें कौन रोकता है? एक दूसरेसे बात न करें; बस।'

'तुम जवानोंको तो ऊपरसे धन भी मिल रहा है। हठ छोड़ दो, जीना कम है, इसमें हिंदू कौन और मुसलमान कौन?'

'हो जाओ तैयार!'

इस प्रकारकी दलीलोंका भोजके पास एक ही उत्तर था। 'मौत भले ही आये, वह स्वीकार। किंतु विवश हो धर्म-परिवर्तन तो कभी भी स्वीकार नहीं कर सकता।'

उसके दोनों मित्र भी इसी ढंगकी बातें करते। कभी कहते, 'भोज यदि स्वीकार कर लें तो हमें कोई आपत्ति नहीं।'

परंतु शास्त्रज्ञ भोजकुमारका जन्म बलके अधीन हो आत्म-समर्पणके लिए नहीं हुआ था। अत्याचार प्रारंभ होनेके समय ही समाचार मिला कि सोमनाथ एवं हिंगलाजसे आने वाले दो रंगी जहाजोंने इस जहाजको घेर लिया है।

प्रभास एवं हिंगलाज मंदिरोंके पास रक्षक-नौका सैन्य था। तटपर तथा समुद्रमें यह सैन्य जहाजोंमें चक्कर लगाया करता। ठग, लुटेरे, गुलाम बनानेके लिए पकड़ने वाले अथवा नियम विरुद्ध धंधा करने वाले समुद्री डाकुओंकी अच्छी खबर लेता। सैनिकोंने पहुँच मुसलमान बननेके लिए प्रस्तुत हिंदुओंको बचा लिया। उन्हें द्वारका, नारायण सरोवर तथा हिंगलाजकी यात्रा सही सलामत पूरी करा दी।

इस अनुभवने भोजको चौंका दिया। समुद्र द्वारपाल बननेके बजाय कारागारकी दीवाल तो नहीं खड़ा कर रहा था?

देव-बालीकी यह प्रबल इच्छा थी कि पकड़े गये मुसलमानोंको हिन्दू बना दिया जाय तो ज्यादा अच्छा हो। देवल नगरमें पहुँच कर कितनी ही ब्रह्मपुरियोंमें भोजने चर्चा भी की। कुछ ही वर्ष पूर्व सिंधु प्रदेशपर मुस्लिम सैन्यने घोर आक्रमण किया था। वीरतापूर्वक लड़ते हुए महाराज दाहिरने मुसलमानोंके हाथ वीरगति प्राप्त की। उनकी पुत्रियाँ खलीफाके पास भेंट स्वरूप भेज दी गईं। मृत्युकी अपेक्षा मुसलमान बनना अच्छा माननेवाले कई ब्राह्मण, वैश्य एवं क्षत्रिय पुनः आर्यत्व धारण करना चाहते थे। मुसलमान सत्ताधीशोंने राज्य स्थिर होते ही अनेक द्विजोंको राजकार्यमें रख लिया था।

परंतु देवल नगरसे चले गये और पुनः वापस लौटे हुए मुसलमान बने हुए ब्राह्मणोंको आर्य बनाना वहाँके ब्राह्मणोंको अच्छा नहीं लगा। भोजकी विद्वत्ताने ब्रह्मपुरीमें अच्छा प्रभाव डाला यह सच है, परंतु शुद्धिकी चर्चा चलाते ही वह ब्राह्मणोंका बिलकुल ही शत्रु बन गया।

'आप ब्राह्मण होते हुए यह कह रहे हैं ?' एक आर्यत्वसे उन्मत्त ब्राह्मणने क्रोधसे पूछा ।

'इसमें आपत्ति ही क्या है ?' स्वेच्छासे तो इन ब्राह्मणोंने इस्लाम धर्म स्वीकार किया नहीं था । अतः प्रायश्चित करा कर पुनः ब्रह्मपुरीमें बसा लिया जाय ।' भोजने युक्तिसे काम लेना चाहा ।

'तुम्हें यज्ञ, याग, वेद और देवको जीवित रखना है या नष्ट कर डालना है ।'

'इनका विनाश होगा आपकी नीतिके कारण !' भोजने तर्क उपस्थित किया ।

'एक बार जिन्होंने मर्यादा तोड़ दी उन्हें वापस कैसे लिया जा सकता है ?'

'तो अभी और भी ब्राह्मण पर-धर्म स्वीकार करेंगे...'

'हमारे क्षत्रिय निर्जीव बन गये तो जो हो जाय सो थोड़ा । फिलहाल तो इस्लामकी बढ़ती रुक गई है । अपने आर्यत्वकी दीवाल दृढ़ बनानेका अवसर नहीं खोना चाहिए ।'

'दीवाल मजबूत नहीं, सँकरी बनती जा रही है पंडित जी !'

'विश्वमें एक सच्चा शुद्ध ब्राह्मण रहेगा तब तक धर्मके लिए कुछ भी चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है; परंतु इस प्रकार भ्रष्ट हुए, पतित, परधर्मावलंबी, परधर्म स्वीकार किये हुए आर्योंको पुनः ब्रह्मपुरीमें लौटा कर बसानेका अधर्म हम नहीं करेंगे ।'

देवल नगरमें एक भारी उत्पात खड़ा हो गया । भूदेवोंने मतमतांतरमें एक दूसरेका सिर फोड़ डाला । आर्यत्व धारण करनेके लिए इच्छुक मुसलमान भारतीयोंने अपमानपूर्ण शुद्धि स्वीकार करनेकी अपेक्षा मुसल-मान बने रहना अधिक पसंद किया । इन मुसलमानोंने अब इस्लामको आग्रह पकड़ा । स्वयं आर्य धर्म-ज्ञाता होनेसे आर्यधर्मकी निर्बलताओं पर उन्मत्ततापूर्ण प्रहार करना भी प्रारंभ कर दिया ।

'दाहिरने अनेक देवी-देवताओंको मनाया। मूर्तियोंने उसकी कौनसी सहायता की?' मुस्लिम तर्क बड़ा ही जबरदस्त था।

'और अल्ला हो अकबर कहने वाले मुसलमानोंकी विजय जहाँ देखिये पूर्व-पश्चिम सब जगह हो रही है।'

'हम मुसलमानोंने कितने ही देवालयोंको तोड़ा और अभी तोड़ेंगे! देखें क्या करते हैं तुम्हारे देवी-देवता? सच्चे हों तो आकर हमें रोकें!' इस प्रकार आर्यत्वको अति विशुद्ध रखनेके प्रयत्नमें आर्यत्वके चारो ओर, आर्यत्वको संकीर्ण बनाती हुई दीवालें स्पष्ट खड़ी होने लग गईं और इस दीवालपर प्रहार करनेमें नये परधर्मावलंबी भारतीय मुसलमानोंको आनन्द भी आने लगा। ब्रह्मपुरीमें मांसके टुकड़े, मछलीके छिलके एवं हड्डियाँ आदि आ-आकर गिरने लगे। ब्रह्मपुरी वहाँसे खिसकने लगी क्योंकि वेद-मंत्रों द्वारा वातावरणको एवं गंगा-जल द्वारा ब्रह्मपुरीको विशुद्ध बनानेके प्रयत्नमें ब्राह्मणोंको प्रतिदिन बहुत समय खर्च कर देना पड़ता था। ब्राह्मणोंको चिढ़ानेके लिए नये बने मुसलमान प्रतिदिन नई-नई युक्तियाँ निकालते थे।

तदुपरि हिंदू और मुस्लिम भूत भी लोगोंको रातमें हैरान करने लगे। दोनों धर्मोंके भूतोंके बीच हाथापाई भी होने लगी। हिंदू भूत उसमें भी हारने लगे। जिन्नकी यहाँ भी विजय होने लगी! अतः झगड़ा मिटानेके लिए ब्राह्मणोंने ब्रह्मपुरी खाली कर दी। तत्पश्चात् उन्हें गाँव भी छोड़ देना पड़ा। जिन्हें ग्राम छोड़ना भारी जान पड़ा उन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर स्वस्थता लाभ की। धर्म और पवित्रता द्वारा या तो पैर आगे बढ़ाना है या पीछे। यह व्यापक बन सूर्य-प्रकाशके समान दौड़ता हुआ या तो आगे बढ़ता है या प्रकाशसे बचनेके लिए घर, झोपड़ी बनाकर कंदरामें प्रवेश कर अथवा गड्ढा खोद उसमें घुसकर अपनी रक्षाका भ्रम सेवित करता है। इस्लामने स्वच्छंदता पसन्द की थी जबकि हिंदू धर्मने

संकुचित हो अपने चारो ओर दीवाल, कंदरा एवं गड्ढा खोदना प्रारंभ कर दिया था ।

दोनों धर्मोंने जादूकी भी सहायता लेना प्रारम्भ किया । हिंदू पुजारी माताका नाम ले कुंकुम और नाड़ा मुखसे निकालते तो मुसलमान फकीर अपने मुँहसे बबूलके काँटे निकालते और अपने धर्मकी श्रेष्ठता सिद्ध करते । माताके समक्ष शरीर धुन कर हिंदू ओझा भविष्य कथन करता और पीर चढ़ाकर मुसलमान फकीर हिंन्दूसे भी अधिक शरीर धुनता हुआ, भयंकर भावीकी पूर्व-सूचना देता । हिंदू साधू कीलोंपर शयन करता, मुसलमान औलिया कीलोंको शरीरमें घुसा लेता । हिंदू अङ्गारेपर चलता तो मुसलमान हाथसे अंगारोंकी वर्षा करता । मुसलमानों में नवीनताकी जगमगाहट थी । अतः हिंदूको अपने रक्षणकी पीड़ा बराबर सताया करती थी ।

भोजको एक और विचित्र अनुभव हुआ । मकरानमें बौद्ध श्रमणोंसे उसका अच्छा परिचय हुआ । श्रमणोंके बिहारके सामने ही मस्जिद भी खड़ी होती जा रही थीं । बौद्ध संघसे बसे हुए एक नगरके फाटकके बाहर मानवसमूह उमड़ रहा था । एक कब्रके पास झोपड़ीमें सफेद दाढ़ी वाला एक वृद्ध फकीर वर्षोंसे रहता था । उसने भविष्य वाणीकी थी कि असुक दिन पूरा गाँव इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेगा ! वह तिथि आ पहुँची ! इसके पूर्व रात्रि तक इस्लाम विजयका कोई चिन्ह दीख नहीं पड़ा । लोग हँसने लगे; यद्यपि इस्लामने मकरान, सिंध एवं पड़ोसके ईरानमें ऐसी भव्य विजय प्राप्तकी थी कि फकीरकी बातको हँसकर उड़ा देनेमें भी लोगोंको भय लग रहा था । लोग थोड़ा साहस कर पूछने भी लगे कि संपूर्ण नगर अगले दिन किस चमत्कारसे मुसलमान बन जायगा ?

'अभी कलका पूरा दिन बाकी है । बीचमें आजकी रात है । सूर्य निकलने दीजिए ।' फकीर पूर्ण दृढ़ता तथा श्रद्धासे जवाब देता, और एक

विजयी सेनापतिकी अदासे दाढ़ी पर हाथ फेरता। यह दृश्य देख बौद्ध नागरिक चकित हो रहे थे।

सूर्योदयके साथ ही एक मुसलमान पहलवान आ पहुँचा। उसने नगर निवासियोंके समक्ष यह शर्त रखी कि या तो नगर निवासियोंमें से कोई उसके साथ द्वंद्व युद्ध कर उसे पछाड़ दे, या उसके विजयी होने पर नगरके सब लोग मुसलमान बन जाँय। साथ ही उसने यह भी कहा कि यदि वह हार गया तो मकरानके सभी मुसलमानोंको जनेऊ पहनवा देगा।

नगरको भी व्यक्तिगत अभिमान तो होता ही है। इस्लामने दाहिरको पराजित कर कितने ही नगरोंका अभिमान चूर-चूर कर डाला था; परन्तु उस घटनाको व्यतीत हुए अधिक समय हो गया था: यद्यपि कासिम के सिंधु-आक्रमणको देखने वाले अनेक वृद्ध अभी भी जीवित थे। श्रमणमार्गी नगर होनेसे पंचोंने लोकमत जानकर पहलवानको उत्तर दिया। 'हमारा नगर तो अहिंसक है। युद्ध, लड़ाई-झगड़ा, मारपीट, बध आदिमें हम विश्वास नहीं रखते।'

'आप भले ही न मानते हों, हम तो मानते हैं। युद्ध नहीं करना है तो हमारा धर्म स्वीकार करो।'

आर्योंका एक विभाग युद्ध-सम्बन्धमें बिलकुल ही निर्माल्य बन गया था। किसी आर्य ज्योतिषीने भी भविष्य-भाषण किया था कि इस नगरको मुसलमान धर्म स्वीकार करना ही पड़ेगा! भविष्य ही यदि यह मार्ग प्रदर्शित करता हो तो हाथका खिलौना जैसा मानव कर ही क्या सकता है?

'यदि हम न युद्ध करें और न तुम्हारा धर्म ही स्वीकार करें तब?' पंचोंने पूछा।

यह सुनते ही पहलवान और फकीर दोनोंकी आँखें लाल, आगबबूला हो गईं। वे क्रोधसे काँपने लगे। गरज कर बोले; 'याद रखो! जजिया देकर तुम्हें काफिर बने रहना है? यह असंभव है! तुम्हारे जैसे डरपोकोंके

दिलसे डर निकाल देनेके लिए तुम्हें मुसलमान बनाना ही पड़ेग ! इसके लिए पहाड़के एक-एक टीलेस पाक मुसलमान कल सबरे हो तुम्हारे नगर पर उतर आवेंगे। समझ रखो !'

पासही के टेकरीके पीछेसे 'अल्लाहो अकबर !' की एक गर्जना सुनाई पड़ी और भय प्राप्त जनता—

'बुद्धं शरणं गच्छामि
धम्मं शरणं गच्छामि
संघं शरणं गच्छामि'

मुख और हृदयसे उच्चारण करने लगी। निर्माल्य बौद्धोंके लिए बुद्धका धर्मचक्र और निर्माल्य वैदिकोंके लिए कृष्णका सुदर्शन चक्र निरर्थक बन गया था। अंतिम बार आर्यमंत्र उच्चारण कर इस्लाम स्वीकार करनेकी तैयारी करने वाली जनतामें से किसीने पूछा; युद्धके लिए इस नगरका ही व्यक्ति होना चाहिए अथवा नगर बाहरका भी हो सकता है ?'

'किसी भी काफिरको लाओ। दुनिया भरमें से ! किंतु आज ही।' वीरत्वके मदमें चकनाचूर मुसलमान योद्धा बोला।

भोज; देव तथा बाली समूहसे बाहर निकल ताल ठोक मुसलमान योद्धाके सामने खड़े हो गये।

'हम तीनोंमें से किसी एक को पसंद कर ले; जिसके साथ तुझे लड़ना हो।' भोजने कहा।

'छोकड़ों ! तीनोंको एक साथ ही मसल डालनेकी ताकत रखता हूँ। होश संभालो। चुपचाप इस्लाम...!'

'पीछे हटना गुरुने हमें सिखाया ही नहीं।' भोजके शब्दोंमें ललकार थी।

'तो तू ही आ जा। कुश्ती आती है ?'

'कुश्ती, मुष्टी, हथियार, लाठी; इनमेंसे पसंद कर ले। मैं सबके लिए तैयार हूँ।'

'खाखी होना चाहता है क्या ? बड़ी बदमाश जाति खड़ी हो गयी है ! इसकी भी खबर लेनी है।'

नगरके बाहर ही रणस्थल तैयार हो गया। ऐसा भयंकर द्वंद्व-युद्ध वर्षोंसे नगर जनोंने नहीं देखा था। भारी भरकम देह वाला अनुभवी पहलवान और एकहरा, दुबले-पतले शरीर वाला चपल किशोर—दोनों भिड़ गये। पहली भिड़न्तमें तो लोगोंने समझा कि भोज क्षण मात्रमें पटका जायगा अथवा पिस जायगा। पहलवानको भी पूर्ण निश्चय था। साथ ही धर्म-विश्वास भी उसमें अतुलित बल प्रेरित कर रहा था। किन्तु थोड़ी देरमें उसकी समझमें आ गया कि उसका विरोधी कोई साधारण योद्धा न था। यदि कुशलतासे न लड़ा तो विजय मिलना कठिन है।

हृदयमें भयका अंकुर जमते ही समूल बल अदृश्य हो जाता है। थोड़ी ही देर बाद मुसलमान योद्धा लड़खड़ाया। इस अवसरका लाभ उठाकर कोमल दिखाई पड़ने वाले भोजने कुश्तीमें जीवदान देने वाले दाँवका आश्रय लिया। दूसरे ही क्षण पहलवानके विशाल देहको चित्त पटक कर सवारी कस दी। जनता आनंदविभोर हो उठी; वृद्ध फकीरने सामने आकर दोनोंको अलग कर दिया।

'इसमें शैतानका हाथ है ! उस शैतानी करतबके कारण ही यह काफिर जीता है...!' पराजित मुसलमान योद्धा इसी प्रकार कुछ बड़-बड़ाकर अपनी झेंप मिटा रहा था।

उसे दूर हटाते हुए फकीर बोला, 'इसमें मेरा ही दोष है। मेरी गणनामें एक वर्षकी भूल है। यह युद्ध आगामी वर्ष होना चाहिए था। कोई बात नहीं; अब सब लोग अपने-अपने घर जाओ।'

हँसते-हँसते अनुत्तरदायित्वपूर्ण ढिठाईसे इस पराजयको खेलमें परिणत करने वाले वृद्ध फकीरकी बात सुन भोज क्रुद्ध हो उठा। उसने गर्जना करते हुए कहा, 'यदि यह पौरुषहीन नगर इस बीच कोई युवक योद्धा तैयार न कर सका तो 'आगामी वर्ष भी मैं यहाँ उपस्थित रहूँगा !'

उसे अधिक आश्चर्य तो उस समय हुआ जब फकीरने उसे रातके समय अपने पास बुलाया।

उस समय पहलवान वहाँ उपस्थित न था। क्रुद्ध हो वहाँसे भाग गया था।

'आ बेटा! यात्राके लिए निकला है?' फकीरने बात चलाई।

'जी हाँ, साँई बाबा!' भोजने कहा।

'कहाँ अभ्यास किया है?'

'हाटक क्षेत्र और पराशर क्षेत्र में।'

'दोनों ही स्थानक विद्याके लिए प्रसिद्ध हैं। तुम्हें देखनेके साथ पहले ही मुझे ये दोनों स्थल स्मरण आ गये थे।

'क्या आपने इन दोनों स्थलोंको देखा है?'

'हाँ, मैं शुक्लतीर्थका ब्राह्मण हूँ—पूर्वाश्रम का।'

'ऐं! तो...यह परिवर्तन...?'

'जो होना था हो गया...प्रभु तो सभी धर्मोंमें हैं...।'

'आपने हमारे शास्त्रोंका अवश्य ही अध्ययन किया होगा?'

'हाँ! इस समय तो अरबी, फारसी और यूनानी शास्त्रोंके साथ संबंध स्थापित कर लिया है।'

'वेदधर्म पर इतना क्रोध क्यों?'

फकीरने संक्षेपमें पूरी घटना सुना दी।

भृगुकच्छसे होकर आनेवाले अरबोंने शुक्लतीर्थपर आक्रमण किया था। उन्हें पराजित करनेमें वह सबसे आगे थे। विजय प्राप्त कर लौटे हुए इस ब्राह्मण-वीरको प्यास लगी। उस समय कुलीन ब्राह्मणोंने उसे पानी पिलानेके बदले प्रायश्चित करनेके लिए कहा।

'प्रायश्चित? किस बातका?' मैंने पूछा।

'यवनोंका तुमने स्पर्श किया है। अतः चांद्रायणादि व्रतों द्वारा

तुम्हें विशुद्ध होना पड़ेगा ।' एक कट्टरपंथी विद्वान कहलाने वाले ब्राह्मण ने कहा ।

'मेरे रुधिर-स्नानने मुझे पवित्र कर दिया है । मुझे जल्दी पानी दीजिये !'

'यदि पानी पीना है तो तुम्हें जीवन भर ब्रह्मपुरीके बाहर रहना होगा ।'

'मैं न होता तो तुम सब लोग, ब्रह्मपुरी तो क्या, आर्यावर्तके बाहर ले जाकर बेच दिये गये होते ।'

'क्या होता क्या न होता, इसे छोड़ो ! जो है उसकी बात करो !'

प्रायश्चितके आग्रही आर्योंने उसे—उनके उद्धारकको—पानी नहीं दिया । उसने शुक्लतीर्थकी भूमि त्याग पलायित अरबोंके साथ मिल इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया । तबसे जीवन भर आर्यावर्तकी सरहद पर घूमते हुए इस्लामका प्रचार किया ।

'तथापि आर्यादर्श अभी भी मुझे स्मरण आता है...कुरान पढ़ते-पढ़ते प्रायः वेदोपनिषदके समश्लोक मुझे याद आ जाते हैं ।'

'अभी भी आप लौट सकते हैं !'

'नहीं, अब मन ऐसी कक्षामें पहुँच गया है जहाँ सब समान मालूम होता है । धर्मपरिवर्तनकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती ।'

'फिर भी आप इस्लामके सहायक हैं !' भोजने कहा ।

'प्राचीन सभी धर्मोंमें मोर्चा और लोना लग गया है । इस्लाममें नवीनता है—अपार बल है । देखते नहीं हो यह पूर्व, पश्चिम, संपूर्ण संसारको अपने पक्षमें करता जा रहा है !'

'युद्धमें जो विजयी हो क्या उसीका धर्म आप सच्चा धर्म मानते हैं ?'

'विजयको हँसीमें उड़ाया नहीं जा सकता ?...यह भी मैं देख रहा हूँ कि इस्लामकी बुद्धि अन्य धर्मोंकी सच्चाईकी अवगणना नहीं कर रही है । जब-जब बगदाद, बसरा, समरकंद या मक्का-मदीनामें

धर्मचर्चा चलती है; उस समय मुझे एवं मुसलमान बने हुए अन्य ब्राह्मण विद्वानोंको विशेष रूपसे वहाँ निमन्त्रित किया जाता है। मानव युद्धमें, बुद्धिमें अथवा चारित्र्यमें विजयी होता है। तुम्हारे मन्तव्यमें कोई तथ्य बचा होगा तो इस्लामको उसे स्वीकार करना ही पड़ेगा... सूफी जाग्रत हो रहे हैं...'

बहुत लंबी बातचीतके पश्चात् फकीरने उसे तक्षशिला देख आनेके लिए कहा। हिंगलाज वाले भोरिंगनाथने भी उसे यह सलाह दी थी। वर्ष पूरा हो रहा था; अतः नागदा लौटनेका मा को दिया हुआ वचन पालन करनेका समय प्रतिदिन अधिक निकट आता जा रहा था। इतनी यात्राके पश्चात् तक्षशिला जैसा धाम देखनेसे रह जाय, यह उसे अच्छा नहीं लगा। तक्षशिलाकी प्राचीन ख्याति अब नहीं रह गई थी। आर्यधर्मियोंकी पाठशाला तथा मुसलमानोंके मदरसोंने तक्षशिलाके विद्यालयको नीचा दिखा दिया था। तथापि बौद्ध, आर्य, मुसलमान, खिस्ती, यूनानी तथा यहूदियोंके लिए कभी-कभी एकत्र मिलनेके लिए यह विद्यालय उपयोगी सिद्ध होता था और विज्ञान तथा अध्यात्मके गुप्त एवं गूढ़ प्रयोगोंकी शिक्षा देने वाले वृद्ध साधु अभी भी तक्षशिलामें थे। यह जानने वाले सभी धर्मोंके पुरोगामी उदार मतवादी एकाध बार तक्षशिलामें अवश्य पहुँच जाते थे। अतः भोज तथा उसके दोनों मित्रोंने पारसिक-पल्लव-पहेलव प्रदेश और ब्राह्मणशाही गांधारकी सरहद देखकर लौटते समय तक्षशिला जानेका निश्चय किया।

यात्रामें उन्होंने देखा कि उनकी कीर्ति इन प्रदेशोंमें भी पहुँच गई है। विद्वान एवं वीर उनसे मिलनेके लिए आते। यहाँ तक तो ठीक। परंतु जब एक मुसलमान जागीरदारने उन्हें आमंत्रित कर अपने बगीचेमें पड़ाव दिया, उस समय उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। जरतुश्ती धर्मके लिए जीवन अर्पण करने वाले उसके पूर्वजोंने अनेक शत वर्षोंकी

यातनाके पश्चात् इस्लाममें सत्य देख, उस धर्मको स्वीकार कर छोटा-सा राज्य स्थापित कर इस्लामके विस्तारके लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया था। विश्वविख्यात अजित मुसलमान पहलवानको शिकस्त देने वाली त्रिपुटीको देखने की उसे इच्छा हुई। इस्लाम कभी पराजित हो ही नहीं सकता यह उसका अंध-विश्वास था। इस्लामको पराजित करने वाला या तो मुसलमान बन गया था या सदैवके लिए दोजखमें फेंक दिया गया था। भोजको भी इसी भूमिका पर पहुँचानेके लिए निमंत्रित किया गया। उसने निमंत्रण स्वीकार भी कर लिया। उसे मालूम न था कि उनके लिए दो ही मार्ग खुले थे। इस्लाम धर्म स्वीकार कर मुसलमान राजाकी और उसके दो सरदारोंकी तीन रूपसुंदरी कन्याओंके साथ विवाह करना ; या उनके हाथसे विष पीकर अपनी जानसे हाथ धोना।

पुतलोंको जीतने वाले विश्व विजेता मुसलमान पहलवानको पछाड़ने वाले भोजको मानपूर्वक, अत्याचार अथवा प्रलोभनसे अपना बना लिया जाय तो पश्चिममें इस्लामी एवं पूर्वमें काफिर प्रदेशों पर सरलतासे विजय प्राप्तकी जा सकती थी। यह स्वप्न देखने वाले राजा द्वारा प्रदत्त आमंत्रण पहले तो उसे अर्थ हीन स्वागत जैसा जान पड़ा। राजा स्वयं उसे लेनेके लिए आये। यह कदाचित् उसके बलको मान दिया जा रहा है, ऐसा ख्याल किया जा सकता है। सुंदर महल-उपवनमें आवास राजाकी निजी शोभा मानी जा सकती है। सुंदर भोजन, नृत्य और गायन भी राजवैभव एवं आतिथ्य-प्रदर्शन हो सकता है। परन्तु राजा, राजकुमारी, सरदार अथवा प्रधानके स्थान पर पड़ाव दिये गये उपवनमें राजकुमारी नरगिस उसके साथ रात्रि-भोजन करेगी, यह जब उसने सुना तो उसके विस्मयका वारापार नहीं रहा। भारत और उसके बाहर भी राज कन्यायें एवं राज रानियाँ बुरका ओढ़ने लग गई थीं। परन्तु अभी भी प्रतिभा संपन्न नारियोंको पुरुषके नेत्रोंसे सतत अदृश्य रखनेकी प्रथा पूर्ण रूपसे व्यापक न बनी थी।

जब बाली और देव भी भय-त्रस्त होकर भोजके पास आकर कहने लगे कि आज सुंदरी कुमारीके साथ भोजन करना पड़ेगा; उस समय तीनोंको भय का आभास अवश्य हुआ। परंतु जो भयसे डरे वह युवक ही नहीं। किसी भी प्रकारके प्रलोभन अथवा दुरभिसंधिके लिए प्रस्तुत रहनेका तीनों मित्रोंने निश्चय किया। शाहजादी नरगिस भोजके साथ भोजन करनेके लिए पधार रही है, यह सूचना मिलते ही तीनों मित्र अलग हो गये। तीनों मित्रोंके लिए एक-एक ललनाके साथ भोजन करनेका प्रबंध हो चुका था। उसी उपवनके भिन्न-भिन्न छोटे-मोटे आरामगृहोंमें इन तीनों भोजन समारंभोंका प्रबंध किया गया था।

नरगिस एक तेजस्वी पुष्पके समान असीम रूपसी लग रही थी। शाही अभिमानसे पूर्ण शाहजादीने भोजका नमस्कार ग्रहण किया और आर्य ढंगसे तैयार भोजनमें सम्मिलित होनेके लिए दोनों बैठ गये।

'आप हिंदू लोग मुसलमानके हाथका बनाया भोजन नहीं करते। क्या यह सच है?' नरगिसने पूछा।

'ठीक ऐसा तो नहीं है, किन्तु मुसलमानोंका संसर्ग बढ़ जानेके डरसे कतिपय ब्रह्मक्षेत्रोंने भोजनकी कठोर आचार विधिके पालनका आदेश दिया है।'

'सह भोजनके संबंधमें आपका क्या विचार है?'

'मैं तो...आप देख ही रही है...रात्रिमें फलाहारके सिवा और कुछ नहीं करता...और मेरे जैसे यात्रीके लिए आचार-विधिका पालन असंभव-सा है।'

'यात्री हैं या विजय परिक्रमाके लिए निकले हैं?'

'विजय परिक्रमा! किसकी विजय?'

'क्यों? शास्त्रार्थ करते हैं। द्वंद्व युद्धका आह्वान भी तो स्वीकार करते हैं?'

'शास्त्रार्थ नहीं, मुझे तो शास्त्रोंका परिचय प्राप्त करनेकी

अभिलाषा है, इस्लामी शास्त्रोंका भी जीतनेके विचारसे नहीं, केवल शंका-समाधानके लिए और भारतके तीर्थधामोंको देखनेके लिए परिक्रमा कर रहा हूँ।'

'आपने तो हमारे रुस्तमेजहाँको द्वंद्वमें पराजित कर दिया। हमारी दुनियामें इसकी जोड़ी नहीं है।'

'बड़ा ही कुशल और योग्य कुश्तीबाज है। इसकी जोड़ी मिलना कठिन अवश्य है, आपका कथन बिलकुल सच है।'

'गतवर्ष दिग्विजय कर इसने मेरे साथ विवाह करने की याचना की थी।' मुस्कुराकर नरगिसने कहा।

'प्रचंड बलको आत्म-समर्पण करना बुरा है।' भोजने गौरसे उसकी ओर देखकर कहा।

'मैं पराजित बलको आत्म-समर्पण करनेके लिए तैयार नहीं।' इठलाती हुई नरगिस बोली।

'आजका विजेता बलमें कल पराजित भी हो सकता है!' नरगिसके अद्भुत अंग प्रदर्शनके प्रति आदरयुक्त दृष्टिक्षेप कर भोजने कहा।

'हुआ भी ऐसा ही, दो वर्षसे बराबर इसने विजय प्राप्त किया। मैंने इससे कहा था कि निरंतर तीन वर्ष विजय प्राप्त करनेके पश्चात् मिलना।'

'मुझे इस शर्त का पता होता तो मैं पराजित होकर भी उसकी इच्छा पूर्ण कर देता।' भोजने सिर नीचा कर कहा।

'अच्छा ही हुआ जो आपने ऐसा नहीं किया।'

'क्यों? क्या उसे आप नहीं चाहतीं?'

'जी नहीं। केवल शारीरिक बलका पुतला है...न तो संस्कार...न शिक्षा...!'

'आपकी पसन्दका मापदंड बहुत ऊँचा है।'

'इसे पूर्ण करनेवाले को प्राप्त भी तो करूँगी! यह क्या मेरे लिए कम सौभाग्य की बात होगी?'

'आपकी अभिलाषा भगवान पूर्ण करें !'

'भगवान तो हैं ही; किंतु इस अभिलाषाको पूर्ण करने वाला एक ही व्यक्ति है। मैंने ढूँढ़ निकाला है।'

'बहुत अच्छा हुआ। उसका एवं आपका—दोनोंका कल्याण हो !'

'उस व्यक्ति की आप कल्पना कर सकते हैं ?'

'नहीं भाई ! हम प्रवासी हैं; क्या जानें ?'

'नाम बताऊँ ?'

'सुनकर प्रसन्नता होगी...अवश्य ही...'

'उसका नाम भोज है !' स्थिरतापूर्वक कुमारी नरगिसने कहा और हँसती हुई भोजको देखती रही। क्षण भर भोज नरगिसको देखता रह गया। क्षण भरके लिए उसे ऐसा लगा मानो सौंदर्यका पुंज उसके बल-पौरुषका पराभव करनेके लिए आगे बढ़ रहा है।

'शाहजादी ! आप भूल कर रही हैं। खाखी लोगोंको न याद करना ही ठीक है। यह बड़ा ही रुक्ष संप्रदाय है। इसमें न तो रस है, न सौंदर्य, न स्वाद...'

'यह तो मेरे समझने की बात है, आपके नहीं !'

'ठीक !'

'भोज आज भी अविवाहित है, यह मुझे मालूम है।'

'शायद विवाह करे ही नहीं !'

'मान लीजिये विवाह कर ले तब ?'

'पर आप जैसी शर्त वह नहीं करेगा।'

'इस भोजके साथ मैं बिना शर्त विवाह करनेके लिए तैयार हूँ... मात्र एक शर्त...'

'कौन-सी शर्त ?'

'मैं मुसलमान के सिवा दूसरेके साथ विवाह नहीं करूँगी।'

'समझ गया !'

'क्या समझ गये ?'

'भोज विवाहके समय शाहजादी और शाहजादीकी शर्तको याद रखेगा !'

'वचन देते हैं ?'

'जी हाँ !' कह कर भोजने नरगिसके सामने फैलाये हुए हाथमें अपना हाथ रख दिया।

स्त्री-सौंदर्य क्या है ? स्त्री-सौंदर्यकी सामर्थ्य क्या है ? व्यक्ति एवं समष्टिका जीवन पलट देनेकी इस सौंदर्य में कितनी शक्ति है ? इसकी भव्य एवं भयंकर विचार-रेखा भोजके मस्तिष्कमें दौड़ गयी। निश्चयको सौंदर्य किस प्रकार डिगा सकता है, संकल्पको सौंदर्य किस प्रकार दूर फेंक देता है, विचार-तुलाको रूप कैसे हिला देता है; एक क्षण मानवको हिंदू कैसे बनाये रख सकता है अथवा मुसलमान कैसे बना देता है, आँखका एक इशारा प्राचीन दुनियाको कैसे भुला देता है और नवीन संसारका सृजन करता है, इसका एक बहुत ही भव्य विचार भोजको उस रातमें हुआ। युद्ध-विजय आसान है, परन्तु काम-विजय दुर्घट है ! शिवकी भूमिका पर पहुंचने वाला ही विजय प्राप्त कर सकता है, इसका रहस्य यहीं भोजकी समझमें आया। गिरते-पड़ते, लड़खड़ाते और चक्कर खाते हुए उसने शिवका स्मरण किया। हारित मुनिका आशीर्वाद, भोरिंगनाथका प्रवचन याद किया और स्वस्थता प्राप्त की। पास ही कमरोंमें बैठे हुए भोज सदृश ही स्थितिका अनुभव करने वाले उसके मित्रोंका मन विचलित हो ही रहा था कि एकाएक भोजने गर्जनाकी—'अ...ल...ख...'

भोज सावधान हो चुका था। उसके अलख उच्चारणने उसके मित्रोंको भी सचेत कर दिया। भोजको फुसलाने वाली युवती नरगिसने पूछा, 'यह आपने कैसी गर्जना की ?'

'हमारे लक्ष्यमें न आये ऐसे अलक्ष्य प्रभुका नाम-स्मरण मैंने किया !'

'क्यों ?'

'मुझे आपके सौंदर्यमें प्रभुकी सौंदर्य-कलाका भास हुआ ! आपकी, आपके सौंदर्यकी पूजा की जा सकती है। उसका पान नहीं किया जा सकता।'

'तो यह कटोरा आपको मुँहसे लगाना पड़ेगा। इसमें रखा हुआ सत्व आपको पीना पड़ेगा। सौंदर्य-पान करें या विष !'

'यह कटोरा मेरे जैसा ब्राह्मण मुखसे नहीं लगा सकता। विष-पान कराना ही है तो मेरे खप्परमें डाल दीजिये।'

'जीवित रहना है या निष्तत्व, प्राणहीन हिंदू बनना है ?'

'धमकी अथवा लोभसे अपना विचार मैं नहीं बदल सकता।'

'सच्चे धर्म—इस्लामको ग्रहण कर लो भोज ! तुम्हारा नाम भी मैंने रख छोड़ा है...'

'दूध खप्परमें डालिये—शीघ्र !'

'ऐसा ! हठ नहीं छोड़ोगे ?' खप्पर में दूध डालते समय नरगिसका हाथ काँप उठा।

'हाथको दृढ़ रखिये।' भोजने कहा।

'युवतीने आह भर कर खप्परमें दूध उड़ेल दिया और तब अलखकी गर्जना कर भोजने खप्पर मुखसे लगा लिया।

चीख कर मूर्छित होकर गिर पड़ने वाली राजकुमारी नरगिसको वहीं पड़ी हुई छोड़ भोज दौड़कर बाली तथा देवके कक्षमें जा पहुँचा।

'साथमें आते हो या यहीं रहकर सौंदर्यका उपभोग करना है ?' भोजने उनसे पूछा।

सौंदर्यका उपभोग बिलकुल मजाकमें उड़ा देने लायक तो नहीं है...' बाली बोला।

'ठीक है; तो मैं जाता हूँ...' कहकर भोज लौटने लगा। बालीने पूछा—किंतु...वह नहीं तो...यह विष तो सामने ही है... उसका पान करूँ ?'

'हाँ ! शंकरका नाम लेकर खप्परमें विष ले ले और भय-रहित हो पी जा ! काम-विजयके बदलेमें शंकर हमारा विष स्वयं पी जायेंगे ।'

और हुआ भी ऐसा ही बाली और उसीके समान देवने भी सुंदरियोंको दूर हटा उनके कटोरोंमें भरा हुआ विष अपने-अपने खप्परमें डलवा कर पी लिया। तीनों वहाँ से भागे। आश्चर्य-स्तब्ध युवतियाँ देखती ही रह गईं कि दुर्गंधयुक्त मूर्च्छा लाने वाला विष इन तीनों पर जरा भी असर नहीं कर सका।

भोजका यह सबसे भयंकर अनुभव था। ऐसी पतनकी घड़ीका आज तक उसने अनुभव न किया था। विष तो भयंकर था ही किंतु सौंदर्य उससे भी बढ़कर भयंकर था। दौड़ कर भागते-भागते एक स्थान पर स्वस्थ होनेके लिए खड़े हुए।

'विष कहाँ चला गया ?' देवने पूछा।

'यह खप्पर पी गया !' भोजने कहा।

'ऐं ?' बालीने विस्मय प्रदर्शित किया।

'यह खप्पर भोरिंगनाथ की भेंट है। उन्होंने आग्रह कर हम तीनोंको इसे दिया था। याद है, सबसे उन्होंने जो प्रतिज्ञा कराई थी ?'

'जी हाँ, कुछ भी खाना-पीना हो तो इस खप्परमें डलवा कर !' बालीने कहा।

'इस खप्परने ही हम लोगों की जीवन-रक्षा की। इसकी बनावटमें ही ऐसा गुण है कि यह विषको चूस लेता है।'

रास्तेमें कहीं रुके बिना तीनों मित्र तक्षशिला पहुँच गये। रास्तेमें चलते-चलते उन्होंने देखा कि बुद्ध, विष्णु एवं शिवमंदिरोंके पास ही मस्जिदें खड़ी हो रही थीं। जिन ग्रामों या नगरोंमें पाठशालाएँ होतीं वहाँ छोटे-छोटे मकतब एवं मदरसे खुल रहे थे। इस ओर भी इनका ध्यान गये बिना न रहा। कोई नवीन, बाल-चापल्यसे पूर्ण, अबाध गति जैसी विद्युत-शक्ति आगे बढ़ती चली आ रही थी; ऐसा स्थल-स्थल पर

उन्हें दीख पड़ा रहा था। तक्षशिला नगरमें जब प्रभात समय मुसलमानोंको प्रभु स्मरणमें प्रेरित करने वाली अजान सुनी उस समय क्षण भरके लिए भोजके मनमें विचार उत्पन्न हुआ कि मक्का-मदीनासे चल कर आई हुई इस पुकारका उद्भव यहीं अटकनेके लिए तो नहीं हुआ है !

तक्षशिलाका विद्याधाम अभी भी पूज्यभाव प्रेरित करता था। पूर्वमें काशी, दक्षिणमें काञ्ची, पश्चिममें बल्लभी या प्रभास और उत्तरमें तक्षशिला जाकर अपने किये हुए विद्याभ्यास पर तेज चढ़ानेकी विद्यार्थियों एवं विद्वानोंके मनमें अभी भी प्रबल इच्छा होती थी। भोजको तो अभ्यास-युगका एक स्वप्न सिद्ध होता हुआ जान पड़ा। विद्याधामको प्रणाम कर भीतर प्रवेश करते समय उसने देखा कि इस युग-युगके प्राचीन विद्यापीठ पर भी जीर्णताका असर पड़ चुका है। मकानों और पर्णकुटियोंमें वह चमक नहीं थी जिसकी भोज कल्पना किये हुए था। बगीचा, क्यारी, बन-उपबन, वृक्ष, पौधे या तो अनियमित बढ़ रहे थे अथवा सूखे-मुर्झाये हुए लग रहे थे। प्रयोगशालाओंमें युवक विद्यार्थियोंके स्थान पर अधेड़ या वृद्ध काम करते हुए दीख पड़ते। भोजने यह भी देखा कि जहाँ रस शास्त्र अमृत उपजानेका कभी प्रयत्न किया करता था वहाँ भिन्न-भिन्न प्रकारके विषोंको बनानेका प्रयोग चल रहा था। अरे, इन विषोंको बेचने की योजनायें भी गढ़ी जा रही थीं ! अभी भी वहाँ अध्ययन-अध्यापन होता, चर्चायें चलतीं, शंका-समाधानके लिए आयोजन होता। लेखक लेख और मौलिक ग्रन्थ भी लिखते। यह सब होते हुए भी भोजने अपने कल्पना-जगत में वहाँ के आचार्य और विद्यार्थियोंके लिए जो धारणा बनाई थी, वह उसे वहाँ न मिली। किसीके चेहरे पर प्रफुल्लता न थी। यहाँके कितने ही नामाङ्कित विद्या-गुरु बगदाद-बसरा जाकर वापस ही न लौटते। ऐसे न लौटने वालोंके सम्बन्धमें यह भी अफवाह

उड़ती कि वे इस्लाम धर्म स्वीकार कर मिश्र, यूनान, रूस एवं अंदलुस जाकर म्लेच्छ-धर्मका प्रचार व प्रसार कर रहे हैं।

अभी भी शिक्षक-वर्ग बुद्ध-पूजक था। अनेक शिक्षक वैदिक दर्शनोंमें श्रद्धा रखते थे। दो-चार यूनानी दार्शनिक, अरबी मौलवी एवं छोटी-छोटी आँख वाले तथा विश्व पर हँसने वाले चीनी तत्वज्ञ भी यहाँ थे। उनका नवीन धर्म या दर्शन सीखनेकी अपेक्षा पुरातन आर्य संस्कृतिमें पाई जानेवाली ज्ञान राशि, गूढ़ अध्यात्मज्ञान एवं योगकी प्रणालिकाओं-को अध्ययन करनेका उद्देश्य अधिक था। संस्कृति एक दूसरेका उच्छेदन करने से नहीं, बल्कि एक दूसरेके समन्वयमें जीवित रहती है। समन्वय बिना सृजन असंभव है। यह भोजको विदेशी अभ्यासियोंके परिचयसे ही प्राप्त हुआ। एक ओर मुसलमान अपनी विजयका डंका पीट रहे थे। मूर्तियाँ भंग की जा रही थीं। पराधीन प्रजाका खुले आम इस्लाम धर्म में परिवर्तन हो रहा था। ऐसी भंजक-धार्मिक प्रवृत्तिके विरोधमें उसका आर्य हृदय कभी-कभी जल उठता। पर दूसरी तरफ इस्लाम धर्मावल-म्बियोंका वीरत्व, उनका अनुशासन, एकेश्वरवाद और एक ही पैगंबरके पैगामसे उत्पन्न एकता उसे चकित भी करती। साथ ही साथ तक्षशिलामें अभ्यास करने वाले विद्वानोंकी नम्रता, पवित्रता, भक्तिभाव एवं अन्य धर्मोंके सत्वोंको सीखनेकी उत्कट अभिलाषा उसे आश्चर्यान्वित भी कर रही थी। उसने संलाप भी ठीक ठीक किया। अन्य धर्मोंके रहस्योंको भी ठीक रूपसे समझा। तथापि तक्षशिलामें और उसकी व्यवस्थामें उसे स्फूर्ति और सजीवताका अनुभव क्यों नहीं हुआ? उसने एक अधिष्ठातासे पूछा भी, 'भद्र! यहाँ मुझे यौवन क्यों नहीं दिखाई देता?'

'तुम्हें यौवन देखना हो तो हमारे सबसे वृद्ध आचार्यसे मिलो।' हँसकर अधिष्ठाताने उत्तर दिया।

आश्चर्यचकित भोजका वृद्ध आचार्यके पास जाने पर चित्तका समाधान भी हो गया। उसे अधिष्ठाताका कथन बिलकुल सत्य

लगा। वृद्ध आचार्यकी आँखोंमें चमकती हुई सजीवता उसे संपूर्ण विद्यापीठके वातावरणकी अपेक्षा अधिक प्रभावोत्पादक जान पड़ी। पीपलके वृक्षके नीचे सिंहचर्म बिछाकर ध्यानमग्न बैठे हुए इस बौद्ध मार्गी आचार्यकी आँखें खुलनेके बाद उनसे जो संक्षिप्त बातचीत हुई उसने भोजको हारित मुनि एवं भोरिंगनाथका स्मरण दिला दिया।

'हारित मुनिके तुम शिष्य हो?' आचार्यने पूछा।

'इस प्रकार परिचय देनेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है; किंतु मैं तो आपका भी शिष्य बननेके लिए तैयार हूँ।' भोज बोला।

'इस उम्रमें किसीको शिष्य बनानेकी शक्ति न रही! खूब भ्रमण कर आये?'

'जी, किंतु अभी भी बहुत शेष है।'

'जो देखना था वह देख लिया। अब अपने कर्तव्य, जिम्मेदारीके प्रति उत्तरदायी बनो। विचारको भी आकार चाहिये।'

'अमूर्तको आकार देने जाँय तो मुसलमान तलवार लेकर टूट पड़ते हैं!' हँस कर भोजने कहा।

'तलवार? ठीक है! उसे भी चलाना सीखो। पर यह काटनेका साधन है, जोड़नेका नहीं। इसका अधिक भय करने की आवश्यकता नहीं है!'

'भय अत्यधिक बढ़ गया है, गुरुजी! यह मुझे, आपको, वेदको एवं धर्मचक्रको भी काटकर नष्टभ्रष्ट कर डालेगा।'

'वेद-पाठक वेदको न पहचानें, धर्मचक्र प्रवर्तक धर्मचक्रको न पहचानें तो वेद और धर्मचक्र नष्टभ्रष्ट हो जायेंगे। उनका अस्तित्व भी समाप्त हो जायगा। इस परिवर्तनशील युग से संभव है वेद, बुद्ध, इस्लाम... सभीका प्रतिनिधित्व करने वाला एक विशुद्ध स्वरूप निकल आये।'

'आपको भय नहीं लगता!'

'मैं निर्भय हूँ और तुम्हें सच्ची निर्भयता यदि देखनी हो तो काश्मीर

के पश्चिमी किनारे पर खोद कर बनाये हुए सहस्र बुद्धका दर्शन करते हुए घर जाना। सच्चे धर्मको भय नहीं है।'

घर एवं माताका अत्यधिक स्मरण आने पर भी, भोजने दोनों मित्रोंके साथ काश्मीरी पर्वतोंकी गगनचुंबी दीवालोंमें खोदकर बनाई गई सहस्र बुद्ध की मूर्त्तियोंका दर्शन किया।

यहाँ वह एक प्रकारकी समाधि अवस्थाको पहुँच गया। प्रकृति यहाँ मानवकी हँसी उड़ाती थी या उसे शिक्षा देती थी! मानवकी महत्ताकी वह अवश्य ही हँसी उड़ाती थी, शरीरमें कँपकँपी पैदा करने वाली ठंढक, आकाशको छूने वाले शिखर, शिखरों पर हँसते हुए हिमके ढेर, गहरी घाटियाँ, जहाँ आँखें भी नहीं पहुँच सकती थी! चट्टानों परसे जाने के लिए बनाया हुआ मार्ग और इस मार्ग पर चींटोंकी अल्पता धारण करने वाला मानव उसके समस्त मानव जातिकी अल्पता का सच्चा दृश्य उपस्थित कर रहा था।

मनुष्य आज आता है, कल चला जाता है! परन्तु यह पर्वत-राशि युगयुगसे एकांतमें खड़ी हँसते हुए लोगोंको देख रही है। न जाने कितने ही भोजोंको उसने देखा होगा! यदि न भी देखा हो तो उसे क्या परवाह? क्षण-क्षणमें जन्म लेने और मरने वाले अनेक भोजों एवं महा भोजोंको देख कभी भी उनकी ओर ध्यान न देने वाली इस हिमगिरिकी शिखरमाला कालचक्रको भी फटकारती हुई चिरंजीवी खड़ी थी! मानव-मर्यादाकी अपेक्षा पर्वतश्रेणी अवश्य चिरंजीवी मानी जा सकती है।

मानव तथा पर्वतोंको शांतिपूर्ण स्मित-दृष्टिसे सतत देखते हुए एक नहीं, एक सौ नहीं, बल्कि एक हजार बुद्धोंको पर्वतोंने अपने हृदयमें समा रखा था। ये बुद्ध वहां स्मितपूर्वक चिरंजीवी मालूम पड़ने वाली जड़सृष्टिको भी देखते रहते हैं और अपने दर्शनके लिए आने वाले चपल चेतन-सृष्टि को भी। जड़-चेतन दोनों एक समान ही स्थितिके पात्र उन्हें जान पड़ते हैं!

किस कलाकारने इस महाकाय बुद्धकी आकृतिको गढ़ा होगा ? किसके हृदयमें इस आकृतिका विचार सर्वप्रथम उदित हुआ होगा ? एक नहीं, हजारों, लाखों हृदय एक बने होंगे तब इस स्मितपूर्ण मुखकी कल्पना सिद्ध हुई होगी ! एक कलाकारने नहीं बल्कि सहस्रों कलाकारोंकी छेनीने मिलकर बुद्धकी आंखमें उमड़ती शांतिको प्रकट किया होगा ! और इस प्रचण्ड एकांतमें निथरती निर्भयता ! जात-पांत, देश, प्रदेश, जन्म, मृत्यु, मित्र एवं शत्रु इन सब द्वंद्वोंसे परे बनी मानव-परंपराने अनेक पीढ़ियोंसे भयको दूर कर दिया होगा। तभी बुद्धकी मूर्त्ति द्वारा आस-पास बरसायी जानेवाली निर्भयताका सृजन संभव है। प्रजाके जीवनमें जो संभव नहीं वह कलाकार की अंगुलीसे कैसे संभव हो सकता है ! और उमड़ती हुई अद्भुत कृपा ! रोम-रोमसे मानो कृपाका स्रोत बह रहा था ! इस कृपाके प्रवाहमें पाप-पुण्य बह जाते हैं ; इस कृपा-दृष्टिको शत्रु-मित्रका भेद दीख नहीं पड़ता। यह कृपादृष्टि विजयी वीर अथवा पराजित पामर दो में से किसीका भी पक्षपात नहीं करती। अरे ! चरण स्पर्श करने वाले पर भी वही कृपा और अंग-भंग करने वाले पर भी वही कृपा ? एक बुद्ध मूर्ति पर हथौड़ेकी चोट कर उसे कुरूप बनानेके लिए तत्पर बुद्ध द्वेषीके प्रति भी वही कृपापूर्ण स्मित-स्रोत ! मूर्तिको कुरूप बनानेका प्रयत्न करने वाला स्वयं ही लज्जित हो जाय ! किसका हाथ भला मूर्त्ति तोड़नेके लिए उठा होगा ? लेकिन उस पर भी कृपा-वर्षण ही !

चारों ओर कल्याण की भावना उत्पन्न करने वाली बुद्ध मूर्तियोंकी परंपराने उसे शिवके कल्याणकर स्वरूपका भान करा दिया। सतत वरदानी शिव एवं सतत कृपा-वर्षण करते हुए बुद्ध ! एक ही मानव-संस्कृतिके सर्वोत्तम प्रतीक ! मानवके जीवनमें शिव, कल्याण, कृपा, शांति एकत्र क्यों नहीं जन्म लेते ?

भोजकी आँखें स्वतः ही झँप गईं। उसने कल्याणकारी सौंदर्य-तत्त्व

चारो ओर फैला हुआ देखा। इस सौंदर्य-तत्त्वमें लीन होना उसे अत्यंत प्रिय लगा। एक मूर्तिके सामने बैठ उसने आँखें बन्द कर लीं। हारिताश्रममें शिवकी प्रतिष्ठाके पश्चात् आरती करते समय अनुभूत शिव-तत्त्वका उसने इस समय पुनः अनुभव किया। उसे समयका ध्यान ही न रहा कि वह कब तक इस परम सुखद भावमें निमग्न बैठा रहा।

'बापा! आज तो बहुत ध्यानमग्न हो गये!' देवने उसे जागृत करते हुए कहा।

'हाँ, देव! इच्छा होती है कि इस मूर्तिके समक्ष बैठ समस्त जीवन यहीं व्यतीत कर दूँ।' भोजने सचेत हो कहा।

'अभी नागदा पहुँचना है; और हम हैं अभी एक हजार कोस दूर...अब चलिये।' बालीने कार्यक्रमकी सूचना दी।

'इस शांतिमें यहीं बैठ जीवन व्यतीत करना हो तो कैसा अच्छा?' भोजने कहा।

मृत्यु यहीं हो और यहीं अन्तिम समाधि भी रची जाय; ऐसी कुछ-कुछ इच्छा उसके अन्तरमें उत्पन्न हुई। सहस्र बुद्धों पर दृष्टिपात कर वातावरणकी शान्तिको हृदयमें भर तीनों मित्रोंने प्रस्थान किया।

'विश्वको शांतिका संदेश पहुँचाना हो तो क्या मानव जातिको सहस्र बुद्ध उत्पन्न करने की आवश्यकता होगी?' चलते-चलते अनेक बार अपने मनमें उत्पन्न होने वाले विचारको भोजने प्रकट किया।

'थोड़ी शांति नागदामें ले चलें, थोड़ी मेदपाटमें बिखेर दें, वहाँसे जो बचे उसे आनर्तमें...तब विश्व-कल्याणके लिए देखा जायगा।' देवने कहा।

'लेकिन जो संसार हमने इस पर्यटनमें देखा है; वह शान्ति चाहता नहीं दिखायी पड़ता। अभी तो केवल एक बुद्धने जन्म लिया है, ऐसे-ऐसे हजार बुद्ध जन्म लें तब कहीं शांतिकी आशा की जा सकती है।' बालीने हँसकर कहा।

'हम सब बुद्ध बननेका प्रयत्न करें तो हजार बुद्ध शीघ्र ही उत्पन्न हो जायें।' यह विचार मनमें उत्पन्न होने पर भी भोजने उसे प्रकट नहीं किया। दिन भर उसका हृदय सात्त्विक भावोंसे ओत-प्रोत रहा। अधिक बातचीत करने की इच्छा भी उसे नहीं हो रही थी। बुद्धसमूह द्वारा प्रसृत परम शांतिका वह बारंबार स्मरण कर रहा था; परंतु संध्या समय उसके शांत हृदयकी स्वस्थता हिल उठी।

पर्वत श्रेणी पार कर तीनों मित्र नदी किनारे संध्या-स्नान कर एक वृक्षके नीचे अपने लिए रसोई की तैयारी कर रहे थे।

'बापा! आपको अकेले ही रसोई बनानेका परिश्रम करना पड़ता है। हम भी आपसे पढ़ते हैं; हमें भी जनेऊ पहना दें तो हम भी ब्राह्मण बन जायँ...' देवने हँसते-हँसते कहा।

'और आपका यह कष्ट भी कुछ हलका पड़ जाय।' बालीने कहा।

'मेरी भी यही इच्छा है; नागदा पहुँचने भर की देर है। अरे, यह कौन घोड़ा दौड़ाता चला आ रहा है...हमारी ही ओर...कौन हो सकता है?' भोजने स्वतः ही पूछा।

'पहलवानको पराजित कर बहुत यश कमाया, बापा!' देव बोला।

'और शत्रु भी तो उत्पन्न कर लिये...घोड़ा इधर ही आ रहा है...' बाली ने कहा।

'ठीक है, आने दो! उन लुटेरोंको तो उड्डी बुला ही दिया; इस बेचारे अकेले घुड़सवारकी क्या हस्ती है?' कहते हुए हाथ धोकर भोज खड़ा हो सवारकी प्रतीक्षा करने लगा।

सवार तेजीसे घोड़ा दौड़ाता हुआ आ पहुँचा। तीनोंको देख घोड़ा रोककर उसने पूछा: 'आपमें से भोजकुमार कौन हैं?'

'मैं हूँ भोज! कहिये?' भोजने आगे बढ़कर कहा।

'आपके लिए यह पत्र है।' घोड़ेसे नीचे उतरकर भोजके हाथमें पत्र देते हुए सवार ने कहा।

'किसका पत्र है ?' भोजने पूछा।

'पढ़ लीजिये और उत्तर दीजिये।' सवार ने उत्तर दिया।

भोज पत्र पढ़ने लगा। उसके मुख पर लाली दौड़ गई। साथ ही उससे आश्चर्य भी प्रकट हो रहा था। वह सोचमें पड़ गया।

'उत्तर ?

'अभी मैं आनेमें असमर्थ हूँ—एक बार स्वदेश गये बिना ! किंतु मिलूँगा अवश्य !'

'तो...राजकुँवरि...आपके पीछे आयेंगी...युद्ध में !'

'यह उत्तर मैं दे रहा हूँ—मुखसे ! राजकुँवरिसे कहना कि युद्धमें भी मैं उसे याद रखूँगा। उसने मुझे अमृत और विषका साथ ही ज्ञान कराया है। वह मेरी गुरु है, यह कहूँ तो अत्युक्ति न होगी।'

सवार लौट गया। भोजने बालीको पत्र दे दिया। भोजको विष देकर स्वयं मूर्च्छित हो जाने वाली मुसलमान शाहजादी ने पत्रमें लिखा था कि भोज लौट कर उसका पाणिग्रहण करें ! भोज धर्म-परिवर्त्तन न करना चाहें तो न करें ! परन्तु भोज बिना शाहजादी नरगिसका जीवित रहना असंभव है !

'यदि राजकुँवरि काफिरके प्रेममें पड़ जाय तो मुसलमान जीवित नहीं रहने देंगे !' भोजने कहा।

❀ ❀ ❀

उनका कार्यक्रम अब पूरा हो चुका था। उन्होंने प्रवास प्रारंभ किया। वह किसी युवतीका प्रेमपात्र बन सकता है यह विचार दृढ़ होते ही भोजके हृदयमें भयंकर मंथन प्रारंभ हो गया था।

———

७

नागद्रह पहुँचनेमें एक दिनकी यात्रा रह गई थी। अरावलीके एक छोटेसे विभागमें उपवन लगाया गया था। उसके पर्वत-शिखरसे आच्छादित एक हिस्सेमें अपराह्नके समय विश्राम करते हुए तीनों मित्र एक ओर तो यात्रामें बीती हुई कुछ घटनाओंका स्मरण कर रहे थे और दूसरी ओर शीघ्रातिशीघ्र घर पहुँच अपने संबन्धियोंसे मिलनेके लिए उत्कंठित हो रहे थे। अश्रुको स्मितका रूप देनेवाली श्रीलेखा द्वारा गायका शकुन होते ही बिदा किये जानेके समयसे लेकर शाहजादी नरगिसके प्रेम तक की पर्यटन शृंखला भोजके मन-चक्षुओंके सामने नाच रही थी। उसका मन तत्काल उड़कर मा के पास पहुँच जानेके लिए छटपटा रहा था। मा क्या कर रही होगी? अगले दिन एक वर्ष पूर्ण हो जायगा। जिस प्रकार भोज दिन गिन रहा था उसी प्रकार माता भी अवश्य ही गिन रही होगी। माताके गलेसे लिपटने की कल्पनासे ही भोजकी आँखें डबडबा आईं, और वह उठ कर बैठ गया। सूर्य मध्याकाशसे नीचे उतर रहा था।

'बापा! क्या हुआ? विश्राम नहीं करना है?' लेटे-लेटे ही देव ने पूछा।

'नहीं, अब घर पहुँच कर ही विश्राम करूँगा।'

'गला भर्राया हुआ-सा क्यों है? क्या वह तुर्क शाहजादी याद आ गई?' बालीने कटाक्ष किया।

'नहीं, नहीं! अभी प्रेम इतना पागल नहीं हुआ है कि उसके लिए रुलाई आये।' हँसकर भोजने कहा।

'ऐसा जान पड़ता है कि अब आप यहाँ विश्राम नहीं कर सकते! तब अच्छा होगा कि हम यहाँ से चल दें। उस झरनेमें जरा हाथ-मुँह धो लिया जाय।'

तीनों व्यक्ति आगे बढ़नेके लिए तैयार हो गये। पर्वतसे उतरते ही दूर पर असंख्य युवतियाँ क्रीड़ा करती, दौड़ती, गरबा नृत्य करती हुई और कुछ झूले पर झूलती हुई दिखाई दीं।

'अरे भाई! यह तो परिस्तान जैसा दिखाई दे रहा है!' देवने कहा।

'भूत-प्रेत न हों!' बालीने हँसते-हँसते कहा।

'दिन में? हिंगलाजका योगिनी नृत्य कहीं मृगजल बन यहाँ न आ गया हो!' भोजने कहा।

थोड़ा आगे बढ़ने पर पहाड़ीके बगलसे अस्त्र-शस्त्रसे युक्त एक स्त्री निकली और उन्हें रोककर खड़ी हो गई।

'कौन हैं आप? आपको खबर नहीं है क्या कि यह रास्ता आज बंद है?' स्त्री-सैनिकने पूछा।

'हम यात्री हैं!' भोजने कहा।

'और हमें रास्ता बन्द होनेकी खबर भी नहीं थी।' देवने कहा।

'कहाँ जाना है?'

'नागदा!' बालीने कहा।

'इस मार्गसे आज नहीं जा सकते, घूमकर जाइये।'

'क्यों? घूम कर जानेसे तो दो दिन लग जायंगे।' देव बोला।

'और हमें तो प्रातःकालके पूर्व नागदा पहुँच जाना है।' भोजने कहा।

'यह असंभव है। आज राजकुंवरिका हिंडोलोत्सव है। आज इस मार्गसे पुरुष नहीं जा सकते'

'राजकुँवरिसे प्रार्थना करें तो?' बालीने पूछा।

'पागल जैसी बात न करो, चुपचाप जल्दी बगलमें हट जाओ; नहीं तो यहाँसे दूर ढकेल दिया जायगा।' स्त्री-सैनिकने धमकी दी।

वे कुछ पीछे हट गये।

'अब?' भोजने पूछा।

'आजकी रात यहीं बितानी पड़ेगी। इसके सिवा दूसरा उपाय भी नहीं है।'

'हमें यह बात क्यों नहीं याद रही? राजकुटुम्बकी स्त्रियाँ आज ही तो हिंडोलोत्सव मनाती है; रात दिन!'

'उसपर भी नागह्रदका राजकुटुम्ब! सत्ताधीशसे क्यों नहीं कहा जा सकता? बापा, आपने इतना पढ़ा-लिखा किंतु किसी राजदरबारीसे कोई जानपहचान पैदा नहीं की? आपका विद्वत्ताने तो पांचालवासियों तकको दंग कर दिया...'

'मेरी अपेक्षा कहीं अधिक बड़े विद्वान नागदाके राजदरबारमें जाते हैं, भाई।'

'बड़े तो उम्रमें न?' हँसकर देवने पूछा।

'नहीं, नहीं, विद्वत्तामें भी!' भोजने उत्तर दिया।

दूर पर स्त्रियोंकी खिलखिलाहट सुनाई पड़ रही थी। स्त्रियोंका ऐसा मुक्त हास्य इसके पूर्व उन्होंने कभी न सुना था। युवतियाँ, कुमारियाँ, एवं वृद्धाएँ भी पुरुष रहित समाजमें एकत्र मिलने पर अद्भुत स्वतंत्रता का अनुभव करती हैं। उनकी देहमें, उनकी वाणीमें, गीतमें एक प्रकार की मुक्ति और मस्ती आ जाती है जो मिश्र-समाजमें कभी व्यक्त हो ही नहीं सकती। सर्वदा मर्यादासे रहने वाली स्त्रियाँ जब स्त्री-समुदायमें उमगमें आ जाती हैं उस समय उन्हें अपने बालोंकी, वस्त्रोंकी...इतना ही नहीं वाणीकी भी मर्यादाका विचार नहीं रह जाता! विशेषतः प्रौढ़ाओं एवं वृद्धाओंको।

युवतियोंका कोई समुदाय दूर पर बहनेवाले झरनेमें स्नान कर रहा था। कोई एक दूसरे पर पानी उछाल रही थीं। कोई उसमें तैर रही थीं। पानी उछालने, डुबकी लगाने, देहकी आकृति को अधिक दृश्यमान बनाने वाला भींगा हुआ वस्त्र बदलने, तैरने और खेलने की वहाँ पूरी अनुकूलता थी। उन्हें देखनेके लिए वहां पुरुष नेत्र उपस्थित

न होनेके कारण अत्यन्त उल्लास एवं निर्द्वंदतापूर्वक उनका खेल चल रहा था।

कहीं पानीसे निकला हुआ नारी-वृंद आँख-मिचौनी, छूआछूत खेलता हुआ एक दूसरेको पकड़नेका प्रयत्न कर रहा था। पकड़े जाने पर पकड़ने वाली, पकड़ी जानेवाली और दर्शक सबकी तीखी चीख एवं खिलखिलाहट वातावरणको उल्लासपूर्ण बना रही थी।

कहीं पर फूलोंके गेंदोंको उछालकर क्रीड़ा चल रही थी। कहीं-कहीं साहित्यिक जमघट भी जमा था। अंत्याक्षरी प्रतियोगिता चल रही थी। दूसरी ओर कहीं झूठी-सच्ची अथवा कल्पित सास-पतोहू अथवा देवरानी-जेठानीकी हास्य प्रेरक नकलें भी हो रही थीं, जिसमें मध्यायें एवं वृद्धायें भी हँसती-हँसती अपनी ओरसे किये जाने वाले सुधारों को सूचित कर रही थीं।

बीच-बीचमें हल्के जलपान और शरबतका दौरा भी चल रहा था।

'अरे भाई! ऐसा लगता है मानों ये छोकरियाँ आज भाँग पी गयी हैं!' देवने शरबत पान करनेमें लीन कुछ युवतियोंको देखते हुए कहा।

'अरे, ये भाँग पी सकती हैं और आसव भी। हमारी भील नारियाँ नृत्य करने लगती हैं तब कैसी दर्शनीय बन जाती हैं!' बालीको अपना भीलावास याद आ गया।

'क्यों चोरोंके समान स्त्रियोंको निहार रहे हो? इधर आ जाओ, ब्रह्मचारियोंके लिए यह शोभनीय नहीं है!' कल्लोल करती हुई सुंदरियों को लुकछिप कर देखने वाले भील कुमारोंको झूठा डाँट देते हुए भोजने हँसकर कर कहा।

'हम जन्म भर ब्रह्मचारी रहने वाले तो हैं नहीं?' बालीने पास आकर उत्तर दिया।

'विषपान कराने वाली सुंदरियोंको तो आपने गँवा ही दिया!' देव बोला।

'चाहो तो अभी भी तुम जा सकते हो ?' भोजने कहा ।

'पर आप यह बैठे-बैठे कर क्या रहे हैं ?' देवने पूछा ।

'एक झूलेकी रचना कर रहा हूँ ।'

'और हमें सीख देते हैं ! ब्रह्मचारी हिंडोला नहीं सजाया करते !' बालीने कहा ।

'यह कहिये न कि उन छोकरियोंको देख झूले पर झूलनेका मन हो आया !' देवने टीका की ।

सचमुच वृक्षोंसे लटकते हुए अनगिनती झूलों पर दो-दो, तीन-तीन, चार-चार युवतियाँ ऊँची-ऊँची पेंग मारती हुई कोमल मधुर स्वरमें गाकर, एक दूसरेको चिढ़ा रही थीं । कुछ झूले पर चढ़नेके लिए अथवा किसी सखीको झूलेसे गिरानेके लिए प्रयत्न कर रही थीं ।

पूर्णिमाका चाँद निकल रहा था । पश्चिमी पर्वतोंमें सूर्य भी म्लान हो डूब रहा था ।

'मैं हिंडोला क्यों रच रहा हूँ, बताऊँ ?' भोजने पूछा ।

'न कहें तो भी हम समझ जायँगे ।' देव हँसकर बोला ।

'अवकाशमें और कोई काम न होने पर हिंडोला बनाना खराब नहीं है ।' बालो बोला ।

'हिंडोला बनाते समय मेरे मनमें एक कल्पना उत्पन्न हुई......'

'कहिये-कहिये । रुक क्यों गये ? वाक्य तो पूरा कीजिये ।'

'भगवान बुद्धको इसपर बैठाकर झुलाया जा सकता है ?' भोजने पूछा । सहस्र बुद्धका दर्शन करनेके पश्चात् भोजके हृदयमें बुद्धने अनेकानेक कल्पनाएँ भरना प्रारम्भ कर दिया था ।

'झूलेपर न तो बुद्ध झूलते हैं, न यशोधरा ।' देवने कहा ।

देव बुद्ध-कथासे परिचित था । बुद्धकी पत्नी यशोधराकी कथा भी वह जानता था ।

'तुम्हारा कथन सत्य जान पड़ता है । स्थिरताकी मूर्ति बुद्धको चल-

झूला पसंद आना संभव नहीं है।' भोजने देवके कथनको स्वीकार करते हुए कहा।

फिर भी वृक्षके नीचे सुंदर रंग-बिरंगे डोरों से बनाये हुए झूलेको भोज सजाता ही जा रहा था।

'अब हिंडोला क्यों सजा रहे हो? किसे बैठानेके लिए?' बालीने पूछा।

'शिवको बैठाया जा सकता है?' भोजने पूछा।

'शिव यदि झूले पर बैठें तो झूलेकी पेंगमें पार्वतीको भी भूल जाँय। शिवको भी बुद्धके समान ही ध्यान-मग्न रहने देना अच्छा। नहीं तो क्रुद्ध होने पर ये तीसरा नेत्र भी खोल सकते हैं!' बाली ने समझाया।

'बिलकुल सच! तब इस पर किसे बैठाया जा सकता है?' भोजने प्रश्न किया।

'या तो आपको...या राधाकृष्णको...' देवने उत्तर दिया।

दोनों मित्र खिलखिला कर हँस पड़े।

'आज तुम लोगोंको बहुत हंसी आ रही है! मैं...'

भोजके वाक्य पूरा करनेके पहले ही देवने भोजको उठाकर झूलेपर बैठा दिया, और उसे जोरसे ढकेल दिया। भोजने झूलेकी दोनों डोरों को पकड़ न लिया होता तो वह मुँहके बल गिर पड़ा होता।

'ठीक! और कोई काम नहीं है? खूब हंगामा कर लो!'

'हंगामा नहीं है यह भोज! झूला केवल मौजका साधन नहीं है; झूलेपर झूलते हुए हम ऊंची किलेकी दीवालों या गिरिश्रृङ्गों पर चढ़-उतर सकते हैं।

'कैसे?' भोजने पूछा।

'आप नीचे उतर आइये। हम बैठते हैं; आप झूलेको वेगसे ढकेलें। हम सामनेकी टेकरियोंपर कैसे चढ़ जाते हैं यह दिखायें।'

झूला रुका और भोज नीचे उतर आया। देव और बाली दोनों एक

दूसरेकी ओर पीठ कर झूलेपर खड़े हो गये। भोजने बलपूर्वक झूलेको वेगसे ढकेल दिया। इस वेगका आश्रय ले देव एक दूरके टीले पर उछल कर पहुँच गया और बाली झूलेके लौटते ही सामनेकी टेकरी पर जा खड़ा हुआ। झूलेका ऐसा युद्धकालिक उपयोग सचमुच आश्चर्योत्पादक था।

इससे अधिक आश्चर्य तो उस समय हुआ जब टेकरी पर खड़े रहनेके बजाय दोनों एकाएक बैठ गये, और तेजीसे दौड़ते हुए आकर बोले, 'बापा! जल्दी कहीं छिप जाइये। युवतियाँ इधर ही आ रही है।'

किसी भी पुरुषके लिए हिंडोलोत्सवके दिन इस उपवनमें न आने की मनाही थी। स्त्री-सैनिकने उन्हें सचेत भी कर दिया था। प्रभातकी प्रतीक्षामें वे वहीं समय काट रहे थे। संपूर्ण उपवन आज केवल स्वतन्त्र, स्वच्छन्द स्त्री-उत्सवके लिए ही रक्षित रहनेसे उनकी उपस्थिति अनिष्टकर भी हो सकती थी। नागदाके राजकुमारीका अकारण कोपभाजन बनना उन्हें उचित न मालूम हुआ। ज्यों-त्यों कर वे एक झाड़ी में छिप गये। थोड़ी देर तक तो उन्हें श्वाँस लेना भी बन्द कर देना पड़ा।

क्षण मात्रमें कंकण और नूपुर झनझना उठे। एक सौष्ठवपूर्ण अज्ञात यौवना टेकरी पर आ उपस्थित हुई और चारो ओर गौर से देखने लगी।

'हूँ! अब समझमें आया, झूला यहाँ पड़ा है। यही दिखाने के लिए तू मुझे यहाँ ले आई है! क्यों ठीक है न? अब आँख-मिचौवल नहीं खेलना है। चल, इधर आ और मुझे झुला।' कहती हुई किशोरी हिंडोले पर बैठ गई।

दूसरे समुदायसे भी दो युवतियां हँसती हुई बाहर निकल आई और चिल्ला उठीं, 'हाँ, हाँ, कुमारी! यह हिंडोला हमने नहीं डाला है, बिना समझे बूझे न बैठिये।

'मैं तो तुम्हारे मना करने के पूर्व ही बैठ गई। तुम्हें जो कुछ पूछताछ करनी हो करो!' राजकुमारी ने उत्तर दिया।

'किसी पुरुषने बाँधा होगा तो उसके साथ विवाह करना पड़ेगा, बहन ! समझीं ? इस प्रकार बिना समझे-बूझे बैठ जाती हैं !' एक साथ की युवतीने अनजाने झूले पर बैठनेके परिणाम की ओर निर्देश किया।

'यहाँ ..इस रक्षित उपवनमें कौन पुरुष भला आ सकता है ?... और यदि किसी ने बाँधा ही होगा तो देखा जायगा ! विवाह ही न करना पड़ेगा ! कर लूँगी बस कि और कुछ ? झुलाओ दोनों...कैसा बढ़िया हिंडोला सजाया है !' राजकुमारी झूलते-झूलते बोली।

हिंडोला झुलाने वाली दो सखियोंमें से एक बोल उठी, 'किसी की हंसी सुनाई दी...धीमी...दबी हुई...'

'तुममें से ही किसी की होगी...!...छिपकर हिंडोला डालकर मुझे बनाती है ?'

'किसी आदमी की हँसी मालूम होती है !' दूसरी नवयौवनाने कहा।

'तुझे पुरुषोंका स्वप्न बहुत आया करता है ? शादी कर ले जल्दी !'

'स्त्रीके जीवनमें पुरुष कहाँसे प्रवेश करता है, यह अभी समस्या है राजकुमारी जी !' उसने उत्तर दिया।

चन्द्रमा आकाशमें अग्रसर हो रहा था और सखियाँ उन्मुक्त हो हिंडोलेका वेग बढ़ा रही थीं।

'कोई गीत गाओ...पास बैठकर !' राजकुमारीकी मदभरी आँखें भारसे झँपी जा रही थीं। उसने दोनों सखियोंको हिंडोले पर अपने पास बैठा लिया।

'बहनों...! भागो...! दो आँखें चमक रही हैं ! बाघ ..!' एक सखी गीत प्रारम्भ होनेके पूर्व ही चीख उठी।

सचमुच एक बाघका मस्तक अंगारेके समान चमकती हुई आँखोंके चारो ओर आकार धारण कर रहा था। सामनेकी झाड़ीमें से एक, दो, तीन युवक निकल आये और जिस झाड़ीमें से बाघकी आँखें चमक रही थीं उसी ओर दौड़ पड़े। तीन लाठियोंका एक साथ प्रहार होते ही घर्घर

आवाज करता हुआ बाघ अदृश्य हो गया। बाघके साथ तीनों युवक भी पहाड़के बाईं ओर अदृश्य होनेका उपक्रम करने लगे।

'कौन हैं आप लोग?' राजकुमारीने उन्हें रोककर सत्तापूर्ण आवाजमें पूछा।

'यात्री हैं, राजकुमारी!' नमस्कार कर भोजने उत्तर दिया।

तीनों व्यक्ति निकट चले गये।

'जाना कहाँ है?'

'नागदा!'

'आज्ञा उल्लंघन कर इस उपवनमें कैसे आये?'

'शपथपूर्वक कहते हैं...हमें इस आदेशकी कोई सूचना न थी। आपके सैनिकने रोका; तभीसे हम इधर रुके हैं। यहाँ भी रोक है; इसका पता न था।'

'यह हिंडोला किसने बाँधा?'

'मैंने...इन दोनों मित्रोंकी सहायतासे!'

'क्यों?' राजकुमारीने कुछ क्रुद्ध हो पूछा। उसकी दोनों सखियाँ कभी एक दूसरे का मुँह ताकतीं, कभी राजकुमारीका मुँह देखतीं, और कभी सामने खड़े तीनों पुरुषोंका मुँह निहारतीं!

'नागदा जल्दी पहुँचना है...हमें आपकी सैनिक स्त्रीने रोक दिया। तब संपूर्ण रात्रि यहीं व्यतीत करनेके सिवा कोई चारा भी तो न था। समय कैसे काटते?...शायद आपके हिंडोलोत्सवने हमें भी झूला बाँधनेके लिए प्रेरित किया हो...हम क्षमा माँगते हैं।'

'इसे इन विचित्र फूलोंसे सजानेका भी कदाचित् यही कारण है?'

'यह पुष्प अद्भुत है...यह कभी नहीं मुरझाता।'

'झूला डालकर आपने जो भूल की है, यदि आपको उसका ज्ञान होता तो आप न तो क्षमा माँगते और न आपको वह मिल ही सकती थी ..आज्ञा बिना यहाँ आने वालेका मस्तक धड़ पर नहीं रहता।'

'पर...हिंडोले पर बैठने वाला पुरुष...' एक युवती कुछ कहना चाहती थी।

'चुप रह!'...राजकुमारीने उसे रोक दिया। भोजकी ओर पुनः मुड़ी, 'आपने हमें बाघसे बचाया है; उसके बदलेमें हम आपको क्षमा करते हैं...आ कहाँसे रहे हैं?' सहज कोमलतासे राजकुमारीने पूछा।

'पर्यटनसे! तीर्थधाम देखा, विद्यापीठ भी! अब नागदा लौट रहे हैं।'

'नाम क्या है?'

'भोज!'

'नाम तो सुना है, ब्राह्मण हैं?'

'जी!'

'तब ब्रह्महत्याका पाप कौन लेगा?...आपने किसी तुर्क या यवनके साथ द्वंद्व-युद्ध भी तो किया था?

'जी हाँ! था तो मैं ही, पर साधारण-सी बात यहाँ तक पहुँच जायगी, यह मुझे पता न था।'

'ठीक है, शेष रात आप यहीं व्यतीत कर लें। जो कुछ घटना यहाँ घटी है उसे अपने ही तक सीमित रखिएगा। हम लोगोंके यहाँसे प्रस्थान करनेके पश्चात् प्रभात समय आप जा सकेंगे।'

'आभार कुमारी जी!' भोजने नमन किया। देव और बालीने भी भोजका अनुकरण किया।

'रहेंगे तो नागदा में ही न?' कुमारी ने पूछा।

'कुछ कहा नहीं जा सकता। उत्तर-पश्चिमका भ्रमण हो गया पर अभी दक्षिण-पूर्व देखना शेष है।'

'कभी राजदरबारमें भी आना होता है?'

'जी नहीं, अभी तो मैं अभ्यासी ही हूँ!'

झूलेमें लगे पुष्पोंकी ओर देखती हुई राजकुमारीने पूछा, 'क्या ये सभी न मुरझाने वाले अद्भुत पुष्प हैं?'

भोजने हिंडोलेसे लटकते हुए एक पुष्पकी ओर उँगलीसे संकेत किया। कुमारीने पुष्प तोड़कर अपने पास रख लिया।

नीचे मैदानमें दूर-दूरसे राजकुमारीको बुलाने की आवाज सुनाई दी।

'बहन! लगता है जैसे हमें सब लोग ढूँढ़ रहे हैं, चलो...' एक सखीने राजकुमारीसे कहा।

भोजपर एक कटाक्ष फेंक राजकुमारीने आगे पैर बढ़ाया। नीचे उतरते समय एक युवतीने राजकुमारीके गलेमें एक ओरसे हाथ डाल दिया और दूसरीने दूसरी ओरसे। राजकुमारीने भी दोनोंके गलेमें हाथ डाल दिया। इस प्रकार तीनों शीघ्रतासे टेकरीसे नीचे उतरने लगीं। तीनों युवतियोंका सामूहिक अट्टहास भोजको सुनाई दिया।

'हमारी बात उनके कानोंमें पड़ी हो तब?' एक सखीका उद्‌गार सुनाई दिया।

'हम इतनी जोरसे बातें कर रही थीं कि यह असंभव है कि उन्होंने न सुना हो।' राजकुमारीका कंठ सुनाई दिया।

'सुना हो, किन्तु समझा न होगा।' दूसरी सखीने कहा।

'समझा भी हो तो उसके प्रभावको नष्ट-भ्रष्ट करनेके लिए ही शायद राजकुमारीने इतनी लंबी चौड़ी बातचीत की, क्यों?'

खिलखिलाहटमें आगेकी बातचीत सुनाई नहीं दी। चन्द्रमाकी चारों ओर फैली हुई चाँदनी में हास्य एवं युवतियाँ एक रूप बन गईं। युवतियोंके समुदायमें मिल वे अदृश्य हो गईं।

❀ ❀ ❀

'चलो एक विपत्तिसे तो छुटकारा पा गये!' बालीने कहा।

'जहाँ देखो वहीं मस्तक धड़से अलग करने की तैयारी! अपने इन शास्त्रोंमें कुछ परिवर्तन कर देनेसे न चलेगा?' देवने पूछा।

'शास्त्रमें इस प्रकार की शिक्षा लिखी हुई कहीं नहीं पढ़ी, सब शास्त्र भी एक समान हैं कहाँ?' देवने पूछा।

'यदि दूसरी शिक्षा हुई होती तब ?' देवने पूछा।

'कौन-सी ?' भोजने पूछा।

'इतनी सावधानी रखने पर भी कोई पुरुष हिंडोले पर बैठ जाय तो उस पर बैठने वाली युवतीको उसके साथ विवाह करना पड़ेगा ! सुना नहीं ?' देवने कहा।

'यही सुनकर तो बाली की हँसी न समाई। बाघ न आया होता तो भी हम पकड़ा गये होते।' भोजने कहा।

'वह राजकुमारी गले पड़ी होती तब ? बापा ! ये राजकुमारियाँ आपको मार्गमें खूब मिल रही हैं !' बाली बोला।

'यह तो सांसारिक खेल है।' भोजने बालीकी बातों पर विशेष महत्त्व नहीं दिया।

'तीनों हमें देख कर कुछ विस्मित अवश्य हुईं...' देवने कहा।

'देवका ध्यान हमेशा छोकरियोंमें रहता है ! एक भील किशोरीने इसे ऐसी धौंस लगाई थी कि...' बालीने कहा।

'यह मत समझ कि मैं तुझे नहीं पहचानता। मुसलमान बननेमें जरा सी कसर रह गई थी, भूल गया क्या ?' देव उत्तेजित हो उठा।

'यह तो हम दोनों ही समान रूपसे बचे, यह क्यों नहीं कहता ! भोजने यदि अलख न पुकारा होता तो हम दोनों ही आज इरानी पहाड़ोंमें कहीं घूमते होते।'

'और देव खाँ या बाली खाँ के नामसे विख्यात...!'

'अल्ला हो अकबर ! साथ ही इतना और भी जोड़ दिया गया होता...' बाली और देव दोनों खिलखिला कर हँस पड़े।

'जरा शांत रहो तो काम न बने ! एक ओर बाघ ताक लगाये बैठा है दूसरी ओर बाघ जैसी चपल युवतियाँ इस ओर दृग्पात किया करती हैं।' भोजने समझाने की चेष्टा की।

शांति सबको प्रिय है यह सच है किंतु दंड अथवा आशाके रूपमें

दी हुई शांति मानवको अशांत बना देती है। चापल्यसे पूर्ण, अनेकानेक विचित्र अनुभवोंका भाण्डार भर कर आये हुए युवकोंको तारा गिनते हुए मूक बैठना असह्य-सा था। बात करनेमें खतरा अवश्य था। पर निद्रा भी नहीं आ रही थी। साथ ही सूर्योदयके पहले वहाँसे हिलना भी नहीं था। बाघ भाग चुका था, किंतु पुनः न आनेका उसने वचन तो दिया नहीं था। तिनका तोड़ते हुए, नक्षत्र एवं राशियोंके तारिकाओंको गिनते हुए दूर-दूर पहाड़ोंको धवलागिरिके समान प्रकाशित करने वाली चाँदनीकी तेजोपूर्ण छायाको देखते हुए एक झाड़ीसे निकलकर दूसरी झाड़ीमें अदृश्य होनेवाले खरगोशकी तेजीका अंदाज लगाते; या किसी सियारका रुदन-हास्य सुनते हुए, उल्लू या कौशिकके उड्डयनका वेग मापते हुए वे समय काटने लगे।

वे तंद्रामें कोई सुंदर स्वप्न देखने जा ही रहे थे कि उन्हें रोकने वाली स्त्री-सैनिकने पुनः दर्शन दिया। चंद्रका प्रकाश व्यापक था परंतु इस समय वह थोड़ा पर्वत श्रेणीके पीछे छिप गया था। स्वप्न है या सत्य, इसका निश्चय करनेमें लीन तीनों मित्रोंसे उसने कहा, 'राजकुमारीजी की आज्ञा है कि अब आप लोग नागद्रह जा सकते हैं।'

'राजकुमारी जी कौन !' देवने झपकी लेते हुए पूछा।

'क्यों ? मीनाक्षी देवी ! रात्रिके पहली प्रहरमें यहां आई थीं, वही !'

'बड़ा उपकार हुआ आपका एवं मीनाक्षी देवीका !' भोजने कहा।

'आपपर विशेष कृपा जान पड़ती है; अन्यथा आप इस प्रकार जीवित शायद ही जा पाते।' स्त्री-सैनिकने कहा।

'पहले तो आपने हमें जीवनदान दिया...फिर दूसरी बार कुमारीजी ने...!'

'यह हिंडोला किसने बांधा ? कुमारीजी की सखियोंने ?' वृक्षसे थोड़ा हिलते हुए झूले पर दृष्टि पड़ते ही चौंक कर स्त्री-सैनिकने पूछा।

'मैंने, क्यों ?' भोजने कुछ चकित हो पूछा।

'किसलिए आपने बाँधा ?'

'अवकाशका सदुपयोग किया, रात भर बैठा-बैठा करता ही क्या ?' भोजने कहा।

'कुमारीजी के आनेके पूर्व बाँधा या बाद में ?'

'क्या मतलब है; आप राजकुमारीपर जासूसी करती हैं या उनकी निगरानी ?'

'इसका उत्तर देनेके लिए मैं बाध्य नहीं ! मैं तो केवल यह कहनेके लिए आई हूँ कि आप अब जा सकते हैं।' स्त्री-सैनिक बोली।

'आपने 'आप' शब्द पर बहुत जोर दिया ! फिर भी हम आपके आभारी हैं !' भोजने हँसते हुए कटाक्ष किया।

'मैं केवल इतना और जानना चाहूँगी कि राजकुमारीजीको आपने अपने झूलेपर बैठाया तो अवश्य ही होगा ?'

'जी हाँ, वे स्वयं ही उस पर बैठ गईं, हमें कहना नहीं पड़ा।' देवने कहा।

भोजने तरेर कर देवकी ओर देखा।

'ऐ...सा...!' बहादुर दिखाई पड़ती हुई स्त्री-सैनिकने जरा नजाकतसे मुस्कराकर कहा।

'आपकी इच्छा हो तो आप भी झूल सकती हैं।' बालीने कहा।

'यह कहकर आप मेरा अपमान कर रहे हैं ! इसका रहस्य भी जानते हैं आप ?' स्त्री सैनिक कुछ क्रुद्ध-सी हो उठी।

'जी नहीं, कभी नहीं।' आपका अपमान करने की हमारी इच्छा न तो कभी थी और न हो ही सकती है।' कहते हुए भोज हाथ जोड़ स्त्री-सैनिकके सामने खड़ा हो गया।

लौटती हुई स्त्री-सैनिकको नजाकतके साथ कहते हुए सुना, 'अब समझ में आया कि जाने की आज्ञा क्यों दी गई...हूँ !'

स्त्री-सैनिकके सामने देव और बाली किसी प्रकार अपनी हँसी रोके हुए थे। उसके पीठ फेरते ही दोनों खिलखिला कर हँस पड़े।

'देव! अंतःपुरकी इस स्त्री-सैनिकको देखा तुमने? कैसे-कैसे शस्त्र सजा रखे हैं!' बालीने कहा।

'स्त्रियोंके लिए पुरुषोंको लड़ते हुए सुना है किंतु पुरुषके लिए स्त्रियाँ लड़ें, तब?' देवने पूछा।

'राजकुमारीपर इसे शक हो गया है शायद!' भोजने कहा।

'समझ रही है कि हम तीनोंका आगमन भी राजकुमारीकी ही कोई चाल है।' देव बोला।

'यह हिंडोला ही इन सब झगड़ोंका मूल जान पड़ता है। इसे अपने साथ ही ले चलना चाहिये।' भोजने कहा।

'इसे आपके पीपलपर बांध देंगे।' कहकर देव और बालीने हिंडोलेको उतारकर नागद्रहकी ओर प्रस्थान किया।

८

सूर्य पश्चिममें डूबनेकी तैयारी कर रहा था। गोधूलि नागद्रहकी सीमाको धुँधली बना रही थी। तीनों युवक हाँफते हुए द्वारमें प्रवेश कर रहे थे कि भोजको पहचान उसके किसी मित्रने पुकारा, 'आ गये?'

'हाँ भाई! आ गया; सब लोग अच्छी तरहसे तो हैं?' कहकर भोज आगे बढ़ा।

'जरा खड़े तो रहो! इस प्रकार क्यों भागे जा रहे हो?'

'आज नहीं, कल खड़ा होऊँगा।'

'क्यों?'

'मा से सूर्यास्तके पूर्व मिलना है।' कहकर भोज दौड़ पड़ा और इस प्रकार बातमें गया हुआ समय उसने पूरा कर लिया।

मा को दिये हुए वचनका ठीक-ठीक पालन होना ही चाहिये, इस निश्चयसे पर्यटनका भी नियंत्रण करता हुआ भोज यदि रात्रिमें रोक न लिया गया होता तो प्रभातमें ही माताके पास पहुँच गया होता। प्रभात में न पहुँचनेका भोजको अत्यंत दुःख था। चाहे जैसे भी हो सूर्यास्तके पहले माका दर्शन करनेका उसने निश्चय किया था। ज्यों-ज्यों नगर, ब्रह्मपुरी आदि पास आती गई और घर दिखाई पड़ने लगा त्यों-त्यों उसके हृदयकी धड़कन और कदमकी तेजी बढ़ती गई। उसे माताका द्वारपर अथवा आँगनमें दर्शन करनेकी आशा थी। परन्तु आँगनमें अकेली मा ही नहीं बल्कि तीन-चार स्त्रियाँ एवं तीन-चार पुरुष बैठे थे। बिछौनेपर कोई सोया था।

'मा!'

भोजके चपल नेत्र माताको देखनेके लिए छटपटा रहे थे। उसने माताको बिछौनेपर लेटे हुए देखा। भोजकी जीभपर 'मा' का उच्चारण रु -सा गया। किसीकी ओर दृष्टि न डाल भोज सीधा मा के पास दौड़ गया और उसने माताके पैरपर सिर रख दिया।

श्रीलेखाने सर्व प्रथम तो पुत्रके सिरपर लेटे ही लेटे हाथ फेरा। फिर तो उसकी आँखोंसे सावन-भादोंकी झड़ी लग गई। उसके मुखसे एक अक्षर भी न निकला। भोजके नेत्र भी डबडबा आये। उसके हाथ माताके पैरको पकड़े हुए थे। उसका हृदय और नेत्र भी माताको छोड़ किसीको देख नहीं रहे थे। वहाँ बैठे हुए लोगोंकी भी आँखें डबडबा आईं। थोड़ा समय इसी प्रकार बीत गया तब एक स्त्रीने कहा, देखा न! व्यर्थ ही चिंता में देहको सुखा डाला। लड़का वादेके अनुसार आ पहुँचा कि नहीं?'

'सवेरेसे ही श्रीलेखा भोजकी माला जप रही है; अच्छा हुआ यह आ गया।' दूसरी स्त्रीने कहा।

'भोज, बेटा मुझे उठाकर बैठा !' श्रीलेखा बोली।

भोजने उसे दीवालके पास रखी हुई तकियाके सहारे बैठा दिया। भोजने मा को बैठा तो दिया परन्तु उसका देह और मुख देख वह भौंचक्का-हो गया।

'मा ! आपका चेहरा इतना उदास ? शरीरको इतना गला डाला !' अत्यन्त शुष्क माताकी देह और मुखको देख भोज बोल उठा।

'तुम इस समय न आये होते तो अपनी मा को जीवित न देखते।' किसी स्त्रीने कहा।

'मा ! जिस दिन मैं यह सुन पाऊँगा कि तू जीवित नहीं है उस दिन मैं भी जीवित नहीं रहूँगा।' माके गलेसे पुनः लिपट कर भोज बोला।

'तेरे ही लिए, तुझे देखनेके लिए ही, मैं प्राण धारण किये रही बेटा ! देख, मुनिका चरण स्पर्श कर ! गुरुको नमस्कार और अपने जादव नायकको हाथ जोड़।' श्रीलेखाने कहा।

अकेली माको देखनेमें लीन, महत्त्वके गुरुजनोंके प्रति विवेकको भूले हुए पुत्रको माने विवेक याद कराया। उसे हारित मुनि एवं त्र्यंबक भट्ट जैसे पूज्य गुरुको इस छोटी-सी झोपड़ीमें देख आश्चर्य हुआ। जादव नायकके नामको उसने सुना अवश्य था किन्तु उसे कभी देखनेका स्मरण नहीं आ रहा था। तीनों युवकोंके एवं माताके पास बैठे हुए सब स्त्री-पुरुषोंको उसने नमन किया। देव-बाली भी साथमें ही थे। उन्होंने भी सबको नमस्कार किया। भोजके साथ ही उसके दोनों मित्रोंको श्रीलेखाने अपने पास बैठाकर उनके मस्तकपर हाथ फेरा। बाली और देव नायक की ओर क्यों देख रहे थे ?

'मुनि ! आप कहाँ से ?' भोजने पूछा।

'तू आया या नहीं, यह देखनेके लिए। फिर तो यहाँ आने पर तेरे माताको इस स्थितिमें देखा ?'

त्र्यंबक भट्ट भी पास ही रहनेसे, श्रीलेखाके अचानक बीमार हो जाने के कारण आये थे।

पड़ोसमें रहने वाली स्त्रियां श्रीलेखाकी देखभालके लिए प्रायः नित्य ही आया करती थीं। लेखा पुत्रवियोगसे सचमुच पर्याप्त क्षुधित हो गई थीं। कभी-कभी भोजका कुछ समाचार आ जाया करता था किन्तु ये समाचार भोजके साहस और पौरुषपूर्ण कार्यके होते जिससे ज्यों-ज्यों लौटनेका दिन निकट पहुँचता गया त्यों-त्यों श्रीलेखाकी अधीरता भी बढ़ती गई। एक सप्ताह शेष रह गया, तभी श्रीलेखा बिलकुल ही बेदम हो बिछौनेपर पड़ गई। भोजके प्रति उसके उत्कट स्नेहका विचार कर प्राप्त अथवा अप्राप्त—प्रकट होने वाली ऊर्मि-उद्रेकका प्रभाव घटानेके लिए हारित मुनि आज पधारे थे। भोजके गुरु त्र्यंबक भट्ट तो श्रीलेखाकी तबियतका हाल पूछने और भोजका कुछ समाचार आया तो उसे जाननेके लिए नित्य आ जाया करते थे। प्रातः कालसे ही श्रीलेखा पुत्रकी राह देखने लगी। अपनी चटाई पर्णकुटीके बाहर आँगनके चबूतरे पर बिछाकर श्रीलेखा लेट गई। भोज आयेगा...नहीं आयेगा...कब आयेगा...किस समय आयेगा, ऐसे-ऐसे विचारोंसे पीड़ित श्रीलेखाका मानसिक कष्ट दिनके साथही बढ़ने लगा। यदि हारित मुनि द्वारा दिये जानेव ले आश्वासनपर विश्वास न होता तो श्रीलेखा संध्या होते-होते मूर्च्छित हो गई होती। हारित मुनि एवं त्र्यंबक भट्टने जो कल्पना की थी कि हिंडोलोत्सवके कारण मार्गमें उन्हें रुक जाना पड़ा होगा जिससे वह प्रातः काल नहीं आ सका, यह सच निकला। चक्कर लगा कर आनेसे दूसरे दिन और वहीं रुक कर यदि आया तो उसी दिन संध्या समय तक भोज अवश्यमेव पहुँच जायगा, हारित मुनिके इस दृढ़ आश्वासनसे श्रीलेखा अभी तक आशासे जीवित थी। वह तो भोजको अपने पास देखना चाहती थी न कि थोथा आश्वासन या उसके न आनेके कारणका श्रवण। तथापि ऐसे ऊर्मि-मंथनके समय स्नेहीजनोंकी उपस्थिति उपयोगी अवश्य ही सिद्ध होती है।

न जाने क्यों—भोजको देखनेके बादसे ही श्रीलेखाके शरीरमें लोप होने वाला जीवन पुनः उभड़ता-सा जान पड़ने लगा। वह हाथ पैर चलाने लगी। इतना ही नहीं, आये हुए अतिथियोंका सत्कार करनेमें भी जुट गई।

भोजके मित्रोंने संध्या समय ही पीपलसे झूला लटका दिया और उसपर खुलेमें आरामसे सो गये। यात्रामें कभी महलमें और कभी घोर जंगलकी पथरीली भूमिपर अथवा वर्फीले पहाड़पर उन्हें विश्राम करना पड़ता था परन्तु आज जैसी स्वस्थ निद्रा उन्हें कभी न आई थी। निद्रा न आई मुनि हारितको, जादव नायकको और श्रीलेखाको। भोजने पर्यटन कालमें घटी हुई अनेकानेक घटनाएँ माता और गुरुजनोंको कह सुनाई थी। किन्तु एक बात उसने छिपा रखी। अपनी बाँसुरीसे आकृष्ट गायोंके झुण्डमेंसे ढूँढ़कर कामधेनु जातिकी गायोंको जहाँ कहीं वह जाता वहींसे प्राप्तकर खाखीओंके आश्रमोंमें भेजता रहता था। सिंधुसे लेकर फारस तक भिन्न-भिन्न स्थानोंमें फैला हुआ यह गोधन अत्यन्त बहुमूल्य था। खाखीओंके अनेक प्रयोगोंमें कामधेनु ही उपयोगमें आती थी। किसीको प्रसन्न कर किसीको धमका कर किसीसे खरीद कर तो किसीसे लड़ कर जहाँ-कहीं भी उसने कामधेनु देखी वहाँसे उसे प्राप्त कर समीपवर्ती खाखीके अखाड़ेमें भेजता गया।

इसमें उसने जानकी बाजी लगा दी थी। इसका पता खाखीओंको था। आर्यावर्तमें खाखीओंको छोड़ अन्य किसीको कामधेनुकी सच्ची कीमत ज्ञात न थी। इस गायका दूध औषधि प्रयोगोंमें आदर्श समझा जाता था। कठिनतम व असाध्य रोगोंपर प्रयोग करनेके लिये खाखीओंके प्रत्येक आश्रममें प्रयोगशालाएँ स्थापित हो चुकी थीं। पर इस बातकी जानकारी बहुत कम लोगोंको थी।

इन तीनों न सोनेवाले व्यक्तियोंमें होनेवाली बात-चीतका विषय था भोजका राजयोग। पर इसका पता भोजको भी न था।

'श्रीलेखा ! अपनी प्रतिज्ञा विस्मृत न हो जाय' हारित ने कहा।

'कौन सी ?' श्रीलेखाने पूछा।

'भोजको राजगद्दी दिलाने की।'

'मैं कब नहीं चाहती ? जितना कहते हैं उससे अधिक ही करती हूँ।'

'यदि तुम अपना मा-पन थोड़ा कम करो तो उस योजनाको सफल बनाने में अधिक सफलता हो।'

'पतिदेव तो दूर चले ही गये अब पुत्रको भी ढकेल दूँ क्यों ?'

श्रीलेखाने थोड़ी कठोरता से कहा।

'पति और पुत्र दोनोंसे महान कर्त्तव्य आ पड़ने पर दोनोंको ही दूरकर देना पड़ता है !'

'ऐसा कौन-सा कर्त्तव्य आ पड़ा है ?'

'देखो, श्रीलेखा ! इस जादव नायकने एक समस्या ला रखी है। इडरकी गद्दी हम चाहें तो आज भोजको मिल सकती है।'

'मैं इसका विरोध करूँगी क्या ?'

'यह बात नहीं है। किन्तु इडरका राजा बननेसे भी महत्तर काम भोज को करना है।'

'अपना पुत्र कहिए, शिष्य कहिए, जो कुछ कहिए वह आपका ही तो है ?'

'माना मैंने ! पर इस समय तुम दोनों, माँ और पुत्र, की आत्मा एक हो रही है। एककी अनुपस्थितिमें दूसरेका जीवित रहना असंभव-सा लगता है। ऐसी अवस्थामें तुम अपना स्नेह-बंधन कुछ ढीला करो तो काम बने। भोज महाभारतका दृश्य उत्पन्न करनेकी क्षमता रखता है !'

'मैंने आपको मुक्त कर दिया अब उसके स्नेहसे भी वंचित हो जाऊँ ? ठीक है, पर मुझसे अलग होकर वह करेगा क्या—?'

'आर्यावर्त का चक्रवर्ती बनेगा······तभी आर्यत्व जीवित रहेगा ?'

'नहीं तो ?'

'नागद्रहका एक विद्वान् पंडित बना रहेगा......अथवा इडर प्रांतके छोटेसे राजपर राज्य करेगा......अधिक से अधिक। लेकिन तब आर्यावर्त्त तहस-नहस हो जायगा !'

'मैं क्या करूँ......और क्या न करूँ......जिससे आपकी योजनाके अनुसार यह चक्रवर्ती बन सके ?'

'इसके लिए तुम्हें भोजको उत्तेजित करना होगा।'

'अर्थात् ?'

'देखो, श्रीलेखा ! अपने मातृत्वकी कोमलता हृदयको वज्र बना कर दबा दो। कल ही अस्त्र-शस्त्रसे सज्जित कर जहाँ मैं कहूँ उसे भेज दो।'

'एक दिन भी मेरे पास न रह पायेगा ?'

'एक व्यक्तिकी अपेक्षा हमारी संस्कृतिका अधिकार उसपर कहीं अधिक है। "मा...मा !" कहने वाले मावडियोंसे उठाकर तुझे इसे सूर्यके समान तेजस्वीवीर बनाना है। इसके लिए तुझे न तो बीमार पड़ना होगा और न मरनेकी ही अनुमति मिलेगी।'

'यह तो घोर अन्याय है।' श्रीलेखा हँस कर बोली। पुत्रके लिए जो कुछ करना पड़े सो करने के लिए वह तैयार थी। भोज छोटा-सा मानव बना रह कर उसकी नजरके सामने रहता तो भी श्री लेखाको संतोष होता। संपूर्ण कुटुम्बके लिए भोज एक भव्य अमानतके रूपमें है—यह उसे याद आ गया। इससे मनमें कुछ बुरा मान उसने कहा, 'भोज मेरा पुत्र होता तो दूसरी बात थी। वह तो अमानत है। इसीलिए मुझसे उसकी सच्ची मा नहीं बना जाता। अच्छी बात है यह कल ही जाय......'

'ऐसा नहीं है, श्रीलेखा ! यह तुम्हारा ही पुत्र होता तो भी आजका अर्यावर्त्त उसे माँग रहा है यह भूलने से काम कैसे चलता ?' जादव नायकने कहा।

'अपने दोनों पुत्रोंको इसी उद्देश्यसे ही तो जादवने भोजके साथ रख छोड़ा है...हम नागद्रह आये तभी से...' हारितने कहा।

यह सुनकर श्रीलेखा चौंक उठी। उसे पता न था कि देव और बाली ये दोनों जादव नायकके पुत्र हैं तथा इसी कारण इडरकी जागीर छोड़ नागद्रहके पहाड़ी भीलावासमें आकर रह रहे हैं! उसके हृदयमें यह विचार भी स्पष्ट रूपसे अंकित हो गया कि उसके पति पराशरका संन्यस्त एवं खाखीपन कोई साधारण योग न था। रूपगर्विता, प्रेमसे ओतप्रोत सुन्दरी का त्याग कोई मामूली बात नहीं कही जा सकती।

'भोजकी बाल्यावस्थासे ही उसके लिए—अथवा यों कहो कि आर्यत्वकी रक्षाके लिए ही—मैंने खाखीओंका एवं खाखीओंके मठ-मंडलका एक-व्यापक आयोजन रच रखा है।' हारितने कहा।

'अब मुझे मातृरूपसे उसे अपने पाससे विलग कर देना रह गया है। बस कि और कुछ?' श्री लेखाने पूछा।

'इतना ही नहीं, तू अपने पुत्रको केवल विलग नहीं कर रही है, राजकुमार संबधी दिये हुए वचनका पालन करनेके लिए एक राजपुत्रको गद्दी पर बैठनेके लिये नहीं भेज रही है बल्कि आर्य-संस्कृतिके एक दीपक को अंधकार दूर करने वाली आरतीके समान व्यवहृतकर अपने हाथको फैला रही है।'

'ये शब्द मुझे प्रिय लगे! पहले भी आपकी वाणी मुझे अच्छी लगती थी। आज भी आपकी वाणी मुझे अति प्रिय लगती है!'

'श्रीलेखा! यह केवल वाणी-विलास नहीं है। इडरकी गद्दी भोज को दिलाना सहज था और है, आज भी। एक विद्वान्, माता-पिताकी आँखें ठंढी करनेवाले पुत्रका सृजन करना होता तो अब कुछ बाकी नहीं रह गया है। यहाँ रहकर भी उसकी कीर्ति-पताका चारो ओर फहरा सकती है, फहरने लगी है, तुझे संतोष देने योग्य! परन्तु मेरी दृष्टि यहीं तक सीमित नहीं है।'

'तब आपकी दृष्टि कितनी दूर जा रही है?'

'मेरी दृष्टि बहुत दूर जा रही है। आर्यावर्त्तपर ही नहीं समस्त पृथ्वी पर वह घूम रही है।'

'किन्तु इसमें भोजको कहाँ घुमाना है?'

'भोजके पिता पर मेरी रक्खी हुई श्रद्धा सफल नहीं हुई। भाग्यसे या ईश्वरकी कृपासे मेरे मित्र महेन्द्रके पुत्रकी संपूर्ण रक्षाका भार मेरे उपर आ पड़ा। इस संरक्षणमें हम दोनोंने इसके माता-पिताका स्थान लिया। जादव नायक भी इसके रक्षक व शुभचिंतक बने। इस रक्षकने क्या-क्या आपदाएँ सिर पर उठाईं, यह कदाचित् नायकको छोड़ दूसरा नहीं जान सकता। मुझे भोजमें एक छोटे राजाकी कार्य-कुशलता या महामहोपाध्याय का पांडित्य सृजन नहीं करना था। मुझे तो उसमें एक आर्य-आदित्यका सृजन करना था जो राजपद स्वीकार कर सके और उसे ठुकरा भी सके! जिसकी वाणीमें बृहस्पति वास करे और जिसके हाथमें स्वयं इन्द्रका वास हो! जिसे प्रवृत्ति या निवृत्तिमें लोलुपता या स्वार्थ न हो! जिसकी भावना अथसे इति तक कल्याणमयी हो! जिसका चन्द्र तीन चार सौ योजन नहीं बल्कि संपूर्ण भूमंडलको प्रकाशित करने वाला हो! मैंने और मुझसे भी बढ़कर तुमने भोजको इसी ढंग पर गढ़ा है। अब इसके चन्द्रके विस्तार के निमित्त इसे मुक्त कर दो...प्रभुका नाम लेकर! समय आ गया है!' हारितने एक भावावेशपूर्ण व्याख्यान दिया।

इसके पश्चात् शीलेखाने केवल एक ही प्रश्न किया 'मेरा पुत्र इस उथल-पुथलमें कहीं अन्तर्हित हो गया तो?'

'जिस दिन तेरा पुत्र न रहेगा उसी दिन मैं अग्निमें प्रवेश करूँगा?'

असफलताका अंतिम प्रयत्न—जीवनका अंतिम साफल्य क्या? अग्नि-प्रवेश। स्त्रियोंके लिए भी और पुरुषोंके लिए भी। जीवित देहको अग्निमें प्रविष्ट कर जलाकर भस्म कर देनेवाली आर्याएं एवं आर्य इस समय भी जीवित थे।

श्रीलेखा इसके पश्चात् कुछ बोली नहीं। इतना ही नहीं प्रभात होते ही वह भोजके खाटके चारों ओर चक्कर काटने लगी। अधिक देर तक सोते हुए भोजको उसने जगा कर कहा भी 'बेटा प्रातः हुए काफी समय हो गया। अब उठो, तुम्हें आजकल में ही चित्रकूट जाना है।'

'मुझे? मा! अभी तो घूम कर आया हूँ! कुछ दिन तो अपने पास रहने दो!' भोजने भरे हुए स्वरमें प्रार्थना की।

इतना कहने पर भला ऐसी कौन माता होगी जो अपने पुत्रको जानेका आग्रह करेगी। श्रीलेखाका हृदय हिल गया तथापि अपने काँपते हुए कंठमें दृढ़ता लाकर वह बोली 'मुनिकी आज्ञा है!'

'आपकी क्या आज्ञा है?'

'तू तो जानता है...मुनिकी इच्छा ही मेरी आज्ञा है।'

'मुनि कहाँ हैं? ...सोये होंगे?'

'वे तो आश्रममें पधार गये। वे निद्राजित हैं। गुड़ाकेश हैं। उनको निद्रा आती ही नहीं।'

'चित्रकूट जाकर मुझे क्या करना होगा?'

'वहाँ कोई समारंभ है?'

'अरे हाँ, यह तो प्रति वर्ष होता है, दो एक बार मैंने देखा भी है। स्पर्द्धामें मैं भाग लूँ तो पीछे नहीं रह सकता मा! किंतु...

'इस बार कोई विशेष बात है, मुनि तुम्हें बतायेंगे।'

'उसी मार्गसे मुझे जाना है?'

'हाँ, एकलिंगजीका दर्शन करते हुए जानेके लिए कहा है।'

'किन्तु आप पुनः बीमार पड़ जायँगी। ऐसा आपका शरीर हो जायगा यह स्वप्नमें भी सोचा होता तो नागदाके बाहर पैर निकालने का विचार भी न करता। यदि आप कहें तो अभी भी न जाऊँ।'

'यह तो योंही ऐसा हो गया! गत दिवस तेरी प्रतीक्षा कर रही थी और तेरे न आने से ऐसा हो गया। चित्रकूट कुछ अधिक दूर नहीं है।

नागदासे अनेक ब्राह्मण जा रहे हैं ···· और नागदाके राजा भी वहाँ जानेवाले हैं ···सकुटुम्ब । इससे···'

'मा ! मुझे एक वचन दें तभी मैं आपकी और मुनिकी आज्ञा पालन कर सकता हूँ ।'

'सब कुछ तो मैं तुझे अर्पण कर चुकी हूँ । तेरे ही लिए मैं जीवन धारण किये हूँ । तब वचन देने न देने का प्रश्न ही कहाँ रहा ?'

'यह सब मैं कुछ नहीं जानता । मुझे तो आपका वचन चाहिये ।'

'बोल, क्या वचन दूँ ?'

'जब तक मैं न चाहूँ आपको बीमार न पड़ना होगा और...'

'यह क्या मेरे वश की बात है, मूर्ख ! बीमारी और मृत्युपर किसी का अंकुश कभी रहा है ?'

'तब मुझे नहीं जाना है ।'

'कैसा लड़का है ? बिलकुल ही मावडिया ! तुझसे कुछ होना-जाना नहीं है...' खिलखिला कर हँसती हुई श्रीलेखाने कहा ।

'आपके हँसी उड़ाने या मावडिया कहने से मैं डिगने वाला नहीं हूँ ।'

'पागलपन मत कर ।'

'आप इतना वचन दें तो ! सारी दुनिया उठाकर आपके चरणों पर धर दूँ ।'

'पहले दुनिया में जा तो सही ? मेरे नन्हें से पैर...मुझे दुनिया लेकर क्या करना है ?'

पुत्रके आग्रहके आगे सिर नवाकर असंभव प्रतीत होने वाला वचन अन्तमें माको देना ही पड़ा- 'तुझसे कहे बिना, तुझे खबर दिये बिना, मैं बीमार नहीं पड़ूँगी ।'

'इतना और कि मृत्युका आलिंगन भी नहीं करेंगी ।' भोजने आगे कहा, जो विशेष महत्व पूर्ण था ।

'अच्छा, मरूँगी भी नहीं तू न कहेगा तो...किन्तु इसका पालन मैं

करूँगी कैसे ?' हँसते-हँसते माता ने कहा।

'यह मैं नहीं जानता...।'

खेल में, हँसते-हँसते, पुत्रको खुश रखनेके लिए और हारित मुनिकी आज्ञा-पालनके हेतु श्रीलेखाने असंभव-सा प्रतीत होता हुआ वचन दे भोजको उसी रात्रिमें रवाना कर दिया। देव और वाली तो अब उसकी परछाईंके समान हो रहे थे। उन्हें छोड़ अकेले जाना भोजके लिए अब संभव न था।

आश्रममें पहुँचते ही हारित मुनि भोजको स्नान कराकर महादेवके दर्शनार्थ लिवा ले गये और वहीं भोजको उन्होंने एक तलवार दी।

'आपने ही तो हथियार पासमें रखनेकी मनाही की थी, मुनि !' भोजने तलवार हाथमें लेते हुए कहा।

'वत्स ! जिसे हथियार की आवश्यकता नहीं वही उसकी रक्षा कर सकता है। वर्षों का शस्त्रज्ञान इसमें भरा हुआ है।'

'इसका उपयोग, गुरुजी ?'

'जब तू सचमुच उलझनमें पड़ जाय और तेरी समझमें कुछ न आये तभी इसका उपयोग करना—चाहे जहाँ। अधिक आवश्यकता न पड़ेगी।

'चित्तौड़ जाकर क्या करना होगा ?'

'वहाँ जाने पर तुझे मालूम हो जायगा कि क्या करना है। आज मैंने तुझे शस्त्र बाँधा है; इसका अर्थ समझता है ? यह कि अब तू सबसे-गुरुसे भी-स्वतंत्र हो गया। जो योग्य समझना करना। तेरे पास अब एक शस्त्र है इसे वस्त्रसे ढँककर रखना। मेरा आशीर्वाद है। अब आज्ञा लेने की आवश्यकता नहीं।' हारितने कहा।

'मैं तो अभीसे निराधारताका अनुभव कर रहा हूँ...'

'मा का सतत आशीर्वाद है, गुरुकी दीक्षा है, शंकरकी कृपा है, कामधेनुका वरदान है, इससे बढ़कर आधार अब किसका चाहिए ?'

'जो मुझे प्राप्त हुआ है वह मैं सबको दूँगा...।'

'भोज! तेरा भविष्य भव्य है यह मेरा विश्वास तेरे इस वाक्यसे अत्यधिक पुष्ट होता है।'

'अभी मुझे गुरुदक्षिणा देना बाकी है।'

'शिष्यकी उन्नति ही गुरुकी दक्षिणा है। जब तुझे जान पड़े कि मुझे देने लायक कुछ मिला तब मुझसे मिलना।'

'जो कुछ मिलेगा वह आपको अर्पण करने योग्य ही होगा।' कहकर भोजने हारित मुनिको नमस्कार कर अपने मित्रोंके साथ चित्रकूट-चित्तौर गढ़-की ओर प्रस्थान किया। चित्तौरकी बातें करने वाले कुछ मुसाफिर उसे रास्तेमें मिले। उनसे भोजको पता चला कि चित्तौरके राजा मान-सिंह-मौर्यके यहाँ होने वाला वार्षिक समारम्भ इसबार अत्यन्त महत्त्वका हो रहा था। इसबार शस्त्र-संचालन प्रतियोगिता स्थानिक मात्र नहीं बल्कि राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्पर्द्धा बन रही थी। विद्वद्सभा केवल राज्यकर्त्ताकी प्रशस्ति कविता-पाठ करने वालोंका सम्मेलन न होकर कठिन शास्त्रचर्चा एवं बुद्धि-की कसौटी बनने वाली थी। गुरुने बिना निमंत्रण उसे यहाँ क्या भेजा, यह पहले उसकी समझमें नहीं आया। बादमें वह समझ गया कि अब स्वबुद्धि और स्वशक्तिका उपयोग कर जीवन-निर्वाहका समय आ गया है। और यह जीवन कैसा?

अपना जीवन तो किसी प्रकार भी व्यतीत किया जा सकता है। विद्वान ब्राह्मण किसी भी नगर अथवा ब्रह्मपुरीमें जाकर बस सकता है। सैनिक रूपमें उसे किसी भी जागीरदारी अथवा राज्यमें स्थान प्राप्त हो सकता है। किसी धनी श्रेष्ठीको ढूंढ़ कर उसके साथ लंका, जावा, सुमात्रा या बसरा-बगदादकी सैर कर अथाह धन भी पैदा किया जा सकता है। परन्तु क्या उसका जीवन केवल सुखमय समय व्यतीत करनेके लिए ही था?

ब्राह्मणों और बौद्धोंकी विद्वत्ता अब दीर्घसूत्री चर्चा एवं वादविवाद मात्र बन गई थी। उसमेंसे कोई भी शुभ-परिणाम निकलनेके स्थान पर वितर्क ही बढ़ता जा रहा था। एकता बढ़नेके स्थान पर दीवारें खड़ी

हो रही थीं। और सुखपूर्ण सरलताके स्थानपर गला-घोंटने वाली आचारोंकी जड़ता समाजको जकड़े जा रही थी। बौद्धोंसे ब्राह्मण बननेके बजाय ब्राह्मणोंसे मुस्लिम बननेवाले विद्वानोंको सिंधु-पाञ्चालमें उसने देखा था। यह प्रचार-झंझावात सिंधुके इस पार भी फैल जाय तब?

यह ठीक है कि जिसे इस्लाममें सत्य दिखाई पड़ता हो वह भले ही इस्लाम स्वीकार कर ले! सच्ची आर्यसंस्कृतिको इस्लामके साथ कोई वैर नहीं हो सकता। परन्तु इस्लामके इस प्रचारको तलवारका सहारा मिले, धर्म-संस्कृति द्वारा अपनाई हुई मूर्तियोंको तोड़नेमें इस्लामको आनन्द प्राप्त हो और धर्मके साथ ही इस्लामी राजसत्ता भी बढ़ती चली आये; इसमें आर्य-वीरत्वकी शोभा कितनी? 'मुसलमान बनो, नहीं तो नगर का नगर कत्ल कर दिया जायगा!' 'इस्लाम स्वीकार करो नहीं तो समस्त प्रान्तकी प्रजाको काफिर कह उनसे जजिया कर वसूल किया जायगा!' ऐसी धमकियोंसे इस्लाम आगे बढ़ता जाय और आर्य-संस्कृति अपनी रक्षा के लिए कोना-कोना ढूँढ़ती फिरे, इसकी लज्जा किसे? शस्त्र-धारण करने वाले क्षत्रियोंको या शस्त्र शिक्षण देने वाले ब्राह्मणों को? सिन्धु प्रदेशके राजा दाहिरके कुटुम्बकी दुर्दशा न राजाओंको जाग्रत कर रही थी, न ब्राह्मणोंको। वह श्रेष्ठियोंके लाभपर प्रभाव नहीं डाल रही थी और न शूद्रोंको ही सावधान कर रही थी। उलटे शूद्र बड़ी प्रसन्नतासे इस्लामकी एकताको स्वीकार कर रहे थे। और इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं थी।

हारितमुनिने खाखीयोंके आश्रम स्थान-स्थानपर स्थापित किये थे। परन्तु खाखीओंका परम कठोर तप कितने आर्योंको आकृष्ट कर सका था? भोजने स्वयं यह कठोर तपस्याका जीवन व्यतीत किया था और अभी भी वैसा ही जीवन-यापन करनेका उसका निश्चय था। खाखी सैनिक बन सकता था, शास्त्री बन सकता था एवं अवरुद्ध आचार-विचारकी दीवारोंको तोड़, छूआछूतसे परे बन, धर्म-परिवर्तनको हँसीमें उड़ा भी सकता था। मुसलमान द्वारा अर्पित अमृत और विष पान कर आर्यता

को सुरक्षित रख सकता था। उसे विष पचाना आता था और नाग-पाश तोड़ना भी। इसे न राजलोभ था न सत्तालोभ, न कंचनलोभ और न कामिनीलोभ। आर्यावर्त्तकी पश्चिमी सीमाकी रक्षा अभी भी खाखी कर रहे थे! इस खाखीपनका चारो ओर प्रसार हो, यह आशा गुरुजीके मनमें भोजको देखकर क्या बलवती न होती होगी?

चित्रकूटके तरफ होनेवाले अरब, तुर्क, इरानी एवं सिंधी मुसलमानों के आवागमन पर भी भोजकी दृष्टि गई। इन शूरवीर साहसिकोंके प्रति उसके मनमें आदरकी भावना उत्पन्न होती। साथ ही उसके मनमें यह विचार भी चक्कर काटता रहता था कि जिस प्रकार यह प्रजा आर्यावर्त्त में बराबर आ रही थी वैसे ही आर्य-प्रजामें से अधिकाधिक लोग इनके प्रदेशमें क्यों नहीं जाते? जो जाते भी हैं, वे मुसलमान बन कर क्यों वापस आते हैं? बल्कि आचार-प्रिय द्विज नदी-नाले एवं समुद्र-उल्लंघन का प्रतिबंध लगाकर न स्वयं बाहर जाते थे न किसीको जाने देते थे!

इस आचार-जड़ताकी वज्र दीवारोंको तोड़नेके लिए ही आचारसे परे बने हुए खाखी साधुओंकी श्रेणी हारित मुनिने खड़ीकी थी। यह भोज को स्पष्ट दीख पड़ा। तब खाखीओंके एक समुदायको साथ ले रूम, शाम, अरबस्थानमें वह स्वयं क्यों न जा धमके?

'बापा! वाणी क्यों स्थिर हो गई है?' देवने पूछा

'हमने जो कुछ देखा-सुना उसमें बोलने योग्य है ही क्या? भोजने उत्तर दिया।

'बोलने लायक कम-से-कम दो प्रसंग तो अवश्य हैं।' कह कर बाली हँसा।

'कौन-कौन?'

'एक तो पहल्लवकी सीमापर नौशेरावाला...' बाली बोला।

और दूसरा नागदाके हिंडोलोत्सववाला...' देव बोला और दोनों हँस पड़े।

भोज की भौंहें तन गईं। मित्रोंने देखा कि भोजको ऐसे स्त्री विषयक उल्लेख अच्छे नहीं लगते। इसका एक दृष्टांत यहाँ और भी मिला। कुछ उत्तर न दे भोज आगे बढ़ा।

'बुरा लग गया, बापा ?'

'एक वात आप दोनों मित्र समझ लें। स्त्री रूपका भण्डार भलेही हो! किन्तु हमें लुटेरा नहीं बनना है कम से कम रूपके लिए। जिसे लूटा ही नहीं जा सकता उसके प्रति दृग्पात कैसा ?' भोजने कहा।

'बापा! इतना आपने पढ़ा-लिखा, भ्रमण किया, हम जैसे भीलोंको संस्कृत काव्य रटाया। इतनाही नहीं; रस और रसिकताकी भावपूर्ण बातें भी समझायीं! पर स्वयं इतने शुष्क ?' देवने कहा

'जहाँ-जहाँ हम गये शास्त्रियों और पण्डितोंकी रसिकतापूर्ण बातें भी तो हमने सुनीं ?' बाली बोला।

'क्या वे वार्त्तायें तुम्हें अच्छी लगीं ? शास्त्री, पण्डित एवं श्रमण भिक्खु लंपट हैं। इसीसे इनके शास्त्र भी झूठे होते जा रहे हैं। याद रखो, स्त्रियोंको लक्ष्यकर हँसने और हँसाने वाला मुझे प्रिय नहीं लगता।' भोजने स्पष्ट कहा।

'किंतु स्त्रियाँ ही यदि बीचमें आकर खड़ी हो जायँ तो क्या किया जाय ?'

'पैर पड़ना नहीं आता ? स्त्रियोंका देख और दोनों हाथ जोड़ मस्तक नीचे कर नमन कर। हिंगलाज माताके खाखीने हमसे क्या कहा था ?'

'नागदाकी राजकन्याको रिसालेके साथ जाते हुए देखा।...बीचमें अभी एकही रात बीती है। देखकर भी तुम कुछ न बोले; इससे तुम्हारी वाणी खोलनेके लिए हमें इतना कहना पड़ा।'

'ऐसा ? यहाँ से गई ?' भोजने पूछा

'तुम आँखें खोलकर चलते हो या बन्दकर ?'

'बहुत बार ऐसा होता है कि आँखें खुली होते हुए भी उन्हें कुछ दिखाई नहीं देता। ये देखती हैं भूतकालके खंडहर या भविष्यकी इमारतें!'

'जोगियोंका प्रपंच कम हो तो तुम मनुष्य बनो...नहीं तो किसी खाखीके झुण्डमें मिल जाओगे !' बालीने अपने मनकी शंका प्रकट की।

दो-तीन योगी-खाखी देह भरमें भस्म रमाये हुए धूनीके पास बैठे थे। उनके पास चार-पाँच फकीर भी बैठे थे। रुककर तीनों मित्रोंने उनके बीच होनेवाला वार्तालाप सुना।

'हिंदुओंके देव को देखना है ?' साधुने पूछा।

'जी हाँ, तभी मैं देवको सत्य मान सकता हूँ।' एक फकीर ने कहा।

'लो, यह चिलम पीयो, केवल दो फूँक लगाना, तुम्हें इतने में देव न दिखाई पड़ जाय तो मैं मुसलमान बन जाऊँगा। कौनसा देव देखना है यह पहले ही निश्चय कर लेना।' कहकर साधुने चिलम फकीरके हाथ में थमा दी।

फकीर कुछ भयभीत सा जान पड़ा जिसपर साधुने कहा, 'घबड़ाओ मत, हमारे अध्यात्म-प्रयोग जरा देखो तो ?'

फकीरने साहस कर चिलमकी दो फूँक मारी और सचमुच उसकी आँखें ढकने लगीं। दस-पाँच क्षण ही बीता होगा कि फकीर आँखें खोलकर खड़ा हो गया।

'सुबहान अल्ला ! कैसा इल्म है इन काफिरोंमें ? चलो यारों ! नहीं तो शैतानके पंजेमें फँस जायँगे।'

'कुछ कहो तो सही क्या देखा ?' खाखीने हँसकर पूछा।

'आपके इन्दर देवको देखा...पूरा परिस्तान...आह...देखकर, मैं फिर इस दोजखमें वापस क्यों आया !'

'यह दोजख अच्छा लगा तो !'

'तोबा ! तोबा।' कहकर अपने साथियोंके साथ फकीर वहाँसे चलता बना

'खाखीने एक भूल की।' आगे बढ़ते हुए भोजने कहा।

'कैसी भूल, बापा ?'

'खाखी झूठा प्रमाणित होनेपर मुसलमान बननेके लिए तैयार हुआ; फकीरको हिंदू बनानेकी शर्त उसने क्यों नहीं रखी ?'

'आप ही कह रहे थे न कि कोई मुसलमान काफिर बन जाय तो वह मृत्यु-दण्डका पात्र होता है। कोई भी उसकी हत्या कर सकता है ?' देवने एक मुख्य कारण बताया।

धर्मपरिवर्तनका तिरस्कार करने वालेको मृत्यु दंडका भय कौम तथा धर्मकी दृष्टिसे अधिक अच्छा है या बुरा इस पर तथा स्मृतियोंमें लिखी हुई धर्मपरिवर्तनके प्रायश्चित्तकी मर्यादापर विचार-विनिमय करते हुए भोजने मित्रोंके साथ चित्रकूटमें प्रवेश किया। उसने देखा कि मेदपाट प्रदेशकी जनताका अधिकांश भाग वहाँ आ रहा है। उस जन समूहमें क्षत्रिय, ब्राह्मण, श्रेष्ठी भील और व्यापारी सभी थे। स्त्रियाँ तथा बालक भी अच्छी संख्यामें उपस्थित थे। सबकी दृष्टि नगरके मध्यमें स्थित मैदान की ओर थी। चित्रकूट—चित्तौरगढ़से उतर कर नगरमें महाराज मानसिंहके पधारनेकी लोग बड़ी उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहे थे। मैदानमें सहस्रों मनुष्य एकत्र हो चुके थे और भीड़ अभी भी बढ़ती जा रही थी। मैदानके बीचमें स्पर्द्धाकी व्यवस्था करने वाले अधिकारी घूम रहे थे। लोग बातें कर रहे थे किंतु उनके मुखपर हवाइयाँ उड़ रही थीं।

९

महाराज मानसिंह पधारे। रणवाद्य बज उठे। छड़ीदार इस मौर्य-वंशीय महाराज की प्रशस्तिका वर्णन कर रहे थे। चन्द्रगुप्त एवं अशोक जैसे मौर्यवंशीय सम्राटोंका साम्राज्य विलीन हो जाने पर भी उनके वंशज अपने पूर्वजों की कीर्ति पर अत्यंत आनंदित रहते थे। आर्य जनताको एक लाभ सर्वदा प्राप्त हुआ है। छोटे-बड़े आर्यसमूहकी स्थिति चाहे जैसी हो परंतु उनके गौरव और मान बढ़ाने वाले पूर्वजों की संख्या सदा पर्याप्त रही। इनका नाम जनताके डगमगाते हुए देह या मनको सशक्त बनाये रखनेका कार्य करता रहा है। भलेही ये पूर्वज चार हजार वर्ष पहलेके भीम अर्जुन हों अथवा दो हजार वर्ष पूर्व अवतीर्ण होने वाले बुद्धअशोक! महाराज मानसिंहके एक पूर्वजने पतनके समय, विलीन होते हुए साम्राज्यमें से चित्रकूट—चित्तौरके आस-पासके प्रदेशको बचा लिया और विशाल साम्राज्यका एक छोटा सा टुकड़ा वंशजोंके लिए रख छोड़ा। साथही साम्राज्य नष्ट हो जाने पर भी, सम्राट् की मानसिक विशालता भी उसने बना रखी। यह विशालता धीरे-धीरे, पीढ़ी दर पीढ़ी उतरते-उतरते मानसिंहमें केवल नाम मात्रके लिए ही शेष रही। बचे हुए राज्योंमें सरदारगण अपनी अपनी जागीरोंके स्वतंत्र राजा बन बैठे थे। वे मानसिंहको केवल नामका महत्त्व देते थे। उनके सच्चे महत्त्वको तो वे सब निर्मूल कर चुके थे और कर रहे थे।

मानसिंह मौर्यको यह वस्तु-स्थिति शायद ही समझमें आती। उन्हें निश्चित भेंट यथा समय मिलती जायँ, उनके महत्त्वपूर्ण दरबारके अवसर पर आकर सब लोग सलामी दे जायँ, मादक पदार्थोंकी मिठाइयाँ चखनेके लिए उन्हें बराबर मिला करें, उनके भोजनमें स्वाद एवं शोभा-वैविध्य दिनों दिन बढ़ता रहे, इच्छानुसार नाचगाना देखने-सुननेको मिलता रहे,

भोगका भी स्वाद जमा रहे इतनी विवाहित अथवा अविवाहित युवतियाँ उनको घेरकर बैठी रहें, कवि उनकी प्रशस्ति लिखें, विदूषक एवं भाँड़ नई नई नकलें बना उनका मन बहलाया करें तथा वैद्य बहुमूल्य भस्म एवं पौष्टिक पदार्थ खिला-खिला कर उनके शरीरमें क्षणिक उत्तेजना उत्पन्न करते रहें, इतना ही उनके लिए यथेष्ठ था। कभी-कभी वे धर्म क्रियाओं में भी भाग लिया करते, बौद्धों एवं ब्राह्मणोंको दान देते, या एक दो सरोवर बनवा कर शिलालेख में अपना नाम अमर करने का प्रयत्न करते एवं परंपरागत प्रथाके अनुसार वर्षमें दो-तीन बार सार्वजनिक खेलकूदों में उपस्थित हो अपने अस्तित्वका प्रमाण देते। उन्हें पराक्रमी बननेकी, युद्धमें नाम पैदा करनेकी, विद्वानोंका मान बढ़ानेकी इच्छा रहती थी अवश्य, परन्तु उनके समान महान् सम्राट्-वंशजको बिना परिश्रम कीर्ति प्राप्त हो चुकी है, यह चारों ओरसे वे सुना करते जिससे संतुष्ट हो अपने दैनिक कार्यक्रमोंमें लीन रहते।

सिंधु प्रदेशपर चढ़ आये हुए इस्लामी सैन्यका सामना करनेके लिए दाहिरने मानसिंह मौर्यकी सहायता माँगी। उस समय वे स्वयं युद्धमें जानेके लिए तैयार हुए। किंतु उनके सामंतोंने इस्लामके आक्रमणमें ऐसा कोई महत्त्व नहीं देखा जिसमें उनके समान सम्राट्वंशी मौर्यको स्वयं कष्ट करनेकी आवश्यकता हो। उन्होंने दो-एक सामंतोंके साथ छोटी-सी सेना भेजी अवश्य किंतु उसके पहुँचनेके पूर्व ही मुहम्मद कासिम सम्पूर्ण सिंधु प्रदेश सर कर चुका था। बिना युद्ध किये वापस लौटे हुए सामंतोंने महाराज मानसिंहके गौरवको बढ़ाने वाला समाचार दिया कि मुसलमानोंकी विजय अवश्य हुई किंतु 'मानमोरी' महाराजका नाम सुनते ही मुस्लिम सैन्य सिंधु नदीके इस पार आनेसे डर गया। सामंतोंने कवियोंसे महाराज मानसिंह मौर्यका गुणानुवाद करती हुई प्रशस्ति गाथायें लिखवा कर प्रचारित की मानों सिंध पराजयमें 'मानमोरी' की विजय समाई हो। कवियोंकी लेखनीने मानसिंह मौर्यको 'मानमोरी' के

प्यारे नामसे संबोधित किया। सिंध विजयके अनेक वर्ष व्यतीत हो जानेपर भी मुसलमान इधर बढ़ नहीं सके, इससे मानसिंहको विश्वास हो गया कि सचमुच उनका पराक्रमी नाम ही इस्लामके आक्रमणको रोके हुए है।

व्यक्तिगत रूपसे मुसलमान व्यापारी, फकीर, खिलाड़ी एवं सेनानियोंका आना-जाना आर्यावर्त्तमें बढ़नेसे चित्रकूट राज्यमें उनका बढ़ना साधारण बात थी। इस्लामने पश्चिममें महाराज्यकी स्थापना की थी। जिससे बगदाद, बसरा एवं मिश्र-अरबस्तान छोटे-बड़े राजाओंके साथ राजकीय संबंध स्थापित करनेके लिए कुछ हिंदू राजा भी आतुर थे। दक्षिणके बल्लाल-राष्ट्रकूटोंने तो यह संबंध स्थापित कर मुसलमान योद्धाओंकी एक सेना भी अपने राज्यमें खड़ी कर ली थी। कभी-कभी मानसिंहके मनमें भी ऐसे पराक्रमी मुसलमानोंकी टुकड़ी खड़ी करनेका विचार उत्पन्न होता। परन्तु सामंतोंकी व्यवस्थामें यह सम्भव न हो सका। केवल इस्लामी नजूमी, पहलवान एवं मंत्रियोंका आवागमन होने लग गया था जिनकी पहुँच महाराज मानसिंहके राजमहल तक हो गई थी।

इस प्रकार मानसिंहको सब प्रकारका सुख प्राप्त था। केवल एक ही कमी उन्हें उद्विग्न करती रहती। उन्हें कोई संतान न थी! भोगविलास में लीन, विलासकी ओर अग्रसर होने वाला राजवंशीय पौरुष कितने ही राजाओंको संतान-विहीन रखता था। यह सत्य राजालोग शायद ही कभी स्वीकार करें! उन्हींकी नजरके सामने उन्हींके समान उनसे भी बढ़कर भोग-विलासमें रत कितने ही राजागण अनेक संतानोंका पितृत्व भोग करते हुए दीख पड़ते थे जिससे संतानेच्छु राजाओंकी भोग-विलासके लिए स्त्रियों की माँगमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती थी। महाराजके साथ संबंध स्थापित करनेके लिए अन्य राजा, सामंत एवं सामान्य मानवका आतुर होना स्वाभाविक है। मनुष्य जैसा चाहे वैसा भविष्य-भाषण कर सकता है। मानसिंह ज्योतिषके आधारपर प्रति वर्ष नई रानी ले आते। संतान जब

तक न हो तब तक प्रति वर्ष एक विवाह करनेका मानों उन्होंने निश्चय सा कर रखा था। इस वर्ष एक मुस्लिमने भी पासा फेंक कर, शीशेके गोलेमें भविष्य देख कर, पीरऔलियाका तावीज बाँध कर मानसिंहको विश्वास दिलाया था कि अब अल्लाहकी रहम उनपर उतरी है। इस वर्ष यदि विवाह-क्रम चालू रहा तो अवश्य ही उनकी संतानेच्छा पूर्ण होगी।

खेल-कूदके वार्षिक समारंभमें रितिके अनुसार सामंतोंको सकुटुम्ब आमंत्रण दिया गया था। सभी आकर अपने-अपने पदानुसार बैठ चुके थे। सामान्य जनताका उमड़ता हुआ विभाग अलग था। इस वर्ष देशी खिलाड़ियोंके साथ ही विदेशी खिलाड़ियोंकी भी अधिक संख्या द्वारा स्पर्द्धामें भाग लेनेकी व्यवस्था होनेसे रंगभूमिमें तिल रखनेकी भी जगह न थी।

अधिक देर तक लोगों द्वारा राह देखे जानेके पश्चात् महाराज मानसिंह पधारे। सबने हर्षनादसे उनका स्वागत किया। नागद्रहके सोलंकी राव मानसिंहके अग्रगण्य सामंत थे। यद्यपि मानसिंहके राजकाजमें एवं कार्य-क्रमोंमें वे शायद ही कभी सक्रिय भाग लेते तथापि मानसिंहकी संपूर्ण मान-रक्षा संबंधी जिम्मेदारीसे वे कभी पीछे रहने वाले नहीं थे। उनका स्थान भी सब सामंतोंसे आगे था। महाराज मानसिंहके बगलमें ही उनकी बैठक रहती एवं ऐसे समारंभों तथा दरबारोंमें महाराजका सम्मान करनेका हक उनका माना जाता था। मानसिंहको पुष्पहार पहनानेकी विधि उन्होंने सम्पन्नकी तत्पश्चात् स्पर्द्धा प्रारंभ हुई।

अनेक प्रकारकी शारीरिक कसरतें वहाँ दिखाई गईं। हाथी और घोड़ोंकी लड़ाई लोगोंने रुद्ध श्वास हो देखी। भैंसा और गैंडा लड़कर लहू-लुहान हुए! मानव और बाघके बीच हाथापाई हुई। देशी-विदेशी कुश्तियाँ एवं मुष्टि-युद्धकी स्पर्द्धा लोगोंमें कँपकँपी उत्पन्न करने वाली थी।

सौराष्ट्री, पंजाबी एवं अरबी अश्वोंकी तथा अश्वरथोंकी प्रतियोगिता भी हुई। जिसमें अरबी अश्वोंकी तेजस्विता स्थापित हुई और भारत-वासियोंका मुख म्लान हो गया। तीरंदाजी भालेके चापल्य एवं तलवारकी पटेबाजीमें

भी अनेक इस्लामी खेलाड़ियोंने अपनी निपुण कलासे लोगोंको चकित कर दिया और इस प्रकार उदार मानसिंहकी प्रशंसा प्राप्त की। धर्मावलंबी शारीरिक विजयको, युद्धकीय विजयको एवं बुद्धि विजयको अपने धर्मविजयका स्वरूप दे देते हैं। आकाशमें उड़ते हुए पक्षीको तीरसे विद्ध करने वाला मुसलमान इसमें अल्लाहके रहमको याद करे, बौद्ध-धर्मावलंबी भगवान् बुद्धकी कृपा देखे एवं शैव शंकर अथवा वैष्णव विष्णुका उपकार माननेके लिए प्रेरित हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं!

विदेशमें आकर परधर्मियोंके विशाल समूहसे वाहवाही लूटने वाले मुसलमान खिलाड़ियोंकी दक्षता अति उच्च कोटिकी थी। इसके बिना विदेशमें स्थान प्राप्त करना उनके लिए कठिन ही नहीं असंभव था। एक बार स्थान मिलते ही धर्म प्रचारका भी श्री गणेश किया जा सकता था और धर्मके युद्ध-विजयकी भूमिका भी रची जा सकती थी। अतः नवीनतम खेल एवं कलामय प्रदर्शन कर मुसलमान खिलाड़ी भारतवर्ष के वीरोंको वैसा ही प्रयोग कर दिखानेके लिये ललकारते थे जिस लल-कारको कोई-कोई भारतवासी खिलाड़ी स्वीकार कर मुठभेड़में कभी सफल होता और कभी निष्फल। भारतवासीके लिए भारतमें ही मिलने वाली निष्फलता प्रेक्षकवर्गके लिए पराजय बन जाती एवं विजेता मुसल-मानोंको 'अल्ला हो अकबर' के उद्गारकी दृढ़ता प्राप्त होती।

'बापा! यह सब क्या हो रहा है?' घूर-घूरकर सम्पूर्ण दृश्यको गौरसे देख कर देवने भोजसे पूछा। उसके प्रश्नसे जैसे ज्वाला निकल रही थी।

'हमारी निर्माल्यताका चित्र अंकित किया जा रहा है।' वाली बोला।

'केवल चित्र ही होता तो ठीक था किंतु यह तो सत्य प्रकट हो रहा है...देखो, वह हाथी छूटा!...भागने लगे सब दर्शक....हाथीके महावत वह भागे ...देव, बाली अपना रस्सा तैयार करो...' भोजने कहा।

और भगदड़ मचे हुए समुदायके बीचसे मैदानमें कूद कर देव, बाली और भोज अपने पास आने वाले हाथीको एक टक देखने लगे। क्षण-

मात्रमें तीनोंने एक दूसरेसे विलग हो बिजली की तड़पके समान, पासमें आये हुए हाथीके तीन पैरोंको, अत्यन्त दक्षतासे फंदोंमें फँसा कर इस प्रकार तान रखा कि मस्त हाथीकी गति बिलकुल ही रुक गई। वह क्रोधातुर महाकाय प्राणी सूँड़ हिलाकर चीत्कार करता हुआ चारों ओर धूल उड़ाने लगा।

पीछे भाला और चिमटा लिये दौड़ते हुए दो मुसलमान हाथीको इस प्रकार जकड़ा हुआ देख आग-बबूला हो गये और हाथीको स्थिर बना कर खड़े तीनों भारतवासियोंसे वे झगड़ने लगे।

'सब खेल चौपट कर डाला तुम काफिरों ने !...देखते नहीं हम आ रहे थे इस हाथीको पकड़नेके लिए...?'

'हमें क्या पता ? लोग भागने लगे, इससे हमने हाथीको पकड़ लिया !' देव बोला।

'तुम्हें लोगोंको वाहवाही लूटना है क्यों ?' मुसलमान खिलाड़ीने कहा।

'वह आपही लूटें। हमें इसकी तनिक भी इच्छा नहीं है !' बालीने हँसकर कहा। हाथीको पकड़ा हुआ देख भागने वाला दर्शक समाज पुनः अपने स्थानपर आकर बैठ गया और हर्षनाद करने लगा, जो इस्लामियोंको अरुचिकर प्रतीत हुआ यद्यपि भागते हुए मस्त हाथीको इस प्रकार जकड़ रखना हर्षोन्माद-उत्पादक अवश्य था। राजवंशीय प्रेक्षक वृंद भी इस हर्षनादमें सम्मिलित था। यह देख उन्हें और भी क्रोध उत्पन्न हुआ। इनमें रानियाँ, राजकुमारियाँ एवं सामंतोंके कुटुम्ब की स्त्रियाँ भी दृश्य देखनेके लिए उपस्थित थीं।

मुस्लिम खिलाड़ियोंमें से तीन-चारने आगे बढ़कर महाराज मानसिंहको सलाम किया, पश्चात् उनके सरदारने सब प्रेक्षकवृंदको सुनाते हुए कहा, 'नामवर ! संसारमें जो काम कोई नहीं कर सकता उसे मैं कर दिखाता हूँ। मेरी ललकार है कि मेरा आह्वान मेलेमें उपस्थित कोई भी

बहादुर स्वीकार करे एवं सफल हो तो रूम, शाम, यूनान मिश्रमें जीती हुई ये स्वर्ण प्रतिमाएँ ले जाय। यदि ऐसा कोई बहादुर न निकले तो यह मेला ऐसी ही एक स्वर्ण-प्रतिमा मुझे अर्पित करे। मैं यह कार्य कर दिखाऊँगा।'

'ऐसा तुम्हारा कौन-सा आह्वान है?' राजविभागमें से एक कर्मचारी सामंतने पूछा।

'यह एक विशाल लोहस्तंभ यहाँ खड़ा करता हूँ, इसे तलवारके एक ही झटकेसे दो टूक कर देना है, यही मेरा आह्वान है। है यहाँ कोई जो मेरे सवालका जवाब दे?'

संपूर्ण रंगभूमिमें सन्नाटा छा गया। मानवको, बाघको, गेंडे अथवा हाथीको एक ही झटकेमें काट डालना संभव था। भारतवर्षमें अभी भी ऐसे बलवान पुरुष मौजूद थे परंतु लोहेके ऐसे विशाल स्तंभको काटना? और वह भी एक ही झटकेमें? यह देवतासे संभव था या राक्षससे। मानवके हाथके तो बाहर की बात थी यह!

धीरे-धीरे काना-फूसी होने लगी। लोगोंके मनमें क्षणभरके लिए ऐसी आशा उपजी कि राजविभागमें से कोई ऐसा व्यक्ति निकल आयेगा। दो एक युवक सामंतोंके मनमें इच्छाका प्रादुर्भाव हुआ कि अपना हाथ अजमायें! परंतु लोहस्तंभ न कटा तब? जीवनभरके लिए काला टीका मस्तकपर लग जायगा। इसकी अपेक्षा शांत बैठे रहना अधिक उत्तम!

महाराज मानसिंहने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। विशिष्ट स्थान पर बैठे राजवंशीय गण, सामंत, अमलदार एवं सेनापतियों पर दृष्टिक्षेप किया। किन्तु किसीका मानसिंहकी आँखसे आँख मिलानेका साहस नहीं हुआ। हिमका झंझावात बह गया हो ऐसी शांति रंगभूमिमें छा गई। पराजयका लज्जाजनक प्रकंप भी सबने अनुभव किया।

'कोई जवान आता है मैदानमें?' खिलाड़ीने गर्जना की।

संपूर्ण मेदिनी शांत स्तब्धतामें डूब गई।

'बापा ! अपने देशके गौरवपर पानी फिरने ही वाला है !' बाली बोला।

'हम इस शर्तमें कहाँ हैं ?' भोजने उत्तर दिया।

'किंतु यह तो सबका सवाल है—हम भी उसमें हैं !' देव बोला।

'तलवारसे बहुत कुछ काटा किंतु लोहखंडका स्तंभ कभी नहीं काटा !' भोजने कहा यद्यपि सिंधु प्रदेशमें भ्रमण करते हुए उसने लोहस्तंभ काटने वाले पश्चिमके एक विजयी मुस्लिम वीरका नाम सुना था अवश्य। कदाचित् पश्चिमी होड़में विजय प्राप्त कर वह यहाँ आया हो।

'बापा ! मुनिने तुम्हें तलवार दी है। एकलिंगजीका नाम लेकर हो जाओ, तैयार !' बालीने बापाको उत्तेजना देते हुए प्रोत्साहित किया।

इतनेमें उस मुस्लिम पहलवानने व्यंग कसते हुए कहा: 'उस हाथीको पकड़ने वाला कौन था ? उसने अच्छी हाथकी सफाई दिखाई...है यह स्तंभ काटनेकी उसमें हिम्मत ? '

'हाँ, वह व्यक्ति उतरता है मैदानमें...रंग बापा ! रंग बापा !' देवने पहलवानके आह्वानका उत्तर प्रदान कर भोजकी प्रशंसा की। समुदायके एक भरे हुए भागसे निकलकर भोज धीमे पर दृढ़ कदम रखता हुआ मैदानमें खड़े किये हुए लोहस्तंभकी ओर बढ़ा। संपूर्ण मैदानमें ऐसा सन्नाटा छाया हुआ था कि सुई गिरनेकी आवाज भी सुनाई दे जाती।

राजवंशीय स्त्री विभागमें एक युवतीने खड़े हो आगे बढ़ते हुए भोजको गौरसे देखा।

'मा ! यह तो...नागदाका ब्रह्मकुमार लगता है !' नागदा की राजकुँवरी मीनाक्षीने कहा।

'तुझसे किसने कहा ?' माताने पूछा।

'कभी देखा होगा।' कहकर वह कंधे तक झूलती हुई केशावलि से शोभित ब्राह्मण-शोभन वस्त्र-उपवस्त्रसे आच्छादित दोलायमान रुद्राक्षका

कुण्डल एवं रुद्राक्ष की माला धारण किये हुए ब्रह्मकुमारको एकटक देखती रह गयी। जितने देवी देवता उसे याद आये सबका स्मरण कर मीनाक्षीने इस ब्रह्मकुमारको उसके काममें सफलता देनेकी उनसे प्रार्थना की।

कारण ?

यह ब्रह्मकुमार गत रात्रिमें उसे स्वप्नमें दिखाई पड़ा था—दोलोत्सव की रात्रिमें प्रत्यक्ष दीख पड़ा था ठीक उसी प्रकार! दिनमें जिस व्यक्तिका अधिक विचार किया जाता है वही रात्रिमें स्वप्नमें प्रायः दीख जाता है। इस समय भी वही दिखाई दिया! सचमुच, दर्शनीय ही था, केवल मीनाक्षीको ही नहीं बल्कि संपूर्ण प्रेक्षक वर्गको भोज दर्शनीय जान पड़ा। पौरुषसे पूर्ण ऊँचा पूरा विशाल शरीर मुखपर धैर्य और शांति, विजय-प्राप्ति की गर्वपूर्ण आकांक्षाका अभाव एवं क्रमशः वृद्धिगत होने वाले हर्षोद्गार के प्रति उदासीनता भोजको अधिकाधिक दर्शनीय बना रही थी।

स्तंभके पास भोजके पहुँचते ही मैदान में चलने वाली बातचीत बिलकुल ही बंद हो गई। समुदायसे थोड़ा आगे बढ़कर देव और बालीने एक भव्य गर्जना की, 'बापा! जय एकलिंग!'

'जय एकलिंग!' भोजने सहज स्मित सह प्रतिध्वनि कर उपवस्त्रके नीचे ढकी हुई अनमोल तलवार बाहर निकाली। क्षण भर उसने एकलिंग जी महादेव, हारित मुनि और माता श्रीलेखाका स्मरण कर बड़ी नम्रतासे मानसिंह एवं संपूर्ण मेदनीको प्रणाम किया। म्यानसे तलवार बाहर खींच ली। बिजलीके समान चमकती हुई तलवार सीधी, तीक्ष्ण दो धारी थी। तलवारके समान ही सबका हृदय धड़क उठा—सबसे अधिक मीनाक्षी का। तलवार उठाकर और स्तंभके पास आ दो-तीन पैतरा भरकर एकलिंगकी गर्जनाके साथ भोजने तलवारको लोह-स्तम्भ पर फेर दिया! कदली-स्तंभको काट कर बाहर निकल गई हो ऐसी सरलतासे लोह-स्तंभको काटती हुई तलवार स्तंभसे बाहर निकल गई और स्तंभका कटा हुआ ऊपरका भाग स्थिरता त्याग कर

क्षण दो क्षण डगमगा उठा और लोगोंका आश्चर्य जरा शान्त हो इसके पूर्व ही धड़ामसे अपने लौहत्वकी साक्षी देता हुआ झनझनाहटके साथ जमीन पर गिर पड़ा।

पूरा मैदान हर्षनादसे गूँज उठा। हर्षकी सीमा न थी। लज्जित मुस्लिम खिलाड़ीकी आँखें क्षण भरके लिए खून बरसाने लगी परन्तु दूसरे ही क्षण वह भी हर्षनादमें सम्मिलित हो गया।

भोजने जनसमुदायको पुनः प्रणाम किया और एक मुस्लिम पहलवानने आकर चार-पाँच स्वर्ण प्रतिमाएँ भोजके सामने रख दीं।

'प्रतिमाएँ आपकी हैं किंतु अभी एक दूसरा आह्वान भी है...'

'वह क्या ?'

कदाचित् भोजपर कोई आक्रमण कर बैठे इस भयसे दोनों भील वीर भोजके पास आकर खड़े हो गये थे। वहाँ उपस्थित प्रेक्षक वर्गके टूट पड़ने पर भी सबका सामना करनेके लिए वे प्रस्तुत हैं, ऐसा उनकी भावभंगीसे प्रकट हो रहा था।

'महाराजके समक्ष एक दूसरा आह्वान रखता हूँ। स्तंभ काटने वाले को स्वर्ण प्रतिमाएँ मिलनी ही चाहिए। उसे जो पुरस्कार दिया जाय थोड़ा है। किंतु इसमें बलका काम था। अब एक कौशलका आह्वान है। यह रुईकी पूनी मैं उड़ाता हूँ। इसे कोई तलवारसे दो टुकड़े कर डाले तो बस ! यह पुरस्कार ले जाय अन्यथा मैं काट कर प्रतिमाएँ वापस ले जाऊँगा।' फकीरके समान दिखाई पड़ने वाले मुसलमानने प्रकट किया।

'उड़ाइए अपनी पूनी !' आह्वान स्वीकार करते हुए भोजने कहा।

'बलका काम नहीं है छोकरे ! हमारी कला और धर्मकी ताकत इसमें भरी है। झूठा साहस न कर। मिला हुआ मान हाथसे निकल जायगा।' आह्वान देने वाले ने दृढ़ स्वरमें सलाह दी।

'यदि मैं असफल रहा तो आपका शिष्य बन सीख लूँगा। उड़ाइए अपनी पूनी !' भोजने कहा।

एक विजयी वीरकी अदासे उस मुसलमानने रूईकी एक छोटी सी पूनी हवामें उड़ाई और भोजने एक कदम आगे बढ़कर उसी तलवारके एक कलापूर्ण झटकेसे समूचा प्रेक्षक वर्ग स्पष्ट देख सके इस प्रकार उसे दो टुकड़ोंमें विभक्त कर दिया। पुनः मैदान जयघोषसे प्रतिध्वनित हो उठा। बाली और देवने छलांग भर 'जय एकलिंग' की गर्जना की और मुस्लिम फकीर भोजकी कमरसे लिपट कर बोला, 'बेटा! तेरे जैसा एक वीर मुस्लिम दुनियाको मिल जाय तो चौखंड पृथ्वीपर दूजका चाँद चमक उठे!'

'हमारे शंकरने दूजके चाँदको भालपर रख छोड़ा है, साईं!' उसके अंकसे छूट कर मुस्कराते हुए भोज बोला।

'इतने अंशमें आपके शंकर भी इस्लामी मजहबको मानते हैं!' साँईने कहा।

इसी समय राज-विभागकी तरफसे एक बड़े अधिकारीने पहुँचकर भोजको महाराज मानसिंहके पास चलनेका आग्रह किया। अपने दोनों मित्रोंके साथ भोज राज-विभागकी ओर चला। उसपर एक पुष्प आ गिरा। यह वही पुष्प था जिसे कुँवरी मीनाक्षीने हिंडोलेसे उस रात्रिमें ताड़ लिया था। उस ओर भोजकी दृष्टि अपने आपही चली गई। राजकुमारी मीनाक्षी उसे ध्यान पूर्वक देख रही थी। इसी समय राजयुवतियों वाले खंडसे उसपर पुष्पवृष्टि होने लगी। पुनः जयनादसे वातावरण गूँज उठा। सामन्तोंने भी उसका हार्दिक स्वागत किया। जयनाद और हर्षोल्लासके बीच मीनाक्षीके प्रति उसके दृष्टिपात एवं उसके द्वारा उठाये हुए मूल्यवान पुष्पकी ओर किसीका ध्यान न गया। महाराज मानसिंहके पास पहुँच भोजने नमस्कार किया। मानसिंहके शिथिल एवं झुर्रियोंसे भरे हुए मुखपर इस समय तेज दिखाई पड़ रहा था।

'वीर! तुम्हारा नाम!' महाराजने पूछा।

'मेरा नाम भोज है, महाराज!'

'कहाँ के रहने वाले हो?'

'नाग दाका...ब्राह्मण हूँ।'

'ब्राह्मण...हाँ...किसी तेजस्वी ब्राह्मणयुवककी बात त्र्यम्बक भट्ट भी कर रहे थे। तूने आज चित्रकूटका नाम रख लिया, भोज! आजका प्रथम पुरस्कार तुझे देता हूँ।' कहकर महाराजने एक सुन्दर स्वर्णचक्र उसके सामने रखा।

'महाराजकी कृपा!...किंतु मैं पुरस्कार ग्रहण नहीं करता।'

'क्यों?'

'एक तो मैं ब्राह्मण, स्वर्ण स्पर्श न करनेकी गुरु की आज्ञा है... दूसरे अपनी द्वार रहित पर्ण कुटीरमें इस चक्रको रखूँगा कहाँ?'

'आज तेरा निवास मेरे महलमें रहेगा!' मानसिंहने कहा। महलमें आकर टिकने वाले राजवंशीय अतिथि तथा सामंत गणके कारण भोजके लिए स्थान मिलना कठिन है यह कहने वाले अंगरक्षककी बात सुनी-अनसुनी कर महराजने उसे अपने साथ ले लिया। उसका पुरस्कार एवं स्वर्ण प्रतिमाएँ भी महलमें ले आनेकी आज्ञा दे दी। इस प्रकार जनताके दिलको जीतने वाले दृश्यका अंत हुआ। किंतु प्रजाकी आँखों एवं वाणीसे इस दृश्यका लुप्त हो जाना असंभव था। भोजका नाम उसी क्षणसे चित्रकूटके घर घरमें सबकी जिह्वापर चढ़ गया।

महलमें पैर रखते ही भोजको समूचे राज-वातावरणमें एक प्रकारकी कलुषितता दिखाई दी। सामंतोंकी दृष्टिमें भोजको अपने प्रति स्नेहा-भाव स्पष्ट दीख पड़ा। कर्मचारियोंमें भी इस नूतन आगंतुकके लिए विशेष सद्भाव भासित नहीं हुआ। विदूषक, नर्तकियाँ, दासियां एवं रसोइये राजमहलमें आरामसे रहते हुए मौज उड़ाते थे। रौनक पूरी थी परन्तु रौनकके पीछे नूतन प्रकाशकी चमकके बदले बुझने वाले दीपक की टिमटिमाती प्रकाश-छाया का भास होता था।

महाराजने भोज एवं उसके मित्रोंके लिए योग्य स्थानका प्रबंध कर

देनेकी आज्ञा दे उसे अपने पास बैठाकर उसके अभ्यास, यात्रा-विवरण एवं हारित मुनिके बारेमें पूछा ।

'हारित मुनि दो वस्तुएँ चाहते हैं । एक प्रभुसान्निध्य और दूसरा आगे बढ़ने वाले मुस्लिम प्रवाहका अवरोध ।'

'किन्तु इसका उपाय ? देखा न इनके वीरोंको ? यदि आज तुम न होते तो न ज ने कितने ही लोगोंने उनका शिष्यत्व स्वीकार कर इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया होता ।' महाराजने कहा ।

'महाराज ! इस प्रवाहको रोकनेका एक ही उपाय है । महाराजकी प्रजामें क्या ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं है जो इनकी बराबरी कर सके ?' भोजने पूछा ।

'देखा नहीं तुमने ? प्रजा, सामंत, सैनिकोंमें किसीने आह्वान स्वीकार किया ?' आह भर कर मानसिंहने कहा और तत्काल दो अंगरक्षकों ने आकर भोजसे कहा - 'महाराजसे अधिक बातचीत न करें । इनके स्वास्थ्यपर बुरा असर पड़ेगा ।'

'मैं तो बात करनेके लिए कह नहीं रहा हूँ । महाराज स्वयं कर रहे हैं ।' भोजने खड़े होते हुए उत्तर दिया और वहाँसे चलनेके लिए तैयार हो गया ।

'थोड़ी देर बाद जाना, भोज ! और...तुम यहीं रहो, मेरे महलमें ही ।' मानसिंहने कहा । इसी समय दो पुष्ट वैद्योंने आकर स्वर्ण पात्रमें कोई पेय महाराजको पिलाया ।

'अब यह पेय बन्द कर दें तो ?' महाराजने पूछा ।

'तो महाराज ! बहुत कुछ बंद कर देना पड़ेगा !

'ज्योतिषीजी आये हैं । आपकी आज्ञा चाहते हैं...'अंगरक्षकने कहा ।

'आने दो उन्हें ।' महाराजने आज्ञा दी ।

भोजने अपने गुरु त्र्यंबक भट्टको हाथमें एक जन्मपत्रिका लिये भीतर प्रवेश करते हुए देखा । शिष्य उठकर खड़ा हो गया । उनके पीछे

नागह्रदके सोलंकी राव एवं उनकी पत्नी भी थीं। मानसिंहने तीनोंका स्वागत कर योग्य स्थानपर बैठाकर कहा—'देखिये रावजी! मेरी तो अधिक इच्छा नहीं है। परन्तु...आप और मेरे सलाहकार कहते हैं कि एक विवाह मैं और करूँ। आपकी पुत्री चित्रकूटको एक उत्तराधिकारी राजकुमार देनेमें समर्थ हो तो भला मैं कैसे अस्वीकार कर सकता हूँ? मेरा भाग्य उसके साथ बँधनेसे उज्ज्वल होनेवाला हो तो... भले ही! ये त्र्यंबक भट्ट आये हैं, लग्नमुहूर्त देखकर बता दें!'

'जी! मेरीभी यही इच्छा है। इससे चित्रकूट एवं नागह्रदका संबंध अधिक सुदृढ़ हो जायगा।' रावने कहा।

'सम्राटके साथ गद्दीको शोभायमान करे ऐसे शस्त्र एवं शास्त्रका शिक्षण भी इसे दिया गया है।' रावकी रानीजीने कहा।

माँ-बापके प्रमाणपत्रसे ही यदि देखा जाय तो प्रत्येक पुत्र देवता समान एवं पुत्री देवकन्या समझ लेनी चाहिए। माताके अभिप्राय व्यक्त करनेके पूर्व ही मानसिंहने मीनाक्षीके सम्बन्धमें बहुत सी बातोंकी जानकारी प्राप्त कर ली थी। यह कहना अत्युक्ति होगी कि वह साम्राज्ञी बनने योग्य नहीं थी। इस वर्ष नागह्रदके रावको सकुटुम्ब निमंत्रण दे उन्होंने उसके लावण्यको भी देख लिया था। पुरुषकी-दृष्टिमें-पुरुषकी प्रथम दृष्टिमें—स्त्रीके लावण्यमें सब सद्‌गुण सन्निहित रहते हैं। और फिर लावण्यके साथ दूसरे गुण भी हों तो पूछना ही क्या? उस लावण्यमें चार चाँद लग जाते हैं! मानसिंहको सुन्दरी युवतियाँ भाती थीं। उनके यौवनकालमें तो प्रजाकी रूपवती कन्याओंको उनकी आँखोंसे बचा रखना पड़ता था। इस ढलते वयमें भी मीनाक्षी जैसी युवती उन्हें पसंद न आये, यह कहना उनकी रसिकतामें बट्टा लगाना होगा; यद्यपि अफीम, आसव एवं अत्यधिक स्त्री-सहवासने उनकी उपभोग शक्तिको अत्यंत क्षीण, क्षणजीवी एवं खिन्नता उत्पन्न करनेवाली बना दिया था।

परन्तु सम्राट पद—सम्राटपदका स्मरण—मानसिंहको आल्हादजनक

लगा। चारो ओर नई समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं, यह समझनेके लिए उनमें बुद्धिकी कमी नहीं थी। तथापि अपने सम्राट-पदमें उन्हें इतनी अधिक श्रद्धा थी कि इस शब्दके स्मरण मात्रसे उन्हें सभी कठिनाइयाँ दूर होती प्रतीत होती थी। उन्होंने अपनी जन्मपत्रिका मँगाई, त्र्यंबक भट्ट कुँवरी मीनाक्षीकी जन्मकुण्डली पहलेसे ही लेकर आये थे। अतः दोनोंका मेलापन कर अक्षर अंक लिखने लगे। कुछ ही देरमें त्र्यंबक भट्टके कपाल पर त्रिवली पड़ गई और वे गम्भीर विचारमें तल्लीन हो गये।

राव, रानी और मानसिंह भी विचारमें पड़ गये। एक ज्योतिषीने जो बात झटपट कह दी थी उसमें ये इतनी देर क्यों लगा रहे हैं? त्र्यंबक भट्ट ऐसे-वैसे ज्योतिषी तो थे नहीं जिनके गणनाकी अवगणना की जा सके। उन्होंने अनेक बार अंकोंको लिखा, मिटाया, उँगली पर गिना।

'भट्ट जी! क्या बात है? इतनी देर क्यों लगा रहे हैं?' मानसिंहने पूछा।

'सम्राटके भाग्यकी गणना भी तो सम्राटपदके योग्य ही होनी चाहिए?' सोलंकी रावने हँसकर कहा। भोजको राजाओंके विवाहमें कोई रस न था। वह दो-एक चित्र और ताड़पत्र पर लिखी पुस्तकें देख रहा था।

त्र्यंबक भट्टके मुखका गांभीर्य बढ़ता जा रहा था। गणना करते समय वे स्वयं ही किसीके बिना पूछे, सिर हिलाकर किसी नकारात्मक निर्णय पर आ रहे हैं, इसका सभीको भय लगा। बहुत देर तक गणना करते रहनेके बाद उन्होंने एक लंबी साँस ली।

'आपकी गणनामें क्या आता है?' रानीने पूछा।

'अन्य किसी ज्योतिषीकी सहायता लेना हो तो आप ले सकती हैं।' त्र्यंबक भट्टने कहा।

'क्यों? आप क्या किसीसे कम हैं? कितने ही सुप्रसिद्ध शिष्योंके आप गुरु हैं।' मानसिंहने कहा।

'फिर भी...मेरी गणनाका परिणाम...जरा विषम आता है।' त्र्यंबकभट्टने कहा।

'जो भी हो आप स्पष्ट कहें, संकोच न करें।' मानसिंहने कहा।

'संभव है कि फलादेश आपके मनके अनुकूल हो...किंतु एक महान् अड़चन आती है,..सबकी इच्छा हो तो इस अड़चनको ग्रह-शांति कर दूर कर लिया जाय।

'नहीं, नहीं, सच्ची बात जो हो वही कहिए' रावने कहा।

'कुँवरीके भाग्यमें क्या राज्य नहीं है?' रानीने पूछा।

'है...अटल, किसी महाराजा की...किसी सम्राट् की...मध्यप्रदेशके सम्राट्की...महारानी होनेके लिए ही इसका जन्म हुआ है।' त्र्यंबक भट्टने कहा।

'ये सभी बातें तो मिलती हैं...चित्रकूटके राजाके सिवा यह भला किसके लिए हो सकता है?' रावने पूछा।

'मैं भी यही सोच रहा था' त्र्यंबकभट्टने कहा। पर उनके ललाटकी त्रिवली ज्योंकी त्यों बनी हुई थी।

'इसे क्या पुत्रका योग नहीं है।' पुत्रीका हित सभी दृष्टिकोणसे देखनेवाली माँ ने पूछा।

'महापराक्रमी राजपुत्रकी माता होनेके लिए यह जन्मी है, यह इसके ग्रह स्पष्ट बता रहे हैं।'

'फिर बाधा किस बात की है? सूर्यके प्रकाश जैसी ग्रहोंकी सूचना होते हुए भी आप देर क्यों लगा रहे हैं?' माताने पूछा।

'एक उलझन मुझे सता रही है। इसपर आप सबको गंभीरतापूर्वक विचार करना होगा। मेरे कथनपर क्रुद्ध न हों तो मैं तभी सच्ची बात व्यक्त कर सकता हूँ।' ज्योतिषीजी ने सबकी जिज्ञासा अधिक जाग्रत की।

'आपको पत्रिकामें जो कुछ समझ पड़ता हो आप निःसंकोच तथा निडर हो कहें।' मानसिंह बोले।

'एक बार नहीं अनेक बार गणना कर मैंने देख लिया, कुण्डली भी मिलाई, भिन्न-भिन्न प्रकारसे ग्रहगति पर विचार किया किंतु सबका अद्‌भुत परिणाम गणनामें एक ही आता है। मैं स्वयं भी पूर्ण रूपसे समझनेमें असमर्थ हूँ नहीं...असंभव...'

'बात क्या है ? कुछ कहिए तो सही ?' रावने कहा।

त्र्यंबकने पुनः सिर हिलाया, मस्तकपर हाथ फेरा, पुनः गणना करके देखा और विवश हो हस्तमुद्रा कर कहाः 'सब तो ठीक है किंतु ग्रह कह रहे है कि आजकी तिथिके पहले ही...कुँवरीका विवाह...हो चुका है!'

'क्या ?' मानसिंह बोल उठे।

'क्या कहा ?' राव कुछ आगे बढ़े।

'बुद्धि तो ठिकाने है न ?' रानी और भी आगे बढ़ गईं।

'मैं यही विचार कर रहा था रानी जी, कि मैं होशमें हूँ या नहीं... नहीं-नहीं मैं होशमें हूँ और बुद्धि भी ठीक है...तथापि आश्चर्य अवश्य होता है...किंतु ग्रहफलकी मेरी गणना आज तक गलत नहीं हुई है...'

वज्रपात हुआ हो, इस प्रकार त्र्यंबक भट्टकी बात सुन सब लोग स्तब्ध हो गये। रावकी आँखोंमें जहर उतर आया। रानीकी भ्रकुटी चढ़ गई और मानसिंह पासही में रक्खी हुई बोतलमें से मदिरा उड़ेल कर गटगटा गये। ईरान-पारसिक भूमिके सुंदर द्राक्षोंसे तैयार की हुई यह मदिरा महाराजको भेंटमें मिली थी। कठिनसे कठिन परिस्थितिका सामना करनेके लिए यह महान् मदिरा रूपी शस्त्र राजाको मिल गया था।

'आज यह बात यहीं तक—मैं आराम करूँगा—कल फिर... त्र्यंबक भट्ट! आप पुनःगणना करके देखना।' कह कर मानसिंह आसन पर ही लेट गये!

सोलंकी राव, रानी और त्र्यंबक भट्ट बाहर चले गये। भोज भी खड़ा हो नमन कर जानेके लिए तैयार हुआ। उसे जाने न देकर मानसिंहने अपने पास बैठाते हुए कहा—'अभी मत जाओ।'

'परंतु...महाराज !...वैद्योंने आपको विशेष रूपसे आराम करनेके लिए कहा है' अंगरक्षकने कहा।

'मैं आराम ही कर रहा हूँ...भोज तू आसव लेगा ?' मानसिंहने पूछा और इसी बीच दूसरा प्याला भर कर मुँह बिचका कर पीते हुए मदिराके सुंदर स्वादका प्रमाण दिया।

'जी नहीं, महाराज ! ब्रह्मकर्ममें यह नहीं चल सकती।'

'क्षात्रकर्ममें तो चल सकती है ?' हँसते हुए मानसिंहने कहा।

'मुझे अभी तक इसकी आवश्यकता नहीं जान पड़ी है, महाराज !'

वाद्यके साथ तीन पूर्ण यौवना दासी-नर्तकियोंने खंडमें प्रवेश किया। एक सुन्दरी मानसिंहके पैरके पास बैठ उनका पैर सहलाने लगी, बाकी दोनों युवतियाँ वाद्यका स्वर मिलाने लगीं। महाराजने पुनः प्याला भरते हुए कहा:, 'एक सम्राट् मद्यका गुलाम बन गया है भोज ! छोड़नेका बहुत प्रयत्न किया...पर...असंभव...' कहते कहते महाराजने प्याला खाली कर दिया और निःश्वास लेकर भोजसे पूछा: 'तुम्हें संगीतसे शौक है ?'

'जी, साधारण !'

'सुनना है ?'

'जी नहीं महाराज ! गुरुकी आज्ञा है कि संगीत तप कर, उपवास कर सुनना।'

मानसिंहको हँसी आ गई। उनका अशक्त शरीर शराबके जोरदार असरके अधीन होता जा रहा था।

'मेरा तप तो यह...' कह कर लड़खड़ाते हाथसे मानसिंहने पैर सहलाती हुई दासीके मुखपर हाथ फेरा। दासीके मुखपर एक तिरस्कारकी रेखा दौड़ गई।

'अब आज्ञा दीजिए, महाराज !' कहकर भोज उठ खड़ा हुआ।

'इसे जो माँगे दो...सँभालो...मेहमान नहीं...मेरा पुत्र है...' प्रलाप करते हुए मानसिंह आसन पर ही पुनः लुढ़क गये। दासियोंने

उन्हें उठाकर ठीकसे सुला दिया। वाद्य बज रहे थे साथ ही संगीत भी चल रहा था। बाहर आकर भोजने अपने साथ चलने वाले अंगरक्षकसे पूछा, 'यही हमारा राजमहल है और यही हमारे राजा हैं ?'

'आपको अच्छा नहीं लगा क्या ?' अंगरक्षकने विरोधी स्वरमें पूछा।

'इनमें ऐसा कौनसा रुचिकर तत्त्व है, जो अभी तक मुझे नहीं मिला ?'

'आपपर कृपा हुई यह क्या कम है ?'

'मैं किसीकी कृपाका असरा रखता ही नहीं। यह राजा राज्य-पालन और प्रजा-पोषण भला क्या करेगा ?'

'आपके यह विचार महाराजको सुनाऊँगा।' जरा चौंक कर अंगरक्षक ने भोजको धमकाया।

'महाराज चैतन्य रहते ही कब हैं, जो मेरी बातोंको समझ सकें ?'

'क्यों ?'

'मैं स्वयं ही अपना मत महाराजको सुनाऊँगा, आपको कष्ट करनेकी आवश्यकता नहीं।'

'जरा इधर आ जाइए, महारानी पधार रही हैं।' अंगरक्षकने कहा और सामनेसे तीन-चार दासियोंके साथ महारानी आती हुई दीख पड़ीं। महाराज मानसिंहसे अधिक लम्बी, प्रशस्त एवं गंभीर महारानी को दोनोंने नमस्कार किया जिसे स्वीकार किये बिना भोजपर तनिक दृष्टिपात कर वे आगे बढ़ गईं।

'महारानी नमस्कार स्वीकार नहीं करतीं ?' भोजने पूछा।

'आपपर दृग्पात किया, आपने नहीं देखा ?'

'हूँ-ऊँ !' भोजने कुछ उत्तर नहीं दिया। राजपुरुषोंकी जरा-सी दृष्टि भी यहाँ कृपा समझी जाती थी ! प्रणाम या नमस्कार स्वीकार करनेका बड़प्पन निर्माल्य राजाओंका अधिकार बन गया था।

राजमहलके एक विभागमें भोजको स्थान दिया गया। वह आरामके सभी साधनोंसे सुसज्जित था। वाली और देव यह स्थान पाकर बड़े प्रसन्न

थे। सुन्दर भोज्य पदार्थ आने पर उन्होंने मानवोचित-आतुरता भी प्रदर्शित की। परन्तु भोजने कहा, 'आपलोग भोजन कर लें। मैं इन पदार्थोंको न खा सकूँगा।'

'क्यों ?'

'ऐसे अन्नकूटकी अपेक्षा अपने हाथसे बनी रसोई खाना मुझे अधिक प्रिय है।'

'यह राजमहल है खाखियोंका मठ नहीं। और खाखी भी तो भण्डारा करते हैं।'

उनका मन रखनेके लिए भोजने साथमें बैठ कर भोजन किया किंतु उसका मन गंभीर विचारोंमें तन्मय था। यह तो कहा ही नहीं जा सकता कि भोज महा आनन्दी पुरुष था। गांभीर्य तो सदैव उसके चेहरे पर विद्यमान रहता जो कभी-कभी विषादका भी रूप धारण कर लेता। इस समय उसका विषाद अत्यधिक बढ़ गया था। मुस्लिम शक्ति दिन-प्रति दिन बढ़कर उमड़ती लहराती उत्तरोत्तर आगे बढ़ती चली जा रही थी। हिन्दू राजा, महाराजा एवं सम्राटोंका इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं था। वे भोग-विलासमें मस्त थे। उनके लिए राज्य भोगविलास-का एक साधन मात्र था। इन राजाओंको इस बातका तनिक भी ध्यान न था कि भोगविलास रूपी उपवनको झुलस कर वीरान बना देनेवाली लू प्रति क्षण निकट आ रही है। आज तो उसे प्रत्यक्ष अनुभव हुआ कि मुस्लिम धमकीको समझने वाला राजा भी नशेमें चूर हो धमकीको भूल जाता है। मुसलमानोंकी धार्मिक, एवं सैनिक-विजयकी सीमाको उनके औलिया पहलवान एवं उनके व्यापारी जासूस बढ़ाते जा रहे हैं। इस स्पष्ट सत्यकी ओरसे सभीकी आँखें बन्द थीं।

इस भयंकर अधःपतनकी ओर सर्व प्रथम हारित मुनिका ध्यान आकृष्ट हुआ! उन्होंने अग्रसर होनेवाले प्रवाहके अवलोकनार्थ भोजको पश्चिम सीमापर भेजा। वही प्रवाह-वेगसे मध्यभारत तक उमड़ता

चला आ रहा है, यह दिखानेके लिए भोजको एक दिन भी आराम न करने देकर चित्तौरगढ़ रवाना कर दिया। मैदानी खेलोंमें उसी खाखीने भोजको विजय दिलाई। यह सब किस बातका सूचक था?

परन्तु यहीं रुकना नहीं था। जो कार्य राजा नहीं कर सकता उसे प्रजाको करना आवश्यक है! प्रजाको यदि राजा निरर्थक जान पड़े तो गद्दीसे हट जाना राजाका कर्त्तव्य है। इस्लामी प्रजाने खलीफाके वंशको नहीं, व्यक्तिगत शक्तिको राज स्थान दिया है। यह भूलने योग्य बात नहीं थी!

और इस्लामियोंका आज्ञा-पालन? सिंधु प्रदेशके विजेता मुहम्मद कासिमने मालिकके माँगते ही अपना मस्तक उतार कर भेंट कर दिया!

देव-बाली दोनों सो रहे थे। भोजको न तो पलंग अच्छा लगा, न बिछौनेकी कोमलता। पलंगका मुलायम उतार-चढ़ाव उसे पसंद नहीं आया। वह उठकर कमरेमें चहल कदमी करने लगा। खंडमें एक खिड़की थी। वह उसमेंसे बाहरका प्राकृतिक सौन्दर्य देखने लगा। दूर पर्वतश्रेणी पर तारिकाएँ हँस रही थीं। वे किस पर हँस रही थीं? विदेशी परधर्मी आक्रमणको न देखने वाले तथा सुखकी निद्रा सोने वाले आर्यावर्त्त पर तो नहीं?

एक तारा टूट कर गिरा, दूसरा गिरा! उसने टूटे हुए तारोंको अदृश्य होते हुए भी देखा? नहीं, वे अदृश्य हुए ही नहीं! वे दोनों तो उसके पासकी खिड़कीमें आकर स्थिर हो गये!

'ये तारकाएँ थीं या किसी सुंदरीकी दो आँखें?'

'अकेले हैं?' पासकी खिड़कीमें से एक सुंदरीका मंद स्वर सुनाई पड़ा।

'जी हाँ, बिलकुल अकेला।'

'मित्र कहाँ है?'

'सोये हैं।'

'मुझे पहचाना ?'

'जी नहीं'

'तो...इस खिड़कीमें आ जाइए।'

'दोनों खिड़कियोंके बीच पर्याप्त अंतर है'

'पार हो जायगा। अपने मित्रोंकी रस्सी ले लीजिए, साहस तो होगा ही ?'

'रस्सी भी है, साहस भी है, तथापि...भय लगता है।'

'किसका ?'

'आपका।'

'मेरा ? भय तो मुझे लगना चाहिए !' मंद-मंद हँसकर युवतीने कहा।

भोजको लगा जैसे उसने इस युवतीको पहले कभी देखा है।

'तब मैं जरूर आऊँगा।'

कह कर भोजने धीरेसे रस्सी लाकर खिड़कीमें बाँध दी और उसका दूसरा छोर दूसरी खिड़कीमें बाँधनेके लिए फेंक दिया। छोरके बँधते ही रस्सी पर लटक कर भोज दूसरी खिड़कीमें पहुँच कर युवतीके पास खड़ा हो गया।

'कहिए, मेरी क्या आवश्यकता आ पड़ी ?'

'आपकी आवश्यकता तो जीवन भर है। कहिए, स्वीकार है ?'

'सत्कार्यमें सदैव मुझे सहायक पाइयेगा।'

'सत् असत् तो मैं जानती नहीं ! मुझे तो इसमें विधिका निर्माण दीख रहा है।'

'विधिका निर्माण होगा तो क्या हम दोनोंमें से कोई उसे टाल सकता है ?'

'आपका आभार मानूँ ?'

'क्यों ? अभी तक तो मैंने ऐसा कोई कार्य किया नहीं जिससे आपका भय टल गया।'

'निर्माणको स्वीकार कर लेनेकी उदारतासे ही मेरा भय टल गया !'

'मेरी समझमें नहीं आया, कुँवरी !...आपतो...?'

'नागद्रहकी राजकुँवरी...'

'पहचाना...लेकिन...आप तो चित्तौरकी महारानी बननेवाली हैं?...'

'यह कौन जाने...किंतु मानसिंहकी महारानी तो मैं नहीं बनूँगी।'

'इसमें तो...ज्योतिषकी दृष्टिसे कुछ...बाधा आ पड़ी...'

'आप जानते हैं क्या बाधा आ खड़ी हुई?'

'कोई...ग्रह देखते हुए...आपका विवाह...'

'पूरा-पूरा कहिए, डरिए मत। मेरा विवाह हो चुका है ऐसा ग्रहोंने कहा। यह बिलकुल सत्य है।'

'तो...आपका बलपूर्वक मानसिंह अथवा किसी दूसरेके साथ विवाह करनेका षड्यन्त्र रचा जा रहा है?'

'जी हाँ, और मुझे अपना विवाह-विच्छेद करना कभी भी स्वीकार नहीं।'

'इस कार्यमें मेरी आपको पूर्ण सहायता प्राप्त होगी।'

'यह तो आपने पूछा ही नहीं कि मेरा विवाह किसके साथ...'

'तो क्या पूछ सकता हूँ कि आपने...किसके...साथ विवाह करनेका निश्चय किया है?' वीरत्व सदा ही स्त्री पक्षमें खड़ा रहता है। भोज अब सुप्रसिद्ध वीर बन गया था।

'विवाह करना नहीं है। वह तो हो चुका है। विधिका विधान... बताऊँ किसके साथ?'

'जी हाँ, जिससे मैं सोच सकूँ कि आपका मैं किस प्रकार सहायक हो सकता हूँ...यद्यपि मैं एक सामान्य कक्षाका, गुरु-आश्रम-शोधक ब्राह्मण हूँ...तथापि यदि कोई अड़चन न हो तो बताइए।'

'बताऊँ? आपको खबर न होने पर भी...मेरा विवाह आपके साथ हो चुका है!'

'राजकुमारी! आप क्या रही हैं? कहाँ मैं और कहाँ आप?

एक छोटेसे प्रसंगवश लौह-स्तंभ काट दिया, इससे आप अपनेको न्योछावर न करें। यह तो......'

'इसके पूर्व ही मैं अपनेको न्योछावर कर चुकी हूँ...हिंडोलोत्सवकी रात्रिमें...आपके बाँधे हुए झूलेपर भूलसे बैठ गई उसी क्षणसे...और आज स्तंभ काटते हुए देखा तब तो यह निश्चित हो गया...आपका विचित्र पुष्प अपने पास मैंने सुरक्षित रख छोड़ा है...देखिए।'

'आपका एक अदना गुलाम भी जिसमें न रह सके, ऐसी झोपड़ीमें मैं रहता हूँ...राजकुमारी!'

'यह सब मुझे नहीं सुनना है...आपको सच्ची बात बता दी। अपनी कुलरीति कह दी...शायद ही कभी यह प्रसंग उपस्थित होगा। किंतु उपस्थित होने पर उसे स्वीकार करनेसे मुझे कोई पीछे हटा नहीं सकता।...

'राजकुमारी! मुझे सोचनेका समय दीजिए...'

'आप भले ही सोचें मैं, तो निर्णय कर चुकी हूँ। अपना भविष्य मैंने आपके हाथ उसी समय अर्पण कर दिया। इतना कहनेके लिए ही आपको बुलाया था...अब आप जैसे आये उसी प्रकार जा सकते हैं।' कहकर राजकुमारी मीनाक्षीने भोजका दक्षिण हाथ पकड़कर छोड़ दिया। शून्य बना हुआ भोज कुछ देर तक मीनाक्षीको देखता रहा...मानों कोई अद्भुत समस्या उसके समक्ष आ खड़ी हो!

दूर किसी चौकीदारकी बाँग सुनाई दी जिसे सुन भोज जाग्रत हुआ। रस्सीसे लटकता हुआ वह अपनी खिड़कीमें पहुँचा। मीनाक्षीने अपनी खिड़कीमें बँधी रस्सीके छोरको खोल दिया। परन्तु खिड़कीमें पैर रखते ही भोजने देव बालीको नंगी तलवार लिए खड़े देख पूछा—'क्या है?'

'आपकी तलवार चुरानेका प्रयत्न...' देवने कहा।

'और आपकी जान लेनेका षड्यंत्र...' बाली बोला।

'तलवार गयी तो नहीं?' भोजने पूछा।

'जी नहीं !'

'तो मैं अभी मर भी नहीं सकता। अब शांतिसे कहो...'

'यहाँसे, बापा, भाग चलिये ! यहाँ कुशल नहीं है।'

'भारतवासीके लिए न अपने घरमें सुरक्षितता है न बाहर ! तब सुरक्षा है कहाँ ?'

'पर्वतमें या वनमें, जहाँ किसीका राज्य न हो।' देव बोला।

'अथवा जहाँ कमसे कम राज-खटपट न हो ! कैसे दाँव-पेंच, कैसी, ईर्ष्या ? कैसा जासूसी जाल ? क्यों और किसके लिए ?' बाली बोल उठा।

'हम सबको जागते रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। एक-एक करके पहरा देनेसे काम हो जायगा।' कह कर भोज गद्दी पर लेट गया।

'समूचा महल रात भर जागता है बापा !' देवने कहा।

'केवल चित्रकूटके महाराजको छोड़ कर !' बाली बोला।

'यह अच्छा है कि महाराज सोते रहते हैं !' भोजने कहा।

'क्यों ? सोया सो खोया। सोने वाले राजाका राज्य हाथसे निकल जाता है।'

'और रानी भी !' जरा हँसकर भोजने वाक्य जोड़ दिया। मित्रोंको थोड़ा आश्चर्य हुआ। भोज शायद ही कभी स्त्रियोंका उल्लेख करता था अथवा करने देता था। उसमें भी स्त्री-विषयक हँसी-ठट्ठा अथवा ओछी बातें तो वह सहन करही नहीं सकता था। उसके मुखसे राजरानियोंके संबंधमें ऐसी हलकी बात सुनकर मित्रोंका चकित होना कोई आश्चर्य नहीं कहा जा सकता था। देवने बातको आगे बढ़ानेके लिए कहा-'बापा ! आज रानियोंकी ओर चित्त कैसे चला गया ?'

'चित्तौरकी महारानी होनेवाली एक राजकुमारीने तो मेरे साथ मेरे अनजानेमें ही विवाह भी कर डाला !' उठकर भोजने कहा।

'हमें खबर भी नहीं ?' बालीने बुरा मान कर कहा।

'अरे भाई ! मुझे खबर हो तब न ?' भोजने लाचारी प्रदर्शित की।

'आपका विवाह हो और आपको पता न हो ?'

'मैं सच कह रहा हूँ ! और...स्वप्नमें भी न सोचे हुए, अनजान विवाहकी विपत्ति मेरे ही समान आप लोगोंके भी गले मढ़ जाय तो आश्चर्य नहीं।' भोजने हँसते हुए कहा।

मित्रोंका आश्चर्य बढ़ गया। आजके विजयसे भोजका मन विचलित तो नहीं हो गया ? अथवा रनिवासकी किसी यौवनाने उसके पराक्रमपर अपने हृदयकी कुरबानी कर दी ? या कहीं उसका सतत संयमी जीवन संयम तोड़नेके लिए तड़फड़ा रहा है ? उन्हें सन्देह होने लगा।

परंतु भोजने धीरे-धीरे सब बातें बताईं। नागदाके दोलोत्सवकी रात्रिमें पुरुष द्वारा बाँधे गये हिंडोले पर जाने अथवा अनजानेमें बैठ जाने वाली कुमारी हिंडोला बाँधने वाले की परिणीता हो जाती है। इस प्रथाका विचित्र परिणाम क्या हो रहा है, इस ओर भोजने मित्रोंका ध्यान आकृष्ट किया। राजकुमारीके ग्रह भी उसे परिणीता युवती रूपमें प्रकट कर रहे हैं। मानसिंह एवं राजकुमारीके माता-पिता ग्रहोंको निष्फल बनानेके प्रयत्नमें लगे हुए हैं। राजकुमारी स्वयं मानसिंहके साथ विवाह-सूत्रमें बँधना नहीं चाहती। इन संयोगोंमें कुँवरीने भोजको पहचान कर, उसकी शक्तिपर मोहित हो, भोजके साथ विवाह स्वीकार कर भोजको इन सब बातोंसे परिचित कराया। भोजने यथारूप सभी बातें मित्रोंको कह सुनायी। साथ ही धमकी भी दी कि 'जो मुझ पर बीती है वही तुम लोगों पर भी बीतने वाली है !'

'मतलब ?'

'हिंडोले पर अकेली मीनाक्षी ही नहीं, उसकी दो सखियाँ भी बैठी थीं।'

'इससे क्या ?' बाली बोला।

'भीलोंसे क्षत्रिय कन्याएँ विवाह नहीं कर सकतीं।' देवने समर्थन किया।

'मुझ जैसे ब्राह्मणको तो छोड़ा नहीं, तुम लोग कैसे बचोगे जो क्षत्रियोंसे किसी भी बातमें कम नहीं ?'

'आपकी संगतिमें शिक्षा भी अच्छी प्राप्त करली है...इससे क्षत्रियोंसे हम किसी प्रकार हीन तो नहीं ही ठहराये जा सकते।' देव बोला।

'यह सब तो ठीक है किंतु मीनाक्षीके ग्रह यदि उसे चित्तौरकी महारानी बनाने पर तुले हों तो...बापा! चाहे स्वीकार करें या न करें आज नहीं तो कल आप चित्तौर की गद्दीपर अवश्य बैठेंगे!' बालीने अत्यंत गंभीरता पूर्वक विचार कर समूचे प्रसंगका रहस्योद्‌घाटन करते हुए कहा।

'बस, बस तुम दोनों भील भाइयोंको तो जब देखो लूट-खसोटकी ही पड़ी रहती है!...' बाली की बात हँसीमें उड़ाते हुए भोजने कहा।

'मानव भले ही झूठा हो जाय, आकाशके देवता तो झूठे नहीं हो सकते!' देवने बालीके कथनकी पुष्टि की।

'महाराजको संतान कहाँ है ?'

'सगे संबंधियोंमें पर्याप्त संख्यामें उत्तराधिकारी मिल जायँगे।'

'पीछें झगड़ेंगे आपसमें, बापा! आपका भविष्य है उजवल। भले ही आप इस समय विश्वास न करें।'

'देव, तुम कदाचित जानते हो कि मैंने गद्दीपर न बैठनेका निश्चय किया है ?' भोजने सबको विस्मयापन्न कर देने वाला निश्चय प्रकट किया।

'बापा! आप किसी बातका निश्चय बहुत समझ-बूझ कर किया करें। विवाह नहीं करूँगा यह आप नित्य कहा करते थे और आज रातमें ही विवाह कर बैठे!' देव बोला।

'पत्नीके समान राजगद्दी भी गले पड़ गई तब ?' बालीने पूछा।

'यह राजगद्दी मेरी नहीं होगी!' भोजने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया।

यह सुन लेनेपर देव-बाली भोजके आस-पास राजदंड, राजमुकुट, राजछत्र एवं राज-सिंहासनकी कल्पना करने लगे।

१०

महाराज मानसिंह दूसरे दिन बहुत देरसे उठे। उठते ही उन्होंने भोजको याद किया। नव-निर्धारित विवाह की बात वे प्रायः भूल-से गये थे। भोजका बल एवं शस्त्र-पटुता उनके हृदयमें बद्धमूल हो खलबली मचाये हुए थी। उन्हें अपने यौवनका स्मरण आ रहा था। इस यौवनमें उन्होंने अनेक स्वप्न देखे थे—शस्त्रनैपुण्य, चक्रवर्तीपद, धर्मोद्धार एवं कलापोषणके। किंतु इनमेंसे एक भी स्वप्नके फलीभूत होनेके पूर्व ही महाराज मानसिंहका यौवन कामिनियोंके सौंदर्योपभोग एवं मद्यपानसे उत्पन्न निद्रा—तंद्रामिश्रित मोहमयी सृष्टिके अनुभवमें ही बीत गया। यौवन जानेके बाद नहीं आता। किंतु उसका स्मरण भी न आये ऐसी विस्मृतिके गर्भमें महाराज मानसिंह नहीं गिर गये थे। भोजको देख उन्हें अपना यौवन पुनः पुष्पित होता-सा जान पड़ा। निद्राभंग होते ही उनके मनमें भोजका विचार आया और उन्होंने उसे बुलानेके लिए आदमी भेजा।

'भोज! तुम्हें यहाँ अच्छा लगा या नहीं?' भोजका नमस्कार स्वीकार करते हुए महाराज ने पूछा।

'नहीं महाराज! यह राजमहल है! मैं तो पर्णकुटी एवं आश्रमोंमें निवास करनेका अभ्यासी हूँ, मुझे यहाँ अच्छा नहीं लग सकता, महाराज!'

उत्तर सुनकर मानसिंहको हँसी आ गई। दर्भासनपर बैठने और शयन करने वालेको मखमली गद्दी पहले अवश्य ही चुभती है।

'खैर रहते रहते आदत पड़ जायगी।' मानसिंहने हँसते हुए कहा।

'मैं तो आज्ञा लेने आया हूँ महाराज! आपका आभार मानता हुआ अब मैं बिदा चाहता हूँ!'

'तुम्हें बिदा नहीं मिल सकती। मुझे अपनी सेना सुधारनी है। मैं तुम्हें अपना सेनापति बनाना चाहता हूँ।'

'महाराज ! शीघ्रता अच्छी नहीं । आपको मेरा—मेरी शक्तिका परिचय नहीं है...'

'किंतु मुझे अपने सैनिकोंकी शक्तिका परिचय तो है न !' हँसकर महाराज बोले । प्रभात कालीन शीतल हवामें महाराज की बुद्धि ठीक काम कर रही थी ।

एकाएक वैद्यराजने आकर स्वर्णके कटोरेमें कोई स्वादिष्ट पेय महाराजके सामने रखा ?

भोजके मुखपर विरक्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही थी । महाराजने हाथ आगे नहीं बढ़ाया । वैद्यराज कटोरा लिये महाराजके सामने खड़े रहे ।

'भोजके सामने कोई पेय मुझे न दें ।' महाराजने वैद्यसे कहा

'महाराज ! यह तो पौष्टिक शरबत...'

'भोज पान कर सकेगा ?'

'जी नहीं महाराज ! अनभ्यस्त युवक इसे सहन नहीं कर सकेगा ।'

'तो अभी अलग रखो । देखो भोज ! आजसे सैन्य संचालनका भार तुम्हारे सिरपर है ।'

'महाराज ! पहले आप अपने सामंतोंसे पूछें, मांडलिकों एवं मंत्री लोगोंसे सलाह ले लें फिर मुझे यह काम सौंपें । मेरी सैन्य रचनामें रुमझुम नाचने वाले नटवर नहीं रह सकेंगे...चक्रधर कृष्ण, त्रिशूलधारी शिव एवं सिंहवाहिनी शक्ति मेरी सेनाका आदर्श होगा ।' इच्छा न रहने पर भी भोजके मुँहसे निकल गया ।

'इसीलिए तो मैं तुमसे कह रहा हूँ । चित्रकूट पर वज्रकोटकी रचना करो और मेदपाटके नरनारियोंका शरीर वज्र जैसा बनाओ...आज दरबारमें संध्या समय ही आज्ञा पत्र भेजूँगा...'

'मैं बहुत ही छोटा हूँ, महाराज !'

'तुम्हें यहाँसे जाना नहीं है, यह तो निश्चित है ।' महाराजने आज्ञा दी । भोज बाहर निकल आया । चलते-चलते उसने देख लिया कि उससे

शरमाते हुए महाराज मानसिंहने वैद्यके हाथसे स्वर्णका कटोरा लेकर मुँहसे लगा लिया।

उत्सवमें आये हुए अनेक मांडलिक एवं सामंतगण चले गये। कुछ अभी रह गये थे तथा अनेक सामंतोंकी तो चित्रकूटमें हवेलियाँ थीं। भोजको सेनापति चुननेवाली अथवा सैन्य-सुसज्जाके लिए अधिकार देनेवाली राजाज्ञा प्रति दिन राह देखने पर भी उसे नहीं मिली। आठ दिन हुए, दस दिन हुए, पंद्रह दिन हुए। भोजको केवल आलस्यमें ही समय बिताना पड़ रहा था।

पंद्रहवें दिन पुनः महाराजने उसे याद किया। 'सैन्यका काम चल रहा है भोज?'

'महाराज, मुझे कुछ पता नहीं। मैं तो यहाँ रहकर आपका भार ही बढ़ा रहा हूँ।

'तुम्हें मेरा आज्ञापत्र नहीं मिला?'

'कैसा आज्ञा पत्र? मुझे तो नहीं मिला...।'

'अरे! तुम्हें मेरा आज्ञापत्र मिला ही नहीं?...देखो...आज कौन सी मिति है?' महाराजने अंगरक्षकसे पूछा। राजा महाराजा मिति, तिथि, तारीख भला कहाँ याद रख सकते हैं!'

अंगरक्षकने मिति बताई।

'आज पंद्रह दिन हो गये! और तुम्हें मेरा आज्ञापत्र नहीं मिला?... आज रात्रिमें दरबारमें तुम आना।'

किंतु...महाराज! दरबारमें आप न पधारें तब...मेरा आना निरर्थक होगा।'

महाराजको कुछ कुछ याद आया कि पंद्रह दिनोंसे दरबारमें जानेकी इच्छा करते हुए भी किसी दिन वे दरबार न जा सके थे। संध्या समय नशे की ऐसी तलब लगती थी कि सुरापान बगैर उनसे रहा ही नहीं जाता था। और सुरापानके पश्चात् घरबार और दरबार एक बन जाता था!

'आज ध्यानमें रखो कि मुझे दरबारमें जाना ही है...शामको मुझे कोई भी पेय न देना।' महाराजने आज्ञा प्रदान की।

'आप माँगें तो ?' अंगरक्षने अपनी सलामतीका विचार किया। व्यसनी मालिक दोधारी तलवारका अवतार समझे जाते हैं।

'मैं माँगूँ तब भी नहीं! कितनी बार कहना होगा ?' मानसिंह क्रुद्ध हो बोले।

उस रात्रिमें दरबार लगा, महाराज दरबारमें पधारे और अपने मंत्रियोंसे उन्होंने जवाब तलब किया 'अभीतक सैन्य-रचनाका आज्ञापत्र भोजको क्यों नहीं मिला ?'

'यह आज्ञापत्र लौटानेकी जरूरत है, महाराज!' मंत्रीने कहा।

'यह बात थी तो मेरे सामने पेश क्यों नहीं किया गया ?'

'पेश करता किंतु...महाराजको जरा भी कष्ट न दिया जाय ऐसी वैद्यराजकी सलाह थी।'

'अभी तुरन्त वह आज्ञापत्र भोजको दीजिए!' महाराजने कहा।

'महाराज पुनः विचार करें तो अधिक अच्छा होगा।'

'कारण ?'

'भोज एक कुशल सैनिक होगा...है...परंतु सैन्य-व्यवस्थाका उसे अनुभव है या नहीं यह हमें ज्ञात नहीं है।' दूसरे मंत्रीने कहा।

'साथही अपने सामंतपुत्र एवं सुविज्ञसैनिक ऐसे बिलकुलही अनजान नये, अनुभवहीन छोकरेका नेतृत्व स्वीकार करेंगे, या नहीं, यह प्रश्न भी विचारणीय है।' किसी सामंतने कहा।

महाराजकी आंखोंमें एक ज्वाला-सी चमक गयी।

इतनेमें एक मंत्रीने कहा, 'यह सब तो ठीक, मुख्य कारण दूसरा ही है...अति गंभीर है।'

'गुप्त विभाग की सूचना है कि एक जबर्दस्त सैन्य लेकर एक मुस्लिम सेनापति हमारे मेदपाट पर बढ़ा चला आ रहा है...'

'तब तो मेरी आज्ञाका शीघ्रातिशीघ्र पालन किया जाना और भी आवश्यक है। देखा नहीं कि भोजके हाथमें यश लिखा हुआ है ?'

'महाराज ! व्यक्तिगत दक्षता एक बात है और सैन्य-व्यवस्था दूसरी। प्रसंग भयंकर है, इसमें...'

'गत पाँच वर्षोंमें मेरे मंत्रि-मंडलने मेरी एक भी आज्ञाका पालन नहीं किया...' महाराजने कठोरतासे कहा।

'हमारे साथ अन्याय किया जा रहा है, महाराज ! पाँच वर्षोंमें महाराजने पाँच हुक्म भी नहीं दिये हैं' एक मंत्रीने कहा।

'अच्छी बात है तो यह मेरा अंतिम हुक्म है। इसे मान्य करना ही पड़ेगा !' दिनों-दिन निर्बल होने वाले सत्ताधीश सत्ता चलानेमें अधीर बन जाते हैं।

'हम तो आज्ञाधीन हैं ही...किंतु...ऐसी अवस्थामें युद्धका उत्तर-दायित्व हमपर न होगा।'

'भोज तुम कुछ कहना चाहते हो ?' महाराजने पूछा।

'जी नहीं महाराज ! किंतु मंत्रियोंकी सलाह विचारणीय है।'

'तुझे भी मेरी आज्ञाका पालन नहीं करना है, क्यों ?...'

'यह बात नहीं है, महाराज ! क्षमा कीजिए। मैं तो एक सैनिकके रूपमें भी काम करनेके लिए तैयार हूँ। मेदपाटके घ ट एवं अरावली पहाड़ीकी घाटियोंमें से एक मुझे और दूसरी दो मेरे दोनों मित्रोंको सौंप दीजिए। हम अकेले एक-एक मास तक उसकी रक्षा करेंगे...जीवन रहने तक। मैं तो यह कह रहा था...' भोजने स्पष्ट किया।

'शाबाश ! अब और कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है। मैं स्वयं तुझे सेनापतिके वस्त्र देता हूँ। जिसे मेरी आज्ञा मान्य न हो, उसकी सेवाकी मुझे आवश्यकता नहीं है।' कह कर महाराजने भोजको पोशाक अर्पणकर उच्च स्थानपर बैठाया। समस्त दरबार-मंडलके मुखपर असंतोष विराज रहा था। महाराजको सिंहासन, गद्दी और मान अवश्य मि.ता

था किंतु उनकी कोई विशेष गणना नहीं दिखाई पड़ती थी। राजाके बगैर किन्तु राजाके हुक्मसे राजकार्य चलता था। और अनेक बार तो राजाके हुक्म बिना भी चलता था। राजाकी उपस्थितिकी राजकर्मचारियोंको कोई परवाह नहीं थी। मुखपर स्पष्टतः मंत्रियों एवं सामंतों द्वारा असंतुष्टता व्यक्त किये जाने पर भी भोजने उठकर महाराजको नमन कर कहा 'महाराज! इस क्षणसे मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मेवाड़की भूमि वीर एवं वीरांगनाओंकी जन्मभूमि बनेगी। इसी कार्यके लिए मैं जीवन धारण करूँगा और इसीमें अपना जीवन अर्पण कर दूँगा!'

प्रसन्न हो मानसिंह अपने आवासमें गये। अपनी आज्ञाका पालन करानेका उन्हें आज अत्यधिक आनंद था। नशेकी तलब बढ़ती जा रही थी। आनंद भी नशेको स्मरण करता है और गमगीनी भी। आवासमें पहुँचते ही नित्यक्रमानुसार नशा ले गर्वपूर्वक वे बोले 'आज मैंने नया सेनापति नियुक्त किया।'

'जी, महाराज! उस तलवारिया छोकरेको नियुक्त किया न?' महाराजके भोजन-पानीकी नियमित व्यवस्थापर नियुक्त वैद्यराज बोले।

'हाँ उसका नाम भोज है।'

'छोकरा दिखाई पड़ता है तो पानीदार...किंतु...'

'किंतु क्या? कोई शंका है आपके मनमें?'

'जी, थोड़ी है तो अवश्य!'

'क्या?'

'मंत्री एवं सामंतगण इसे मान्य न करें तो यह क्या करेगा?'

'मेरी आज्ञा है। मंत्री एवं सामंतगण नहीं मान्य करेंगे तो मैं सबको राज्यसे निकाल बाहर कर दूँगा।'

'इस छोकरेको धीरे-धीरे बढ़ाया होता तो कोई बात खड़ी न होती...'

अंगरक्षकने आकर सूचना दी, मंत्रीश्वर पधार रहे हैं।'

मंत्रीश्वरोंने उपस्थित हो महाराजके पास निवृत्त होनेकी माँग की।

मानसिंह घबराकर भोजकी नियुक्तिकी आज्ञा रद्द कर देंगे, ऐसी आशा रखने वाले मंत्रिमंडलने दृढ़ स्वरमें उत्तर सुना 'अच्छी बात है ! आजसे मैं आप लोगोंको निवृत्त करता हूँ ।'

व्यसनी राजा व्यसनकी धुनमें कभी-कभी बलवान बन जाते हैं !

'राज्यके सिरपर भयंकर विपद मँडरा रही है...मुस्लिम सैन्य आ रहा है...और हमारे सामंत सैन्यकी तैयारी करना अस्वीकार करते हैं।'

'कोई चिंताकी बात नहीं । सामंत गण इसी क्षणसे अपनी जागीरसे हाथ धोते हैं, उन्हें सूचित कर दीजिये...कौन है यहाँ ? भोजको बुलाओ ।' महाराजने आज्ञा दी ।

'नशेमें उन्हें खूब जोश आ गया था । आज्ञा देकर महाराजने तकियेपर मस्तक रख दिया और मंत्रीमण्डलको निवृत्तिकी आज्ञा मिल जाने पर भी वह वहीं डटा बैठा है, यह वे भूल गये । एक मंत्रीकी ओर आँख मार र वैद्यराजने महाराजके मुखके पास कोई पौष्टिक पदार्थ रख दिया जिसे महाराज जीभ चपचपाते हुए पी गये ।

महाराजकी आज्ञा मिलते ही भोज अपने खंडसे बाहर निकला । उसके साथ खाखी भैरवनाथ भी बाहर आये । विलग होते समय खाखीने कहा 'वत्स ! जो मैंने कहा उसे ध्यानमें रखना ।'

'जी ! मैं सैन्य-विहीन सेनापति नहीं हूँ, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है !'

'इतना ही नहीं, यह सैन्य विचित्र है, खाखीओंका है, मृत्युको घोल कर पी जाने वाले निस्पृह जनोंका है ।'

'कब तैयार हो सकेगा ?'

'जब तू कहे तत्क्षण...मैं चाहता हूँ कि उषःकालमें ही तू इस सैन्यके साथ निकल पड़ । इस्लामी आक्रमण जबरदस्त है और नजदीक भी पहुँच गया है ।'

'कहाँ एकत्र होगा ?'

'जहाँ शंख ध्वनि करेगा वहीं एकत्र हो जायगा...यहीं, चित्रकूटमें

ही यह पड़ा हुआ है...यह शंख अपने पास रख, जरूरत पड़नेपर फूँकना...' कहकर प्रचण्ड साधु भैरवनाथ राजमहलसे बाहर निकल गये और भोज महाराजके पास पहुँचा।

नशेमें भी मानसिंहका मन भोजके लिए जाग्रत था। भोज आ गया, यह सुनते ही महाराजने आँखे खोलकर कहा 'भोज! तू जानता है कि सेना लेकर तुझे कब निकलना है?

'जिस क्षण महाराजकी आज्ञा हो।'

'तुझे कब निकलना ठीक जँचता है?'

'सूर्योदयके पूर्व सैन्यके साथ मुझे निकल जाना चाहिए। शत्रु-दल की किस स्थानपर रोकना होगा, इसका मैंने निश्चय कर लिया है।'

'इतनी जल्दी?'

'यह जल्दी नहीं है, महाराज! प्रभातमें न निकलनेसे तो यह सेना चित्रकूटके पास आ धमकेगी।'

'ऐसा?...किंतु...तुम्हारे साथ जानेके लिए सेना तैयार न हो तो?'

'सेना तैयार है।' भोजने उत्तर दिया।

मंत्रिमंडलके सभ्य एक दूसरेका मुहँ ताक कर हँसने लगे।

'हँसे क्यों?' महाराजने उनकी हँसी देख ली।

'सेनापतिके सोचने मात्रसे तो सैन्य तैयार हो नहीं सकता? और जहाँ तक हमें पता है चित्तौरकी सेना नवीन सेनापतिके साथ जानेके लिए तैयार नहीं है।' प्रधान मन्त्रीने कहा।

'इसकी चिंता आप न करें। चित्तौरकी सेनाको मेरी आज्ञा न मानना हो तो उसकी इच्छा। मेरे लिए उसका अस्तित्व है ही नहीं।'

'तब तुम्हारा युद्ध प्रयाण होगा कैसे?' महाराजने पूछा।

'मैंने दूसरा सैन्य तैयार कर लिया है?' भोजने दृढ़तापूर्वक कहा।

'राजकाज, युद्ध-प्रसंगमें यौवनका ऊटपटाँग विचार काम नहीं देगा?' किसी मंत्रीने कहा।

'सैन्य-प्रयाणके अवलोकनार्थ समूचे चित्रकूटको आमंत्रित करता हूँ, मंत्रिमंडलके साथ।'

'यदि प्रयाण न हुआ तब?' दूसरे मंत्रीने पूछा।

'मैं अपना सेनापतिका पट्ट महाराजके चरणोंमें रख अपने आश्रम में चला जाऊँगा।'

महाराजके लिए इतना कथन यथेष्ठ था। उन्होंने आखें मींची और भोज अपने खण्डकी ओर चला। समूचा मंत्रिमंडल भोजके पीछे-पीछे गया। भोजका इतना दृढ़ विश्वास मंत्रिमंडलको अस्वस्थ बना रहा था। भोजकी योजना, सैन्य-व्यवस्था, व्यूह-रचना, संबधी बहुत सी बातोंकी जानकारी प्राप्त करनी थी। परंतु भोजने सौ की सीधी एक बात कह दी, 'मैं चाहता हुँ कि महाराजकी सेना मेरा साथ दे, यदि यह संभव हो तभी अपनी योजना मैं आपको बता सकता हूँ। अन्यथा...मेरी योजना गुप्त है...प्रातःकाल इसका पता आपको चल जायगा।'

सैन्यका प्रयाण देखनेकी घोषणा करने वाला भी राज्य अथवा राजमहलसे कोई तैयार नहीं हुआ। देव-बालीने अर्द्धरात्रि तक चित्रकूटमें घूम-घूमकर सर्वत्र सैन्य-प्रयाणकी सूचना प्रसारित की। प्रातःकाल सूर्यकी प्रथम किरण फूटनेके पूर्व ही एक भव्य शंखनाद राजमहलसे हुआ जो गंभीर स्वर धारण कर नगर भरमें व्याप्त हो गया।

नगर-निवासीगण सैन्य-प्रयाण देखनेके लिए एकत्र हो गये। पंद्र? सौ दो हजारकी संख्यामें बलवान अर्द्ध वस्त्रधारी खाखीओंका एक समूह राजमहलके प्रांगणमें आकर उपस्थित हो गया। सभी खाखीओंके हाथोंमें त्रिशूल और फरसे चमक रहे थे। खाखीओंको ही शोभा दे ऐसा सेनापति भोज और उसके दोनों मित्रोंके शरीरपर भी सुन्दर वस्त्र न थे। महाराज भी जल्दी ही उठ गये थे और बरामदेमें खड़े हो इस विचित्र सैन्यको देख रहे थे! मंत्रिमंडलके सभ्य और कुछ सामंत भी उपस्थित थे। साधुओंका ऐसा व्यवस्थित सैन्य सर्व प्रथम सबने देखा।

टीका करनेका अधिकार तो सभीको था। अधिक टीका-टिप्पणी मंत्रिमंडल एवं राजकर्मचारियोंके बीच चल रही थी।

'ये बाबा लड़ेंगे ?' एक ने कहा।

'शायद परिक्रमा करने निकले हों !' दूसरेने उत्तर दिया।

'भोजनमें कहीं जाना है यह सोच कर न आये हों ?'

'हाँ भाई ! मुसलमान इन्हें पाँचो पकवान परोस देंगे।'

'किन्तु देखा इन साधुओंका वक्षःस्थल ? स्नायु वज्र जैसे मजबूत लगते हैं।'

'इनमें चापल्य कहाँ रखा है ? युद्धमें तो बल की अपेक्षा चापल्य अधिक चाहिए।'

'सेनापतिके लिए एक घोड़ा भी नहीं है !'

'बाबाओंके समुदायमें घोड़ा-रथ कहाँ ?...किंतु इनके हाथोंमें शस्त्र हैं चमकते हुए !'

महाराजके बरामदेमें उनके आसपास खड़े कर्मचारियोंने लाग देख भोज एवं भोजकी सेनाकी निन्दा करनेमें किसी प्रकारकी कोर-कसर नहीं रखी। अन्य निन्दाको महाराजने उपेक्षा और हँसीमें उड़ा दिया किन्तु अत्यन्त युक्ति पुरःसर उच्चरित एक वाक्यने उन्हें चौंका दिया।

'ऐसी सेना लेकर घूमने वाला योद्धा राज्यके लिए अनिष्टकर है !' महाराज सुनें इस प्रकार किसीने कहा।

'क्या कहा तुमने ?' महाराजने चौंककर पूछा।

'यह तो मंत्रीश्वरोंका मत मैं व्यक्त कर रहा हूँ।'

'क्या कह रहे थे वे ?'

'ऐसी भयंकर तथा अजनबी सेना लेकर इधर-उधर मारे-मारे फिरने वाले योद्धा पर कितना विश्वास किया जा सकता है ?'

'मतलब ?'

'राज्य एवं राजाको ऐसे व्यक्तिसे पूरा भय है !'

'मेरा राज्य यह छीन लेगा क्यों ?' बुलाओ मंत्रीजीको मानसिंहने आज्ञा दी।

'किन्तु उनका तो आपने पदत्याग स्वीकार कर लिया है।'

'तुमसे मैं उन्हें बुलानेके लिए कह रहा हूँ बहस करनेके लिए नहीं।'

मंत्रीश्वरोंके पहुँचनेके पूर्व ही भोजका सैन्य आगे बढ़ गया था। निर्बल, दुर्बल राजाको तत्क्षण भय लगा कि एकही रातमें साधुओंकी विचित्र सेना खड़ी कर लेने वाला भोज जैसा साहसिक उसका राज्य छीन ले तब ? हठकर एकाएक उसे सेनापति-पद प्रदान करनेमें उसने भूल तो नहीं की ? अब ? विचार-तरंगोंपर उछलता हुआ, संदेह द्वारा उत्पन्न परछाईसे भड़कता हुआ राजा अत्यधिक अस्वस्थ हो गया। इच्छित प्रमाणमें नशा भी उसे शान्त नहीं कर सका। इसके विपरीत नशा उसके संदेहको विकराल स्वरूप देने लगा। विवश हो बहुत सोच विचारके पश्चात् मंत्रि-मंडलकी निवृत्तिका हुक्म वापस ले उनके सिरपर सब भार पहलेही के समान सौंपकर राजाने शान्ति प्राप्त की।

मंत्रिमंडलने भोजका सेनापति-पद वापस लेनेके लिए, मेदपाटका युद्ध न करनेके लिए और हो सके तो उसे बाँधकर चित्तौर ले आकर जेलमें बंद कर देनेकी योजना गढ़कर उसके पीछे एक सैन्य भेज दिया। मुस्लिम सेना सीमापर पहुँच गई थी। उसे वहीं न रोक देनेसे सम्राट् मानसिंहका कर भरे बिना छुटकारा नहीं था। भोजकी विचित्र किंतु बलवान दिखाई पड़ने वाली सेना मुसलमानोंसे अपने उत्तरदायित्वपर लड़ ले तो उसमें रुकावट न डाल भोज अथवा मुसलमानी सेना दोनोंमें जो विजयी हो उसे समझा-बुझा कर, युक्ति-प्रयुक्ति द्वारा, पहाड़ी प्रदेशमें लाकर उनपर टूट कर छिन्न-भिन्न कर देनेकी भी योजना गढ़ी गई। यदि ऐसा संभव न हो तो—मुस्लिम सैन्य चित्तौर पर चढ़ आनेके लिए बद्धपरिकर हो तो—निर्बल मानसिंहको खतम कर विजेताका पैर चूमनेकी शक्यता भी सोच ली गई, फिर वह विजेता चाहे भोज हो या मुस्लिम सालार! उस समय भारतकी राजनीतिज्ञता येनकेन प्रकारेण काम चला लेनेमें, सामदामकी

नीतिमें एवं शत्रुका मुँहमाँगा देनेमें ही समायी हुई थी। स्वरक्षाकी स्वार्थपर राजनीति देश, प्रजा, राजा एवं स्त्रीको भी बेचनेमें हिचकिचाती नहीं थी। पुरानी चित्तौरी सेना धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी। भोजके खाखी तो इस बीच आशासे कहीं जल्दी आगे बढ़ मुस्लिम सेनाका सामना कर रहे थे। दो एक झपट भी हो चुकी थी जिसमें इस्लामी सैन्यने देख-समझ लिया था कि विचित्र ढंगके साधु उनके समक्ष युद्धके लिए खड़े हैं।

मुस्लिम सेनापतिने एक संदेशवाहक भेज भोजके सैन्यकी हँसी उड़ानेका भी प्रयत्न किया, 'युद्धके लिए साधु-संन्यासी एवं भिखारियोंकी सेना खड़ी करनेका समय आ गया हो तो मैं अपने आवश्यकतासे अधिक सैनिकोंको लड़नेके लिए भेज दूँ। भेज दो साधुओंको गुफामें!'

'तुम्हें अपने देशमें वापस भेज देनेके पश्चात् ही साधु गुफामें जा सकेंगे। अभी तो शस्त्रोंकी गुफा बाँध हम अपने साधुत्वका रक्षण कर रहे हैं।' भोजने उत्तर दिया।

'अपने मुल्कमें तो हम तभी जायँगे जब कि आपके राजा हमारे खलीफाको एक लाख मुहर कर स्वरूपमें दें, आपकी राजधानीमें मस्जिद बना कर खलीफाके नाम पर खुतबा पढ़ा जाय और धरोहर रूपमें आपको ले जाकर दरबारमें रखें!'

'अपने सेनापतिसे जाकर कहना कि हमारे राजा कर-स्वरूप मोहर तो क्या मेवाड़का एक कंकड़ भी नहीं देंगे! मस्जिद बनाकर खुतबा पढ़ना हो तो हमारे शस्त्रके बीचसे जीवित निकल जायँ। तभी कदाचित यह संभव हो! और धरोहरमें सेनापति चाहिए? अरे, एक सैनिक तो मिल नहीं सकता, सेनापति तो बहुत दूर रहा! उसके शवको उठा ले जाना!'

अतः युद्धकी दोनों पक्षोंने तैयारी की। भूख, प्यास, निद्रा पर विजयी हुए साधु-सैनिकोंको रातमें आक्रमण करना अधिक कष्ट कर प्रतीत न होता परंतु रात्रिमें सोये हुए शत्रुसैनिकों पर आक्रमण करने की भोजने मनाही कर दी थी।

उसी रात्रिमें मानसिंहके मंत्रिमंडल द्वारा प्रेषित सैन्य आ पहुँचा। भोज प्रथम तो खुश हुआ कि अन्तमें लज्जित हो चित्तौरी सेना उसके सहायतार्थ आ पहुँची। परन्तु पड़ावके पास पहुँच कर सेनापतिने उससे भेंट की तब आर्य राजनीतिज्ञताका, भयंकर स्वार्थपरतासे भरी हुई नीचताका उसे थोड़ा-सा ज्ञान हुआ। नूतन सेनापतिने भोजसे कहा, 'इस क्षणसे आपका सेनापतिपद रद्द होता है।'

'राजाज्ञा है ?' भोजने पूछा।

'जी हाँ,' कहते हुए एक आज्ञापत्र उसने भोजके हाथमें दिया। भोजने उसे हाथमें ले लिया पर उसे बिना पढ़े गम्भीरता पूर्वक उत्तर दिया। 'मुझे इसकी कुछ भी लज्जा नहीं है, मैं आपके अधीन काम करनेके लिए तैयार हूँ।'

'आपने आज्ञापत्र पढ़ा नहीं।'

'आपही कहिये, राजाज्ञा सिर माथे चढ़ाऊँगा।'

'अपनी सेनाको तितर-बितर कर आप तुरत चित्रकूट महाराजकी शरणमें पहुँच जायँ।'

'महाराजकी शरण ? मैं इस समय भी उनकी ही शरणमें हूँ और उन्हींकी आज्ञासे आया हूँ...युद्धस्थल पर !'

'मैं तो अन्तिम आज्ञा आपसे कह रहा हूँ।'

'प्रभात होते ही युद्धकी संभावना है, यह तो आप जानते हैं ?'

'जी हाँ।'

तो...आप उनका सामना करेंगे यह आशा कर...'

'सामना न कर संधि भी कर सकता हूँ।'

'संधिकी पहली शर्त होगी कर ! सम्राट मानसिंहसे अपने शत्रुको 'कर' भराना है ?'

'यह तो जैसा संयोग...'

'मैं यह राजाज्ञा फाड़ कर फेंक देता हूँ !...' कह कर क्रोधको अब

नीतिमें एवं शत्रुका मुँहमाँगा देनेमें ही समायी हुई थी। स्वरक्षाकी स्वार्थपर राजनीति देश, प्रजा, राजा एवं स्त्रीको भी बेचनेमें हिचकिचाती नहीं थी। पुरानी चित्तौरी सेना धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी। भोजके खाखी तो इस बीच आशासे कहीं जल्दी आगे बढ़ मुस्लिम सेनाका सामना कर रहे थे। दो एक झपट भी हो चुकी थी जिसमें इस्लामी सैन्यने देख-समझ लिया था कि विचित्र ढंगके साधु उनके समक्ष युद्धके लिए खड़े हैं।

मुस्लिम सेनापतिने एक संदेशवाहक भेज भोजके सैन्यकी हँसी उड़ानेका भी प्रयत्न किया, 'युद्धके लिए साधु-संन्यासी एवं भिखारियोंकी सेना खड़ी करनेका समय आ गया हो तो मैं अपने आवश्यकतासे अधिक सैनिकोंको लड़नेके लिए भेज दूँ। भेज दो साधुओंको गुफामें !'

'तुम्हें अपने देशमें वापस भेज देनेके पश्चात् ही साधु गुफामें जा सकेंगे। अभी तो शस्त्रोंकी गुफा बाँध हम अपने साधुत्वका रक्षण कर रहे हैं।' भोजने उत्तर दिया।

'अपने मुल्कमें तो हम तभी जायँगे जब कि आपके राजा हमारे खलीफाको एक लाख मुहर कर स्वरूपमें दें, आपकी राजधानीमें मस्जिद बना कर खलीफाके नाम पर खुतबा पढ़ा जाय और धरोहर रूपमें आपको ले जाकर दरबारमें रखें !'

'अपने सेनापतिसे जाकर कहना कि हमारे राजा कर-स्वरूप मोहर तो क्या मेवाड़का एक कंकड़ भी नहीं देंगे! मस्जिद बनाकर खुतबा पढ़ना हो तो हमारे शस्त्रके बीचसे जीवित निकल जायँ। तभी कदाचित यह संभव हो! और धरोहरमें सेनापति चाहिए? अरे, एक सैनिक तो मिल नहीं सकता, सेनापति तो बहुत दूर रहा! उसके शवको उठा ले जाना!'

अतः युद्धकी दोनों पक्षोंने तैयारी की। भूख, प्यास, निद्रा पर विजयी हुए साधु-सैनिकोंको रातमें आक्रमण करना अधिक कष्ट कर प्रतीत न होता परंतु रात्रिमें सोये हुए शत्रुसैनिकों पर आक्रमण करने की भोजने मनाही कर दी थी।

उसी रात्रिमें मानसिंहके मंत्रिमंडल द्वारा प्रेषित सैन्य आ पहुँचा। भोज प्रथम तो खुश हुआ कि अन्तमें लज्जित हो चित्तौरी सेना उसके सहायतार्थ आ पहुँची। परन्तु पड़ावके पास पहुँच कर सेनापतिने उससे भेंट की तब आर्य राजनीतिज्ञताका, भयंकर स्वार्थपरतासे भरी हुई नीचताका उसे थोड़ा-सा ज्ञान हुआ। नूतन सेनापतिने भोजसे कहा, 'इस क्षणसे आपका सेनापतिपद रद्द होता है।'

'राजाज्ञा है?' भोजने पूछा।

'जी हाँ,' कहते हुए एक आज्ञापत्र उसने भोजके हाथमें दिया। भोजने उसे हाथमें ले लिया पर उसे बिना पढ़े गम्भीरता पूर्वक उत्तर दिया। 'मुझे इसकी कुछ भी लज्जा नहीं है, मैं आपके अधीन काम करनेके लिए तैयार हूँ।'

'आपने आज्ञापत्र पढ़ा नहीं।'

'आपही कहिये, राजाज्ञा सिर माथे चढ़ाऊँगा।'

'अपनी सेनाको तितर-बितर कर आप तुरत चित्रकूट महाराजकी शरणमें पहुँच जायँ।'

'महाराजकी शरण? मैं इस समय भी उनकी ही शरणमें हूँ और उन्हींकी आज्ञासे आया हूँ...युद्धस्थल पर!'

'मैं तो अन्तिम आज्ञा आपसे कह रहा हूँ।'

'प्रभात होते ही युद्धकी संभावना है, यह तो आप जानते हैं?'

'जी हाँ।'

तो...आप उनका सामना करेंगे यह आशा कर...'

'सामना न कर संधि भी कर सकता हूँ।'

'संधिकी पहली शर्त होगी कर! सम्राट मानसिंहसे अपने शत्रुको 'कर' भराना है?'

'यह तो जैसा संयोग...'

'मैं यह राजाज्ञा फाड़ कर फेंक देता हूँ!...' कह कर क्रोधको अब

तक दबा रखने वाले भोजने आज्ञापत्रके टुकड़े-टुकड़े कर हवाके स्वाधीन कर दिये।

'तब...महाराज एवं मंत्रिमंडलकी शंका...सच है!' नूतन सेना-पतिने संकोच पूर्वक कहा।

'शंका? कैसी शंका?' भोजने पूछा।

'आप एक साहसिक विद्रोही हैं और...चित्रकूटकी गद्दीपर आपकी दृष्टि है ऐसी शंका...'

'जो गद्दी मानसिंह जैसे व्यसनी अस्थिर राजाकी सम्पत्ति हो उस गद्दीका मुझे मोह नहीं है...और शंका हो अथवा न हो अब मैं अपने सैन्यको तितर-बितर नहीं कर सकता। प्रभातमें यह युद्ध करेगा...अवश्य।'

'मेरी सेना भी पास ही है, जानते हैं?'

'दोनोंका सामना मैं कर सकूँगा...आवश्यक होगा तो।' भोजने कहा।

'बापा! बेकार खटपट क्यों कर रहे हैं इस समय? बाँध दें इस सेना-पतिको पेड़के साथ...सब झंझट ही मिट जाय।' देवने उत्तेजित हो कहा।

'मैं व्यक्तिगत रूपसे तो आपके ही मतका हूँ, भोज! इस भयंकर समय झगड़ा-टंटा खड़ा करना नहीं चाहता। किन्तु यह जो मंत्रिमंडलने आज्ञा दी है...' देवके शब्दोंसे भयभीत हो सेनापति बोला।

'मेरे लिए प्रत्येक क्षण बहुमूल्य है। आपसे युद्धमें सहायता हो सके तो करना, न हो सके तो दूर चले जाना...परन्तु सवेरे युद्धके बीच यदि तनिक भी आये तो समझ रखना कि आपके, आपके मंत्रिमंडल एवं राजगद्दीके सिरपर काल मंडरा रहा है'

नहीं, नहीं, स्वयं तो मैं आपका ही हूँ। यह तो...'

'तब यह भी समझ रखिए कि मेरा सैन्य चित्तौरका सैन्य नहीं है... संपूर्ण आर्यावर्त्त, आर्य संस्कृतिका सैन्य है। केवल चित्तौरके लिए नहीं, चित्तौरकी भी जन्मदात्री आर्य भूमिके लिए मैं लड़ रहा हूँ। मैं महाराज मानसिंहका प्रतिनिधित्व मिटाकर समूचे आर्यावर्तका प्रतिनिधि बनता हूँ!'

सामना न हो तभी तक बहादुरी झाड़ने वाले सेनापतिने देखा कि भोजमें व्यक्तिगत बल अत्यधिक है। उसका खाखी सैन्य उसीके जैसे सैनिकोंसे बना हो तो चित्तौरकी सेनाके लिए उनका मुकाबला करना कठिन होगा। साथ ही उसने यह भी देखा कि भोजके मनमें मंत्रिमंडल तथा महाराजके लिए तिरस्कार भरा हुआ है; इतना ही नहीं आर्यावर्त्तके प्रतिनिधि रूप भोजको चक्रवर्ती बननेकी अभिलाषा हो तो कोई ताज्जुब नहीं। भोजकी व्यक्तिगत बल-प्रतिष्ठा प्रकट हो चुकी थी। अब अपने खाखी सैन्यके साथ मुस्लिम सैन्यका मुकाबला कर एक महान सेनापतिकी प्रतिष्ठा प्राप्त कर वह किसी राजपाटपर हाथ साफ करे तो इसमें मानसिंहके निर्माल्य सेनापतिके लिए आश्चर्य करनेकी कोई बात नहीं हो सकती! ऐसा ही होता आया है और होता है!

चित्तौर जैसा स्थल भी अपनी शक्ति-प्रदर्शनके लिए दूसरा कहाँ मिल सकता है? निर्माल्य मानव-समूह अपनी मर्यादा समझता है। चित्तौरके मानसिंह जैसा, राजभावनाकी केवल धूम्रप्रतिमा जैसा राजा, राजाको निद्रामें रख अपनी निजी समृद्धि करने वाले मंत्री एवं सामंत मण्डल और वर्षोंसे युद्ध-कलाको भूल जाने वाली चित्तौरी सेनाको नष्ट-भ्रष्ट कर डालने जैसा योग्य मौका भोजके समान साहसिक पराक्रमीको और कहाँ मिलता?

मुसलमानोंको पराजित करनेमें भोजकी सहायता करे तो सेनापतिकी जागीर एवं पद भोज कायम भी रख सकता है। अब अपना स्वार्थ किसमें था? यह सेनापति अच्छी तरह समझ गया था। और यदि समय पड़े तो राजाके विरुद्ध भी अपनी सेनाको भोजका पक्ष लेनेके लिए भेजनेकी योजना वह गढ़ने लगा। भोज राजपद-धारण करे तो उसमें उसे भी भाग प्राप्त हो। भोजकी कल्पनामें भी न आसके ऐसी मानसिक बाजी गढ़ते गढ़ते सेनापति सो गया।

प्रभात होते ही एक गंभीर शंखनादने प्रतिध्वनित हो संपूर्ण वाता-

बरणको गुञ्जित कर दिया। भ्रमरके गुञ्जारवके समान प्रारंभ होकर बढ़ते ब ते भयंकर घन-घोषके रूपमें परिवर्तित होने वाले इस नादके साथ 'जय एकलिंग' की गर्जना मिल गई तथा व्यूह-रचनाके अनुसार पचास-पचास सौ-सौ खाखीओंकी टुकड़ियाँ पर्वतोंसे निकलकर मुस्लिम छावनीकी ओर बढ़ने लगीं। यह कहना अत्युक्ति होगी कि विरोधी पक्ष तैया नहीं था। पहाड़ और टेकरी चढ़ते उतरते मैदानमें पहुँचते ही दोनों दलोंमें मुठभेड़ हो गई औ. 'जय एकलिंग' तथा 'अल्लाहो अकबर'की गर्जनासे मैदान गूँज उठा। साधुओंकी सेनाका ठठ्ठा उड़ाने वाले मुस्लिम सेनानायक सलीमने देखा कि इन साधुओंका निशाना अचूक था। शूल एवं त्रिशूल लेकर घूमनेवाले बख्तर-हीन साधुओंका प्रहार बख्तरको भी भेद रहा था एवं उनके अर्द्ध खुले देहको बख्तरसे भी परे बना रहा था। साधुओंके बीचसे नागपाश जैसा फंदा फेंका जा रहा था जो असंख्य सैनिकोंको बाँध-कर युद्ध शक्तिसे रहित बना रहा था। साधुओंने ऐसा युद्धज्ञान कहाँ और कैसे प्राप्त किया यह भी बहुतोंकी समझमें नहीं आ रहा था!

मुस्लिम सेनामें भगदड़ मची हुई देख मुस्लिम सेनानायक सलीमने इसी घड़ीके लिए सुरक्षित दक्ष सैन्यको भोजकी सेना पर टूट पड़नेका आदेश दिया। सेनानायकने सबको उत्तेजित किया। धर्मके नाम पर, अल्लाहके नामपर सैनिकोंको उभाड़ा, जिन्नातोंका खयाल कराया और विजयमें मिलने वाले मुल्कका चित्र सामने खड़ा किया। पीछे हटने वालोंका पैर थम गया, आगे बढ़ा और मुसलमानोंने भोजकी सेनापर महा भयंकर आक्रमण कर दिया। खड्ग, भाला त्रिशूल गदा आदि शस्त्र घूमने लगे, शंखकी घोर ध्वनिने साधुओंको उत्तेजित किया परंतु दूर देशसे आये जगद्विजयी विश्वाससे मस्त मुसलमान सैनिकोंका यह हल्ला अजीब था। साधुओंके त्रिशूल उड़ने लगे, खाली पड़ने लगे और उनकी-युद्ध गर्जना ढीली पड़ने लगी। भोजसे यह स्थिति छिपी नहीं रही। उसकी आँखोंसे आग बरसने लगी। गुरुप्रदत्त तलवार उसने

म्यानसे बाहर निकाल ली और 'अ...ल...ख' की सिंह ध्वनि कर पीछे पैर रखनेके लिए तत्पर, कठिनाईमें पड़े हुए साधुसमुदायके आगे पहुँच बाजी पलट दी।

इस समय भोज विद्वान ब्रह्मकुमार नहीं रह गया था न सफाई पूर्वक लड़ने वाला युद्ध-कलाधर क्षत्रिय कुमार ही था। व्यूह एवं दाँव पेंच बदल शत्रुके आघातको निरर्थक बनानेवाला वैश्यवीर नहीं था और न श्रमसे कभी न थकने वाला ब्रह्माण्डका भार सह लेने वाला शूरवीर। बल्कि इन चारों वीरत्वोंके अर्क समान भोज वीरत्वसे परे जाकर शुद्ध संहारका स्वरूप धारण कर रहा था। बिजलीके समान चमकने वाली उसकी तलवार जिधर घूम जाती थी वहीं मृत्युका बाजार गर्म हो उठता था। सिपाही, नायक अथवा सेनापति जो कोई उसकी चपेटमें आ जाता वही दो टूक हो नीचे गिर जाता था। उसके अग्नि-स्वरूप देहके सामने आनेवाला शस्त्र पिघल जाता था। पीछे पैर रखने के लिए तत्पर साधुओंको आगे बढ़नेके लिए उसने स्थान बना दिया। फिर तो साधुओंका शस्त्रधारी समुदाय उमड़ पड़ा और इस्लामी सेनापर दूने बलसे टूट पड़ा। मुसलमानोंने भी पैर पीछे न हटानेका निश्चय कर लिया-सा लगता था। असंख्य सैनिक जख्मी हो रण-भूमिपर गिर पड़े। 'जय एकलिंग'...'हर हर महादेव' और 'अल्ला हो अकबर'की गर्जनासे आकाश गूँज उठा।

मुस्लिम सेनापतिने देखा कि साधु सैन्यका हमला उसकी सेनाको छिन्न-भिन्न किये डाल रहा है। व्यूहमें उसके लिए अब एक ही मार्ग रह गया था। भोजको सैन्यसे विलग कर और घेर कर उसे समाप्त कर देना। युक्ति-पुरस्सर सेनापतिने ऐसी रचना की कि मुस्लिम सैन्यका सफाया करने वाले भोज एवं भोजकी सेनाके बीच मुसलमान सैनिकोंकी दीवार खड़ी हो गई। क्षण मात्रमें भोजने अपनी नाजुक परिस्थितिको समझ लिया और उसके देहने साक्षात् शिवका स्वरूप धारण कर प्रलय

ताण्डव आरंभ कर दिया। उसके शरीर में महाकाल का आवेश हो आया और देखते ही देखते उसके खड्ग संचालनके कारण आगे और पीछेकी मानव-दीवार खंडहर बन गई। उसे रोकनेका प्रत्येक प्रयत्न निष्फल गया। उसके सम्मुख देखना, नजदीक आना अथवा शस्त्र अजमाना स्वयं कालको आमंत्रण देनेके समान था। सामनेकी मानव-दीवारके नष्ट भ्रष्ट हो जातेही उसने मुड़कर पीछे देखा। एक चमकमाती तलवार उसके गरदन पर गिरने वाली ही थी कि एक दूसरी तलवारने उसके वारको रोक लिया। झट उसने पैतरा बदल दिया और उसे मारने और बचानेके लिए तत्पर सैनिकोंका भयंकर द्वंद्व वह देखने लगा।

'मेरा वार तूने खाली कर दिया? ले, अब तेरी बारी है?' कहते हुए एक किशोर मुस्लिम सैनिकने तलवारका भीषण वार भोजके रक्षक किशोर सैनिकपर किया। तलवार उठा कर इस वारको उसने ऊपर ही रोक लिया। दोनों तलवारोंमें से चिनगारी निकली और वे बीचसे टूट गई। तत्क्षण कटार खींच दोनों एक दूसरेसे भिड़ गये। क्षणभर सैनिक युद्धसे विरत हो रुक गये। घात-प्रत्याघात की कुशलतासे चकित भोजने देखा कि दोनों युद्ध वीरोंके सिरका छत्ररूप साफा खुल गया और युद्धमें बाकी रही नागपाश जैसी केशावलि उनके शरीर पर लहराने लगी।

दोनो युवतियाँ ?

दोनों का मुख भोजको पहचाना हुआ सा लगा। फुर्तीसे कूदकर मृत्युकी जोखिम मोल ले वह दोनोंके बीचमें जा खड़ा हुआ एवं मृत्यु पाशमें फँसी दोनों युवतियों को भीषण बलसे अलग कर दिया।

'आ! अब हम दोनों लड़ लें।' युवतीने भोजसे कहा।

अभी भोजके देहमेंसे महाकालका आवेश दूर नहीं हुआ था। उसकी आँखें अभी भी रुद्रकी आँखोंके समान दहक रही थीं। सबने सोचा कि एक झटकेमें इस सैनिक वेषधारी युवतीको भोज काटकर फेंक देगा अभी तलवार म्यान नहीं हुई थी।

'मैं स्त्रियोंसे नहीं लड़ता।' भोजके क्रूर दिखाई पड़ने वाले मुखसे मृदु शब्दोच्चार सुनाई पड़ा।

'यह कह कर तू स्त्री-जातिका अपमान कर रहा है! केवल मेरा ही नहीं, अपने शत्रुका नहीं, बल्कि मेरे आघातसे तेरी रक्षा करने वाली सामने खड़ी इस हिन्दू सुन्दरीका भी!'

'शब्द, विचार अथवा कार्य द्वारा स्त्रीका अपमान कभी भी मुझसे संभव नहीं यह जान लें, यह मेरी सर्व प्रथम प्रार्थना है। स्त्रीको शस्त्र धारण करना पड़े यह पुरुष जगत्की सबसे बढ़कर अपकीर्ति है।'

'तुझे जो कुछ बकना हो बक। तू सामना नहीं करेगा तो भी तेरी जान खतरेमें है यह समझ रख। भले ही मैं स्त्री होऊँ, यहाँ आई हूँ मुस्लिम सैनिकके रूप में...तुझे पराजित करनेके लिए...तुझे मार डालनेके लिए...'

'भोजको मारनेके पूर्व तुझे मेरा सामना करना पड़ेगा। भोजको मारनेके लिए कोई स्त्री तत्पर होगी तो उसे बचानेके लिए भी कोई स्त्री उसके पास अवश्य ही रहेगी।' हिन्दू युवतीने कहा। सोलंकी राजकुमारी मीनाक्षीको भोजने बहुत पहले ही पहचान लिया था।

मुस्लिम युवती एकाएक खिलखिलाकर हँस पड़ी।

'क्यों हँस रही हो नरगिस?' भोजने पूछा

'तूने मुझे पहचाना ठीक। मुझे हँसी आई कि विवाहका...स्त्रीके तनिक सहवासका विरोधी...विवाह-सूत्रमें बँध गया!'

'मैं अभी तक अविवाहित हूँ, इसका मुझे विश्वास है...यह मीनाक्षी इसकी साक्षी है...'

'भले ही ये अभी तक विवाह सूत्रमें न बँधे हों, मैं तो इनके साथ विवाह कर चुकी हूँ...भोज इसे जानते हैं...' मीनाक्षीने कहा।

युद्धभूमिसे मुस्लिम सैन्य अदृश्य हो गया था। विजेता साधुगण विजय घोष करते हुए लौट रहे थे। रणस्थलमें एक भी जीवित मुसलमान

दिखाई नहीं पड़ रहा था। इसी समय मुस्लिम सेनापतिको रस्सीमें बाँधे हुए दोनों भील वीर देव-बाली आ पहुँचे। उनके मुख मृत्युप्रेरक दिखाई पड़ रहे थे।

'ये सेनापति हैं।' बालीने कहा।

'इन्हें मुक्त कर दो।' भोजने कहा।

'किंतु ये तो पराजित सेनाके सेनापति हैं?'

'इसीलिए तुम लोग इन्हें बाँध सके। परन्तु हैं तो ये सेनापति ही। ठीक वैसे ही जैसा मैं? मुक्त कर दो इन्हें!' भोजने आज्ञा दी और सेनापति बन्धन-मुक्त हो गया।

'मैं आपकी दया नहीं चाहता।' सेनापतिने कहा।

'मैं दया नहीं कर रहा हूँ! हार-जीत तो प्रभुके आधीन है...यदि आपके स्थानपर मैं होता तो आप क्या करते?' भोजने बंधन-मुक्त करनेका कारण बताते हुए सेनापतिके हृदयको स्पर्श करनेका प्रयत्न किया।

'अवसर मिलते ही आपको कत्ल कर डालता।' सेनापतिने व्यावहारिक सत्यका उच्चारण किया।

'ठीक है! आपका जीवन-तत्त्व शायद भिन्न होगा! मैं तो आपको मुक्त करता हूँ!'

'मैं कोई शर्त स्वीकार नहीं करता, याद रखिए।'

'शर्तोंकी आवयश्कता ही नहीं है। जिस दिन शर्त्तोंका पालन किया जायगा उस दिन युद्धकी आवश्यकता नहीं रह जायगी। साथही इतना स्मरण रखिए कि युद्ध चाहने वालेको भोज कभी पीठ नहीं दिखायेगा। आप जा सकते हैं। नरगिस, तू भी!'

'हम दोनोंको मुक्त कर अपने सिर तू एक नई विपद मोल ले रहा है, यह मत भूलना!' कहकर नरगिस एवं मुस्लिम सेनापति पीठ फेर कर मैदानसे चले गये।

घोर शंखनाद हुआ। सूर्य अस्ताचलगामी हो पहाड़के पीछे

छिपनेकी तैयारी करने लगा। रणस्थलमें पड़े हुए मृतदेहोंकी व्यवस्था करनेमें साधुसैन्य लग गया। जीवित किन्तु जखमी सैनिकोंकी शुश्रूषा भी साधुओंने प्रारंभ कर दी। सूर्य धीरे-धीरे अदृश्य हो गया।

चित्तौरके विरोधी सेनापतिने एक विशेष जासूस द्वारा मंत्रि-मंडलके पास दो महत्त्वपूर्ण समाचार भेजे। एक भोजकी संपूर्ण विजय और द्वितीय सोलंकी कुँवरी मीनाक्षी द्वारा प्रकट किया गया हुआ रहस्य कि उसका विवाह भोजके साथ हो चुका है।

भोजकी विजय, इससे भी बढ़कर भोजके साथ मीनाक्षीके परिचयकी चर्चा, दोनों ही बातें अत्यंत महत्त्वपूर्ण थीं। ज्योतिषियों द्वारा मीनाक्षीके महारानी-पद प्राप्ति संबंधी कहा गया भविष्य-फल राजनीतिज्ञोंके लिए अति-मार्गसूचक कहा जा सकता था।

भोजका सामना करना सेनापतिके लिए संभव नहीं था।

छावनीके पास ही बहने वाले एक झरनेमें साधुओंने स्नान किया। निवृत्त होकर भोजने आज्ञा दी। 'आजकी पूरी रात मैं ध्यानमें व्यतीत करूँगा। कोई मेरा ध्यान भंग न करे।'

'कारण ? आज तो विजयकी, आनंदकी रात है?' देवने कहा।

'मुझे ध्यानमें ही आनंद आयेगा, देव! मेरा शरीर और मन अभी भी 'युद्ध-युद्ध' पुकार रहा है। इस आवेशके शमनके लिए ध्यान छोड़ दूसरा मार्ग नहीं है।'

'वह सेनापति मुक्त है!' बालीने कहा।

'और वह मुस्लिम राजकुमारी—नरगिस—हमें विषपान कराने वाली, वह भी, देवने कहा, मुक्त है।'

'उसने विपदकी पूर्व सूचना भी दे ही दी है...' बाली बोला।

'क्या एक रात भी हम भगवान शिव पर विश्वास नहीं कर सकते?' कहकर झरनेके पास ही एक पीपलके वृक्षके नीचे पद्मासन लगाकर भोज बैठ गया।

अनिच्छा होते हुए भी सब लोग वहाँसे हट गये। उसकी भीषण संहारिणी शक्तिका परिचय प्राप्त कर उसके दोनों मित्रोंके मनमें प्रश्न उदित हुआ, "यह भोज है या कालभोज ?"

बचपनमें पिताने भी यही प्रश्न पूछा था और उसका भोजने उत्तर दिया था कि गुरुकी आज्ञा होगी तो वह कालभोज भी बन सकेगा। आज उसने कालभोजका स्वरूप धारण किया।

११

उग्र, युद्धसे विरत, विजयोन्मादसे पूर्ण देह और मनको शांत करना, सात्विक शांति द्वारा उन्हें विश्व-बंधुत्वके प्रवाहमें प्रवाहित करना, और इससे भी गहरेमें गोता लगा कर व्यापक शिवतत्त्वके साथ उसकी एकता साधना, यह कार्य आसान तो नहीं कहा जा सकता। नित्य जैसी सरलतासे भोज सत् चित् एवं आनंदका स्पर्श करनेमें आज असमर्थ हो रहा था। किंतु प्रयत्न करने वालेके लिए अशक्य तो कोई वस्तु इस संसारमें नहीं है। मनको शांतिकी गोदमें देकर वैरी, विरोधी, शत्रु सबके लिए प्रभुसे कल्याण-याचना करते हुए वह गहरे ध्यानमें उतरता गया। धीरे धीरे उसका बाह्य ज्ञान जाता रहा और निर्विकल्प निराकार तत्त्वके साथ अलौकिक एकताका उसने अनुभव किया।

इस स्थितिमें वह कब तक रहा इसका भोजको ज्ञान होना असंभव था। जिस समय उसकी आँखें खुलीं उस समय मृगशीर्ष नक्षत्रकी तारिकावलि उसे चमकती हुई दिखाई पड़ी।

या मानवकी दो आँखें ?

आँखें भी सबकी पहचानी जा सकती हैं ?

'नरगिस ? आ, एक बार पुनः एकांतमें बात करें ।' भोजने नरगिस को पहचानकर कहा । कटारी म्यानमें रख नरगिस भोजके पास आकर खड़ी हो गई ।

'बैठ जाओ तो बात हो ।' भोजने कहा ।

नीचे बैठते हुए नरगिस बोली—'आपको जहरका प्याला याद है जो मैंने आपको पिलाया था ?'

'तेरा दिया हुआ विष भी अमृत बन गया था, नरगिस ! तू तो मूर्छित हो गई और मैं तेरे डरसे भाग आया ।'

'होशमें आई तभीसे मैं आपको ढूँढ़ रही हूँ...'

'मैं समझता हूँ ! किंतु यह तुम्हारी भूल है नरगिस ! किसलिए मेरे जैसे खाखीको तू ढूँढ़ रही है ?'

'गुलाम बनानेके लिए...और न बने तो जबह करनेके लिए...'

'गुलाम बनाकर क्या करोगी इसका ?'

'इस्लामकी दीक्षा दिलाऊँगी...'

'फिर ?'

'उसके साथ विवाह करूँगी ।'

'पगली ! स्त्रियोंको प्रसन्न कर सकूँ ऐसा रसिक पुरुष मैं नहीं हूँ... देखा नहीं, मैं योग-साधन करता हूँ ?'

'मुसलमान होते ही आपमें दूसरी रंगत आ जायगी ।'

'और न बनूँ तब ?'

'मेरी कटारी अथवा तलवार तेरा भोग अवश्य ले लेगी, आज नहीं तो कल ।'

'कटारी और तलवारका यह अपव्यय है । मुझे मारकर तुझे क्या मिलेगा ? यह हिंदू तो शायद मर जायगा । किन्तु तेरी दृष्टिसे एक भावी मुसलमान भी मर जायेगा इसका तुझे डर नहीं लगता ? यदि तुझमें मुझे मुसलमान बनानेका दृढ़ निश्चय हो तो...'

'पाक मुस्लिम बनने योग्य आपका शरीर काफिरोंमें शोभा नहीं देता...और...'

'और क्या ?'

'भोज ! तू मुझे बहुत अच्छा लगता है।'

'इसीलिए मेरे शरीरका वध करना है ?' हँसकर भोजने कहा।

'यह शरीर मेरा न हुआ तो मुझे इसका क्या उपयोग ?'

'तब इस देहका वध ही एक मात्र उपाय रह गया है !'

'क्यों ?'

'तुम्हारी दो शर्तें हैं--एक तो मुझे मुसलमान बनना होगा और दूसरे तुम्हारे साथ विवाह करना होगा। दोनों बिलकुल असंभव हैं। अतः शस्त्र ग्रहण कर सतत मेरे पीछे घूमनेके सिवाय तुम्हारे लिए रह ही क्या जाता है ?'

'तू दो बार बच गया, भोज ! यात्रामें जब मेरा मेहमान बना तब, और दूसरी बार रणभूमिमें सामना हुआ तब। खुदाकी मरजी तुझे बचानेकी लगती है।'

'तीसरी बारका प्रयत्न सफल भी हो सकता है।' भोजने हँसकर कहा।

'तुम यहाँ अकेले हो ?'

'सर्वव्यापक प्रभुको भूल जायँ तो अवश्य ही मैं अकेला हूँ।'

'सर्वव्यापक ? तुम बुतपरस्त लोग तो पत्थर, प्रतिमा एवं पेड़ोंमें भी प्रभुको समा देते हो !...जैसे हम जिनको बोतलमें बन्द कर देते हैं।'

'एक स्थल, एक वस्तु, एक रूपमें प्रभुको देखनेकी आदत पड़ जाय तो प्रभु सर्वत्र दिखाई पड़ने लग जाय। मर्यादित मानवको यह मार्ग उचित जान पड़ा। मैंने इस मार्गमें जन्म लिया है। परन्तु क्या इस्लामीके प्रभु सर्वव्यापक नहीं है ?'

'मैं धर्म-चर्चाके लिए नहीं आई हूँ। बताओ तुम्हारे पास हथियार है या नहीं ?

'प्रभु सान्निध्यमें प्रवेश करते समय मैं सभी शस्त्रोंका विसर्जन कर देता हूँ।'

'मान लो मैं अपनी यह कटार तुम्हारे कलेजेमें घुसेड़ दूँ तब...?'

'मैं स्त्रियोंका सामना कभी करता ही नहीं...उनके पास शस्त्र हो या न हो...स्त्री की तो मैं पूजा करता हूँ!'

'तुझे अपने ईश्वरमें बहुत श्रद्धा है?'

'पूर्ण रूपसे।'

'अच्छा, तो हम एक शर्त बदें—यदि तेरा ईश्वर सच्चा हो तो तुझे इस कटारीसे बचा लेगा। और...और यदि बचना हो तो मुस्लिम बनने की प्रतिज्ञा करो। नहीं तो...' नरगिसने बिजलीकी तेजीसे कटारी निकाल कर भोजके छाती पर रख दी।

'रुक क्यों गई? मैं तो आघात सहनेके लिए तैयार हूँ।'

'मुस्लिम बनना कबूल करो तो कटार यहीं रुक जायगी अन्यथा...'

'कटारको तू आगे बढ़ा सकती है।'

'अगर...ओ भोज! निष्ठुर, क्रूर पुरुष! यह कटार मैं वापस लेती हूँ' कह कर भोजको मारनेके लिए उठाई हुई कटार उसने अपने वक्षस्थल की ओर घुमायी।

परन्तु कटार न तो भोजकी ओर बढ़ी न नरगिसके कलेजेकी ओर। नरगिसका हाथ पीछेसे किसीकी प्रबल वज्रमुष्टिमें जकड़ गया। नरगिसकी हंसग्रीवा पीछे घूमी। उसने देखा कि हंसग्रीवा मीनाक्षी ही उसका हाथ मजबूतीसे पकड़े हुए खड़ी है।

'तू मुझे सुख पूर्वक मृत्युका आलिंगन भी न करने देगी?' नरगिसने क्रोधावेशमें कहा।

'भोजको तो मरने नहीं ही दे सकती...'मीनाक्षी बोली।

'यह तो मैं स्वयं मर रही थी।'

'किन्तु किसलिए तू ऐसा कर रही थी?' भोजने नरगिसका हाथ

मीनाक्षीके हाथसे छुड़ाते हुए पूछा। छुड़ाते समय नरगिसकी कटार नीचे गिर गई।

'आपके प्राप्त न होने पर अपना जीवन दे देनेका मैंने निश्चय कर लिया है।'

'तुम स्त्रियोंपर यह क्या पागलपन सवार हुआ है? पुरुष देहकी कुरूपताको तुम लोग क्यों नहीं पहचानतीं? मैं स्त्री होता तो एक भी पुरुषकी ओर आँख उठाकर न देखता!' भोज कुछ आकुल हो बोल उठा। धर्म अथवा आदर्शके लिए पुरुष अथवा स्त्री अपना जीवन उत्सर्ग कर सकते हैं। परन्तु स्त्री अथवा पुरुषके देहकी मोहिनी किसीको मरनेके लिए प्रेरित करे, यह उसकी समझमें आ नहीं रहा था।

मीनाक्षी और नरगिस भोजका मुख देखकर एक दूसरेका मुँह ताकने लगीं। पश्चात् दोनों युवतियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

'अब एसी मूर्खता नहीं चलेगी भोज!' नरगिसने हँसते हुए कहा।

'और आप तो पंडित हैं, रसशास्त्रके ज्ञात भी होंगे...' मीनाक्षीने हसते हुए कहा।

'तुम दोनोंके मुक्त-हास्यकी तुम्हें शपथ देता हूँ। मीनाक्षी, तू नरगिसकी रक्षा कर। इसे आत्महत्या करने मत देना। और नरगिस, मुझे तू भले ही मार, पर मीनाक्षीको मत मारना। मेरा रस संन्यास है। आर्य धर्ममें वीरत्व भरा है, इसका दर्शन करा कर मैं भगवा धारण करूँगा। अ...ल...ख!' और वृक्ष पर से, झरनेके प्रवाहमें से, पास की पहाड़ी परसे भोजके उद्‌गारकी अनेकानेक प्रतिध्वनियाँ हुई। भोजकी जैसी इच्छा थी वैसा एकान्त उसे किसीने दिया नहीं। ध्यानस्थ होते ही भोजको खबर न हो इस प्रकार देव, बाली और भैरवनाथ उसपर नजर रखे हुए थे। उन्होंने नरगिसको कटार सह आते हुए देखा एवं उसकी कटारसे भोजकी रक्षाके लिए तत्पर वृक्षोंके पीछे छिपनेवाली

मीनाक्षीको भी देखा। भोज अरक्षित नहीं है इसका नरगिसको अब विश्वास हो गया।

भोज आगे बढ़ने लगा। देव, बाली और भैरवनाथ अन्धकारको चीरकर बाहर निकल आये। नरगिस एवं मीनाक्षीके हास्य द्वारा उत्पादित हृदयकी कोमल भावनाको भोजकी शपथ किसी दूसरे ही मार्गपर ले जा रही थी। स्थिर खड़ी नरगिसके गलेमें हाथ डाल कर मीनाक्षी उसे घसीट ले चली।

मीनाक्षीने देखा कि थोड़ी देर पहले भोजको अथवा उसे कटार मारनेके लिए उद्यत मुस्लिम युवती नरगिसकी ग्रीवा अत्यन्त सुकुमार है। मुस्लिम धर्मने उसके स्त्रीत्वमें कोई न्यूनता उपस्थित की हो, यह उसे दिखाई नहीं दिया। सौंदर्य आर्योंमें होता है वैसा ही म्लेच्छोंमें भी होता है—कुछ अधिक रंगीला!

गलेमें हाथ डाले हुए उसे आगे घसीटती हुई मीनाक्षीका गोल गोरा हाथ स्त्री-सौंदर्यका एक नमूना था, यह तिरछी नजरसे नरगिसने भाँप लिया था। ऐसे रूप-रंग एवं आकार पूर्ण हाथवाली मीनाक्षीका मुख देखते ही नरगिसको काफिरोंकी बुतपरस्तीमें सत्यका आभास जान पड़ा। सौंदर्य आकार धारण कर ईश्वरको पहचाननेमें सहायक हो तो दोष क्या? सौंदर्य भी तो प्रभुने ही बनाया है? मूर्तिपूजन, बुतगपरस्ती, सदा-सर्वदा पाप तो नहीं कहा जा सकता।

भोजने पीछे देखकर पूछा—नरगिस और मीनाक्षी कहाँ हैं?

'ये रहीं आपके पीछे!' देवने कहा।

'पीछे नहीं, आगे चलिए।' भोजने कहा। उसका अभी तक दोनों पर पूरा विश्वास जमा नहीं था। शपथ देने पर भी दोनो एक-दूसरे पर वार कर बैठें तो?

'नहीं, नहीं, भले ही ये पीछे रहें।' बाली बोला

'क्यों?'

'एक दूसरेका गला पकड़ एक-दूसरेका रूप देख रही हैं...पीछे रहनेसे ही यह हो सकता है न ?' देव हँसकर बोला ।

बात बिलकुल ठीक थी, मीनाक्षीने पहले ही नरगिसके गलेमें हाथ डाल दिया था; चलते-चलते नरगिसका मन भी मीनाक्षीके गलेमें हाथ डालनेका हुआ और हाथ बढ़ाकर उसकी ग्रीवाके पीछेसे कन्धे पर उसने हाथ रख दिया !

थोड़े ही क्षण पूर्व दोनों एक दूसरेकी कट्टर शत्रु थीं। सौन्दर्यका स्पर्श परस्पर अभेद तो उत्पन्न नहीं करता !

भोजने जरा स्थिर होकर पीछे देखा । अंधकारमें एक रूप बन गई वह रूप-छाया लज्जित हो विलग होती हुई सी जान पड़ी । भोजके मनमें भयका संचार हुआ । स्त्री-देहके दर्शनका उसे अधिकार न था ।

वह 'अ...ल...ख' पुकार उठा ।

और, स्त्री सौंदर्यके बारेमें विचार करते हुए वह एकाएक ऊपर उठ आया । प्रभु कभी-कभी स्त्री रूप तो नहीं धारण करते ? प्रभुको नाम-रूप देने वाला भी तो पुरुष ही है ?

उसकी छावनी आ गई । छावनीमें से भी शब्द टंकार हुआ—
'अ...ल...ख'

रात्रिने सबको विश्राम दिया । मुस्लिम सेना इतनी छिन्न-भिन्न व नष्ट हो गई थी कि उसके लिए पुनः संघटित होकर युद्ध करना असंभव-सा था । प्रश्न इतना ही था कि मुसलमानोंका सिंधु-सीमा तक पीछा किया जाय अथवा प्राप्त विजयसे संतुष्ट हो पीछे लौटा जाय । दूर दूरसे जासूसोंने आकर समाचार दिया कि बचे खुचे मुसलमान सैनिक सीधे अपने प्रदेशकी ओर मुँह किये भागे चले जा रहे हैं ।

मेदपाटके उत्तर पश्चिमका रेगिस्तान पार कर सिंधुकी सीमाका अतिक्रमणकरनेकी भोजकी उत्कट इच्छा थी । पर्यटन किये हुए सभी प्रदेशोंमें सैन्यके साथ भ्रमण कर स्थल-स्थल पर आर्य राजपीठ एवं आर्य

सांस्कृतिक पीठ स्थापित करनेका समय आ पहुँचा है, ऐसा उसे भास हो रहा था। पूर्वमें बर्मा, स्याम, मलाया, हिंदचीन, सुमात्रा, जावा, बाली, बोर्नियो एवं इससे भी आगे तक आर्य संस्कृति उस समय व्याप्त थी। चीनी समुद्र तक आर्य संस्कृतिका बोलबाला था। परन्तु आर्य संस्कृतिके उत्पत्ति स्थानमें ही धींगामुश्ती प्रारंभ कर वैदिक सप्तसिंधुके प्रदेशको इस्लाम भ्रष्ट करनेमें लगा था। इसे रोककर पह्लव प्रदेशकी सीमा तक आर्यावर्त निष्कंटक करनेकी योजना उसके मनमें चक्कर काट रही थी। उसे सफल करनेका समय आ पहुँचा है इसका उसे दृढ़ विश्वास हो रहा था। चित्रकूटके व्यायाम-समारम्भमें भेजनेका गुरुका आग्रह अब समझमें आया। अव्यवस्थित राजकीय प्रबंधमें प्रवेश करनेका उसे प्रथम अवसर मिला तथा प्रवेशकी सार्थकता सिद्ध करनेका भी उसे मौका मिला।

दूसरे दिन भी आरामके साथही साथ सावधानीके खयालसे भोजने छावनी नहीं उठाई। पीछेसे आये हुए सेनापतिके साथ चर्चा करते हुए भोजने पूछा, 'मैं तो सैन्यको आगे भेज रहा हूँ। कहिये, महाराजकी आज्ञा सिरमाथे चढ़ा आप इस सेनाका सेनापतित्व स्वीकार करेंगे?'

'तो...आप क्या करेंगे?' सेनापतिने चकित हो पूछा।

'मैं? कहिए तो साधारण सैनिकके रूपमें काम करूँ...अथवा अपने आश्रममें वापस चला जाऊँ...महाराजसे मिलकर उनके द्वारा अर्पित वस्त्र उनके चरणमें रखकर'

'सेनाको आगे बढ़ने दीजिए...हम दोनों चित्रकूट चलकर महाराजसे मिल लें।'

'कारण?'

'वहाँ जानेसे महाराजको इस विजयका आल्हादजनक समाचार मिल जायगा...और आप...सेनापति तो बन ही चुके हैं। वहाँ पहुँचने तक सेनापति निर्वाचित किये जानेकी कक्षामें पहुँच ही गये रहेंगे।'

'मुझे कल्ला नहीं चाहिए। मुझे तो महाराजसे केवल क्षमा माँगनी है। महाराजके आज्ञाकी अवहेलनाकर मैंने युद्ध किया...'

'यह आपने उचित ही किया। नहीं तो यहाँसे सीधा हमला चित्तौर पर ही होता। मेरा आग्रह है कि सेना भले ही आगे बढ़े, हम चित्तौर चलें और महाराजकी आज्ञा प्राप्त कर पीछे लौट आयें। घोड़ा तैयार है।'

एक बार महाराजसे जाकर मिल लेना, अपने ऊपर किये हुए भरोसे को उसने सफल बनाया है इसका विश्वास दिलाना और सेनापति-पद त्याग कर महाराजके आदेशानुसार मुक्त हो निरंकुश सैनिक बन अथवा महाराज संतुष्ट हों तो उनकी इच्छानुसार सैन्य लेकर सिंधु प्रदेशको स्वच्छ करनेकी अपनी योजना सफल बनाना भोजको योग्य जान पड़ा। सेनापतिका आग्रह तो था ही। भोज, सेनापति, देव, बाली, मीनाक्षी तथा नरगिस एक छोटीसी टुकड़ीके साथ दूसरे दिन प्रातःकाल मुख्य सैन्यको आगे भेजकर, चित्तौरकी ओर लौटे। एकाएक सेनापति मित्र कैसे बन गया यह भेद भोजकी समझमें नहीं आया। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों भोजके प्रति सेनापतिका सद्भाव भी बढ़ता चला, भोजको अप्रिय लगने पर भी!

चित्तौरको विजयका समाचार मिल चुका था। भोजके आगमनका समाचार भी प्राप्त हो चुका था। जो जो गाँव बीचमें पड़ते गये सभी विजयी भोजके स्वागतार्थ सजे हुए थे। चित्तौरके स्वागतका दृश्य तो अद्भुत था। युद्धके लिए प्रयाण करते समय भोजका दर्शन करनेके लिए जितने नरनारी एकत्र हुए थे उससे कई गुना अधिक विजयी भोजके दर्शनार्थ उपस्थित थे। भोजको यह सत्कार अप्रिय लगा। आर्यावर्त्तमें वीर पुरुष एवं वीरांगनाओंकी संख्या क्या इतनी घट गई थी कि ऐसे स्वागत शृङ्गारकी आवश्यकता आ पड़ी? एक युद्ध जीत कर इस्लामी आक्रमणको पीछे ढकेल देना क्या जनताको इतना महत्त्वपूर्ण महसूस हुआ कि विजेताके लिए ऐसे खर्चीले स्वागत-समारंभका प्रबंध किया गया?

अभी तो बहुत-बहुत काम बाकी था। किसलिए एक विजयको ऐसे उत्सव कर तुच्छ बनानेका प्रयत्न किया जा रहा था? अभी दूसरे अनेक रणक्षेत्र विजयके लिए बाकी थे! प्रजा क्या उत्सव करके ही संतुष्ट हो जायगी? उत्सव क्या इतने सस्ते होते हैं?

भोज सीधे राजमहलमें गया, कहीं रुका नहीं। संपूर्ण मंत्रिमंडल उसके सत्कारके लिए उपस्थित था! सामन्तोंका बड़ा भाग भी वहाँ हाजिर था। सबके मुखपर आनन्द उमड़ रहा था। एक सेनापति द्वारा अपना कर्तव्य पालन कर आनेपर उसके सत्कारके लिए सम्पूर्ण मंत्रिमंडल? समूचा सामन्त मंडल? वह भी इतना आनन्दमय? चित्तौरमें खुशामद-चापलूसी का दौरदौरा दिखाई पड़ रहा था। राजमहलके स्त्रियोंद्वारा स्वागत एवं आरतीके दृश्यने तो उसे क्रुद्ध बना दिया!

'आरती? मेरी? यह तो प्रभुकी ही हो सकती है। दूर करो यह तुच्छ खेल!' भोजके मुँहसे निकल गया। राजमहलका विवेक उसे चुभ गया। जो प्रजा मानवकी आरती करे उसे भी धिक्कार और आरती स्वीकार करने वाले नेता या वीरको उससे दुगना धिक्कार! मुसलमान मानव-पूजा नहीं करते, यह बहुत ही अच्छा करते हैं। मूर्तिके सामने दीनता प्रकट नहीं करते, यह ठीक करते हैं!

प्रजा इतनी अपंग बन जाय कि वीरकी ऐसी तिरस्कार-जनक पूजा करे? उसे प्रसन्न रखनेके लिए इतना अधिक प्रयास क्यों? युद्धवीरसे क्या सब भयभीत हो रहे हैं?

'आपकी इच्छा आज फलीभूत होगी!' एक मंत्रीने भोजका राजमहलमें स्वागत करते हुए कहा।

'मेरी कोई इच्छा है ही नहीं...' भोजने उत्तर दिया। भोजको यह वाक्य सामान्य ही जान पड़ा यद्यपि मंत्रीश्वरने इसमें गूढ़ अर्थ भर रखा था।

'आपकी नहीं तो हमारी इच्छा फलीभूत होगी!' दूसरे मंत्रीने कहा।

'आपकी क्या इच्छा है ?'

'हमारे माथेके मुकुट आप बनें !' एक सामंतने कहा ।

'मुझे जागीर नहीं चाहिये ।' भोजने कहा ।

'केवल जागीर देकर आपका अपमान करनेका साहस कोई नहीं कर सकता...' बड़े ही नाट्यपूर्ण भावसे दूसरा सामंत बोला ।

'सर्व प्रथम मैं महाराजका दर्शन करना चाहता हूँ।' भोजने बात काट कर कहा ।

'हमारी इच्छा है कि आप अभी महाराजके पास न जायँ ।'

'क्यों ?' भोजने विस्मयान्वित हो पूछा ।

'महाराज अन्तिम साँस लेते होंगे...अभी तुरत समाचार आता ही होगा...उतावलीकी जरूरत नहीं...सब व्यवस्था हो चुकी है ।' भोजके साथ लौटे हुए सेनापतिने आनन्दपूर्वक कहा । सबके मुख खिल रहे थे और भोजके मुखपर हास्य प्रकट होनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे ।

'अन्तिम साँस क्यों ? कैसी व्यवस्था हो चुकी है ? आपकी बात मेरी समझमें आई नहीं । मैं महाराजके पास जाता हूँ...' सबकी बातको ठुकराता हुआ भोज महाराज मानसिंहके शयन-खंडमें पहुँच गया । मानसिंह सचमुच अन्तिम साँस ले रहे थे । पास केवल वैद्यराज खड़े थे । भोजको देखते ही वैद्यराजने साष्टांग दंडवत किया और खड़े हो बड़ी ही प्रसन्नतापूर्वक धीमे स्वरमें कहा—अब थोड़ी ही देर है । घटिका नहीं बल्कि पल दो पलका प्रश्न है...'

'मतलब ?'

'समाप्त...' मानसिंहकी ओर हाथ कर अत्यन्त उत्साहसे वैद्यराजने कहा । भोजका क्रोध आपेमें नहीं रहा । उसने दुष्ट वैद्यराजको एक जबरदस्त धौल लगाकर दो ढुनमुनिया खिला दीं और स्पष्ट कहा - 'महाराजको कुछ हुआ तो सर्व प्रथम तुम्हारा मस्तक धड़पर नहीं रहेगा !...'

'मंत्रिमण्डलकी आज्ञा...'

'पश्चात् मंत्रियोंका !'

इसी समय महाराज मानसिंहने जरा आँख खोली। विचित्र स्वप्न समाप्त हो जाने पर जो जाग्रति आती है उसका महाराजने अनुभव किया। मृत्युके सागरमें डुबकी खाते हुए वे क्षणभरके लिए सतहपर उतरा आये। भोजने तत्काल जाकर उनके पदका स्पर्श किया।

'भोज ?' महाराजने अत्यंत अशक्त स्वरसे कहा।

'जी, महाराज !'

'महाराज तो अब तू होने वाला है !'

'किसने कहा ?'

'मंत्रिमंडलने...'

'क्यों मंत्रिमंडल ऐसी बेहूदी बात करता है ? मैं महाराज ! जीते-जागते अपने महाराजके विराजमान रहते हुए ?'

'अब मैं जीता-जागता नहीं हूँ। हूँगा भी तो क्षण दो क्षण...अपने समक्ष...अपने शरीरमें मृत्युके प्रवेशका अनुभव कर रहा हूँ...'

'ऐसा क्यों हुआ ?'

'मंत्रिमंडल कहता है तुम्हारी आज्ञासे !'

'आपकी आज्ञाके मुताबिक मैंने मुसलमानोंको सीधे खदेड़ दिया। मैंने कोई आज्ञा-प्रदान नहीं की। मैं तो आज्ञा लेने आया हूँ महाराज ! आज्ञा कीजिये, अपना मस्तक उतारकर आपके चरणों पर रख दूँ !'

'क्या कहता है तू ? . मंत्रिमंडल तो मुझे तुझसे सावधान...रहनेके लिए कहता है...और तुझे विजय मिली...अतः...तू राज्य लेने आ रहा है...'

'मैं राज्य लेने आ रहा हूँ ? कौन है ? बुलाओ मंत्रियों और सेनापति को !' क्रुद्ध हो पास ही खड़े एक अंगरक्षकको भोजने आज्ञा दी।

'महाराज !...आपके मंत्रिमंडल जैसा राहुमंडल मैंने जीवनमें दूसरा देखा नहीं'...भोजने आगे कहा।

'होगा...यह राजमुकुट...राजदण्ड ले आ...मैं ही दूषित हूँ... किसीका दोष नहीं।'

पलंगके पास रखा हुआ महाराजका मुकुट और दण्ड भोजने महराजके सामने रख दिया।

'मेरी अन्तिम घड़ी है...क्यों न स्वयं मैं तुझे मुकुट पहना दूँ?' कहकर बैठनेका प्रयत्न करते हुए लड़खड़ाते हाथोंसे मुकुट ले भोजको महाराजने अपने पास बुलाया। भोजके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा, क्रोधका पारावार नहीं रहा। एकाएक उसके हृदयमें प्रकाश चमक उठा कि भोजकी विजयने उसे राजगद्दीका लोभी ठहरा दिया है! इतना ही नहीं उसके लोभको उचित ठहराकर मंत्रिमंडल एवं सामंत मंडलने उसे गद्दी दिलानेकी पूरी व्यवस्था कर रखी है! इसमें कठिनाई न पड़े इसलिए दिनों-दिन क्षीणशक्ति होनेवाले महाराज मानसिंहके जीवन-दीपको वैद्यराज द्वारा विष दिलाकर शीघ्रातिशीघ्र बुझानेका वे प्रयत्न कर रहे हैं।

'मुकुट पहननेके लिए भी तू झुकना नहीं चाहता' स्थिर खड़े विस्मय और क्रोधसे प्रज्वलित भोजसे महाराजने कहा।

'महाराज! मेरा प्रण है कि मैं जीवन भर राजमुकुट धारण नहीं करूँगा और न राजगद्दी परही बैठूँगा। यह प्रण आज नहीं बहुत पहले का है। भोजने उत्तर दिया भोजका कालस्वरूप पुनः प्रकट हो गया।

'तब...मेरे मंत्रीगण...सामंत...सलाहकार क्या कह रहे थे...कि तेरे मनमें राजलोभ समा गया है?'

'महाराजका पैर छू कर अपना प्रण मैं पुनः कहता हूँ कि भोज राजगद्दी पर पैर नहीं रखेगा और न राजमुकुट धारण करेगा! मैं तो महाराज वैराग्यकी खोज में हूँ...मुझे राजलोभ है ऐसा मानने और कहने वाले झूठे हैं...'

'होंगे...किन्तु मैं स्वेच्छासे तुझे...'

'जी नहीं महाराज! मेरा प्रण नहीं टल सकता!

'इधर आ जरा मेरे पास बैठ···तेरे जैसा मुझे एक बेटा मिलता है···'

'महाराज ! राज्यमें मुझे तनिक भी रस नहीं है ।'

'राज्यके रक्षणमें तो है ?'

'एक सैनिकके रूपमें...सेनापतिके रूपमें भी नहीं...

'भोज ! मैं गहरे गर्त्तमें उतरता जा रहा हूँ...मेरी एक विनती...'

'आज्ञा कहिए, महाराज !'

'अच्छा, मेरी आज्ञा...मेरे पास बैठ...मेवाड़को सुरक्षित रखेगा सो तू ही...मेरा पुत्र बन...मेरा तर्पण करना...मेरे व्यसनसे दूर रहना, बेटा !' महाराज बड़बड़ा रहे थे और भोजका हाथ पकड़नेका प्रयत्न कर रहे थे ।

भोज पलंगपर महाराजके मस्तकके पास बैठ गया । उनके थरथराते हाथोंमें अभी भी मुकुट था । राजा होते हुए भी निःसहाय पड़े हुए महाराजकी अंतिम घड़ी देख भोजकी आँखें भर आयीं । रुदन करने वाले भोजकी ओर महाराजने स्थिरतासे देखा । एकाएक उनके मुखपर शांति फैल गई । उनकी व्याकुलता जाती रही और बुद्धि स्वच्छ हो गई । उनकी गद्दी लेनेके लिए भोज षड्यंत्र रच रहा है, यह धारणा जो थोड़ी बहुत उनके मनमें बनी हुई थी वह भी दूर हो गई । भोजकी गोदमें राजमुकुट रखते हुए महाराजने कहा—मेवाड़का मुकुट तेरी गोदमें रखता हूँ, इसे धारण करना अथवा बिना धारण किये ही इसकी रक्षा करना...वचन दो...मेरे जानेके पूर्व...'

भोजने महाराजके हाथमें हाथ रख दिया—या महाराजने भोजका हाथ खींचकर अपने हाथमें ले लिया । और महाराज मानसिंहके नेत्र, मुख परका स्मित और हाथ जहाँ था वहीं स्थिर हो गया । उनके प्राण-पखेरू उड़ गये । शवको थोड़ी देर तक ध्यान पूर्वक देखने के पश्चात् भोजने काँपते हुए वैद्यराज से पूछा—'महाराजको क्या हो रहा है ?'

'कुछ नहीं'''इस देहको अब कुछ नहीं हो सकता'''अग्नि संस्कार के सिवा'''

'महाराजकी मृत्युके लिए तुम उत्तरदायी हो यह भूले नहीं हो न ?'

'सपूर्ण मंत्रिमंडल उपस्थित है यहाँ'''मैंने तो इनकी आज्ञा मात्र पालन की है'''' वैद्यराजने डरसे काँपते हुए कहा। भोजके पीछे-पीछे महाराजके शयन खंडमें आकर भोज और मानसिंहके बीच घटित दृश्यको अपनी आँखोंसे देखने वाले मंत्रिमंडल को आश्चर्य तो अवश्य हुआ तथापि भोजको प्रसन्न करने के लिए उन्होंने अपनी आखीरी तरकीब का सहारा ले विजय घोषणा की 'महाराज भोजकी जय !'

'चुप रहो मैं महाराज नहीं हूँ ! तथापि अपराधियोंको दण्ड तो मैं अवश्य दिलवाऊँगा !' भोजने जयकारको रोकते हुए कहा।

'हमारा अपराध ?'''राजगद्दीकी प्राप्तिका मार्ग आपके लिए सुगम कर देने पर भी हमें दण्ड ही मिलेगा ?' एकमंत्रीने पूछा।

'मैंने कभी नहीं कहा कि मैं गद्दी प्राप्त करने के लिए चित्तौर आया हूँ !

'सेनापति साक्षी है'''

'सेनापति ? मुझे पदभ्रष्ट करनेका आज्ञापत्र लाया था वही ? बताओ मैंने तुमसे कब कहा था कि मैं मेवाड़की गद्दीका इच्छुक हूँ ?'

'आपने राजाज्ञा मान्य नहीं की, महाराजकी शरणमें आना स्वीकार नहीं किया, महाराज मानसिंहको अस्थिर, व्यसनी कहा, अपनी सेनाको आपने विघटित नहीं किया; आपका सैन्य चित्तौरकी सेनासे भिन्न है और चित्तौरके लिए नहीं बल्कि समस्त आर्यावर्त्तके लिए आप लड़ रहे हैं, यह आपका कथन था...इससे मैंने खयाल किया कि आप चक्रवर्तीपद चाहते हैं...जो मंत्रिमण्डलके साथ मैं भी चाहता था कि आपको प्राप्त हो...'

'बस करो अपनी यह निर्माल्य बेवकूफी !...' भोजने फटकारा।

'जो होने वाला था हो गया ? संपूर्ण चित्रकूटकी प्रजा चाहती है कि आप राजमुकुट धारण करें ।' एक मंत्रीश्वरने कहा ।

'बेवकूफी शब्दसे तुम्हारे जैसे नालायक मंत्रियोंको संतोष कभी नहीं हो सकता...'

'किंतु...गद्दी सूनी नहीं रह सकती; किसीके सिर पर जब तक मुकुट न रखा जाय तब तक महाराजका दाह-संस्कार नहीं किया जा सकता ।' दूसरे मंत्रीने कहा ।

'और...मुकुट धारण करनेकी सचमुच आपकी अनिच्छा ही हो...' तीसरेने कहा ।

'तो ?' भोजने पूछा ।

'तो...किसी सगे संबंधीमें से पसंद कर...उसके सिर मुकुट...'

'मुकुटके रक्षणका भार महाराजने हमें सौंपा है...महाराजकी मृत्युके लिए उत्तरदायी तुम लोगोंको भयंकर दण्ड तो अवश्य ही मिलना चाहिये । प्रथम दण्ड तो यह...'

भोजको रोककर एक सामंत भोजका अधिकार पूछने लगा ! 'किंतु आप किस अधिकारसे हमें दण्ड दे सकते हैं ?'

'अधिकार ? मुकुटका रक्षक मैं बनाया गया हूँ यह प्रथम अधिकार... और देव, बाली ? संपूर्ण मंत्रिमंडल और सामंतमंडलको पकड़कर बंदी कर दो । कृतघ्न, विश्वासघातक, कर्मचारियोंको दण्ड देनेका किसी भी प्रजाजनको अधिकार है !' भोजकी आँखसे चिनगारियाँ बरसने लगी । किसीका वहाँसे हिलनेका भी साहस नहीं हुआ । सरलतासे सबको बाँध लिया गया ।

इसके पश्चात् महाराजकी स्मशान यात्रा निकली । गद्दीपर केवल मुकुट रखा हुआ था ।

गर्वीली महारानियोंने महाराजके साथ सहगमन किया ।

मंत्रिमण्डलकी पक्षपाती थोड़ीसी जनताने कहना भी प्रारंभ कर

दिया—देखा न ? इसमें भी कोई शंका है कि महाराजकी गद्दीपर अब भोज बैठेगा ?

'महाराजकी मृत्यु भी यही शंका उत्पन्न करती है ?'

'यदि ऐसा हो भी तो क्या बुरा ? भोज जैसा बत्तीस लक्षण युक्त चित्तौरकी गद्दी पर बैठ जाय तो संपूर्ण मेवाड़का भाग्य जाग जाय।' मंत्रिमंडलके किसी विरोधीने कहा।

परन्तु, राजमुकुट, राजदंड फेंक कर भाग जानेकी इच्छा रातमें ही भोजको हो आई। किंतु इस मुकुट एवं दण्डका भार वह किसे दे सकता था ? यह विकट प्रश्न था !

१२

मेवाड़ भरमें महाराज मानसिंहकी मृत्यु, भोजकी विजय एवं मेवाड़की गद्दीपर बैठने वाले उत्तराधिकारीकी चर्चा चल रही थी। मानसिंहको कोई संतान नहीं थी। मंत्रिमंडल एवं सामंतमंडलपर जनताका तनिक भी विश्वास नहीं था ! मुस्लिम आक्रमणका भय सतत सताया करता था। सिंधु एवं सिंधु तटपर फैले हुए पश्चिम पंजाब पर उनका शासन प्रारंभ भी हो गया था। कभी सुनाई पड़ता कि मुसलमान कन्नौज पर चढ़ गये हैं। कभी सुनाई पड़ता कि वल्लभीके मार्गसे आनर्त्त एवं लाटमें मुसलमान प्रविष्ट हो चुके हैं। शुर्पारक एवं थानामें भी उनका बहुत आना-जाना हो रहा था। चालुक्योंका मुस्लिम सैन्य लोगोंके मनमें भय उत्पन्न कर रहा था और हमला मेवाड़ भूमि पर आही गया ! भोज एवं भोजके खास्री सैन्यने सामना कर मुसलमानोंको शिकस्त न दी होती तो वे आर्यावर्तके मध्यभाग तकके सत्ताधारी अवश्य ही बन गये होते। युद्धसे राजाका परिवर्तन, सेनाओंके आवागमनसे प्रजाको

त्रास जरूर होता है किन्तु यह त्रास ऐसा नहीं था कि रामसिंहके स्थान पर भीमसिंह राजा बन जाय अथवा चालुक्योंके स्थान पर राष्ट्रकूट आ जायँ तो प्रजाका जीवन-चक्र ही बिलकुल रुक जाय। जो राजा अथवा राजकुटुम्ब नया आता था वह ब्राह्मणोंके धर्म-क्षेत्रका निर्वाह करता था, वैश्योंको व्यापारकी सुविधा देता था, कृषकोंकी खेतीको हाथ नहीं लगाता था, राजमार्ग, वृक्षारोपण एवं धर्मशालाओंकी व्यवस्था करता था; तालाब, कूप, बावली एवं मंदिर बनवाता था; ग्रामीणों—पंचोंको वस्त्र दे उनका महत्त्व बनाये रखता था, विद्वान, संगीतकार, स्थपति एवं नृत्यकारोंका सम्मान करता था। महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन होता था सेनामें, मांडलिकों, सामंतों एवं मंत्रिमण्डलोंमें। प्रजा व्यवस्था की स्थिरतामें कोई खलल नहीं पड़ता था। इनमेंसे कितने ही मांडलिक, सामंत और मंत्रीगण पूर्ववत् अपने स्थान पर बने रह जाते थे जिससे नवागंतुक राजकुटुम्बकी प्रशस्तियाँ विद्वान लिखते, व्यापारी एकके स्थान पर दूसरे राजवंशके हाथ वस्तुओंका लेन-देन करते, कृषकोंको राजभाग देनेमें कोई अड़चन उपस्थित न होती। पहला राजमंडल बौद्ध होता तो गुफा एवं चैत्यकी रचना करता। यदि नवीन मंडल शैव, भागवत या शाक्त होता तो शिव, विष्णु या देवीके मन्दिर बनवाता।

परंतु मुस्लिम आक्रमणने प्रजाको भयत्रस्त कर दिया था। मुस्लिम शासकोंका वेद-विधिके साथ कोई संबंध था ही नहीं। देव-देवीके मंदिरों के वे द्वेषी थे, मूर्तिभंग करना उनके कर्मका एक अंग था। आर्य कारीगरों के हाथकी नक्काशी उन्हें आँखों देखे नहीं सुहाती थी। मस्जिद बनवाने में उन्हें अधिक रस था। विद्यापीठ और पाठशालाओंके पास ही वे मकतब—मदरसे स्थापित करते। काफिरको मुसलमान बनाना उनका महान धर्म-कार्य था। मुसलमान न बनने वालेको जजिया कर देन पड़ता था साथ ही काफिर होनेका काला टीका सदैव लगाये रहना पड़ता। हिंदू मुसलमान बन सकता था किंतु मुसलमाना

हिंदू नहीं बन सकता था। श्रेष्ठीकी प्रतिद्वंदितामें तुर्की, इरानी एवं अरबी सराफ तथा सौदागर खड़े रहते थे। बढ़नेका अवसर उन्हें ही मिलता जो मुसलमान हों अथवा बन जायँ। और जीवनको सफल बनानेके लिए सैकड़ों हिंदू मुसलमान बन भी जाते।

देवालयके आस-पास बसने वाली आर्य प्रजाको देवालयका एक टुकड़ा भी यदि कोई अलग कर देता तो आर्य-संस्कृति पर आघात होने जैसा लगना स्वाभाविक था। मुसलमान हल्ले सर्व प्रथम मूर्ति खण्डित करते एवं मंदिरके शिखरको ढा देते थे! देवमूर्ति कुठारके अधीन बनती यह सच है। देवता बोल नहीं सकता था न शत्रुका सामना ही कर सकता था, यह भी सच है। परंतु इसमें देवताकी अपेक्षा उसका आवाहन करने वाले पूजकोंका दोष अधिक था। ऐसे देवताकी छायामें फूली-फली संस्कृति को भय सदैव लगा करता था। देवमूर्तिका खंडन अथवा अपमान देवताके साथही समस्त आर्य संस्कृतिका खंडन अथवा अपमान था। इससे मुसल-मानोंका आक्रमण राजा और प्रजा दोनोंको भयत्रस्त करने वाला बन गया था। आर्य राजागण चक्रवर्ती पदकी तृष्णामें आपसमें लड़ते कटते उस समय व्यक्ति अथवा राजसमूहके इने-गिने मोहरे मात्र बदलते, चौपड़ ज्योंका त्यों बना रह जाता। किंतु जब मुस्लिम आक्रमण होता तो पूरी बाजी ही बदल जाती। प्रजामें भी उथल-पुथल मच जाती। अतः प्रजाके लिए मुस्लिम आक्रमण केवल राजपरिवर्त्तन नहीं था बल्कि जीवन परिवर्तन था।

तदुपरि व्यसनी, लंपट एवं पूर्वजोंके नामपर जीने वाले राजा गण इस्लामकी झपेटमें भूसीके समान उड़ जाते थे। प्रजामें उनके प्रति विश्वास नहीं रह गया था कि वे उसकी रक्षा कर सकेंगे। रक्षकत्वकी भावनाके स्थानपर राजाओंमें ईर्ष्याकी एक ऐसी लहर दौड़ गई थी जिसमें एक राजा अपने शत्रुको नीचा दिखानेके लिए मुसलमानोंकी सहायता माँगता था। और अन्तमें दोनोंको मुसलमानोंके सामने नीचा

देखना पड़ जाता था ! ऐसे राजा भला प्रजा अथवा प्रजाकी संस्कृतिका रक्षण भी क्या कर सकते थे ?

आर्य प्रजाने अपने अहम्‌के रक्षणार्थ स्वयं प्रयत्न करना प्रारंभ कर दिया। इन प्रयत्नोंमें स्पर्शास्पर्श रूपी रुकावटें खड़ी की गईं। निर्धारित सीमासे बाहर न जानेके नियम बनाये गये। मजबूत किलोंकी रचना की गई और आर्यत्वने समुद्रके पूर्ण प्रवाह-वेग पर उछलनेके बजाय इन बंधनोंमें मुँह छिपाकर अपने चारों ओर सीप, शंख और कौड़ियाँ बाँध स्वरक्षणके व्यूह सर्जनका संतोष मान लिया।

ऐसी स्थितिमें कोई राजा प्रजा-जीवनको उल्लसित करने वाला कार्य करे जिससे संस्कृतिका प्रतिनिधित्व प्रकट हो और प्रजा उसमें देवत्व, ईशत्व, प्रभुत्वकी कल्पना कर ले तो क्या आश्चर्य था ? सिंधके ब्राह्मण शासक दाहिरने पराजित होने पर भी मुसलमानोंका जबरदस्त मुकाबला किया। मुसलमान सिंधु पार नहीं जा सके यद्यपि उनका प्रयत्न चालू रहा। ऐसे ही एक बलवान प्रयत्नको निष्फल बनाने वाले भोजके प्रति प्रजामें सद्‌भाव एवं भक्ति भावका उमड़ आना स्वाभाविक ही कहा जायगा। तदुपरि सब लोग भोजको ब्राह्मण ही समझते थे। संस्कृतिके वाणी विभागकी विशुद्धिका रक्षक पूज्यवर्ग जब बाहुबलका परिचय दे संस्कृतिकी शक्ति-ज्योति ज्वलंत रखे उस समय इस भक्तिभावकी मर्यादा नहीं रहती।

पूरा मेवाड़ एक स्वरसे पुकार उठा कि चित्तौरकी गद्दी पर इस समय कोई बैठने योग्य है तो भोज ! मंत्रिमंडल एवं सामंतमंडल मानसिंहके किसी दूरके सगे-संबंधीको ढूँढ़ निकालने, किसी साधारण मांडलिकके पुत्रको पसंद करनेकी अथवा ईश्वर भरोसे किसी दिन प्रभात समय चित्तौरका द्वार खोलते ही जो व्यक्ति सामने आ जाय उसे ईश्वर-प्रदत्त राजा मानकर स्वीकार कर लेनेकी बात चला रहे थे। उस समय प्रजाकी जबरदस्त आवाज एक ही थी, भोजको राज्य मिले। आर्य संस्कृति कालभोज चाहती है।

युद्धके पश्चात् भोजका नाम प्रजाने कालभोज रख दिया था। कराल

कालका स्वरूप धारण कर युद्धके परिणामको पलट देने वाले इस वीरकी युद्ध दक्षता जिस किसीने देखी थी वह भला उसे कभी भूल सकता था ? कालभोजके अतिरिक्त किसी दूसरेको प्रजा राजा रूपमें स्वीकार करनेके लिए तैयार न थी। उसके गद्दी पर न बैठने पर मेवाड़ भूमिमें भयंकर उत्पात मचनेकी सुनगुनी सुनाई पड़ रही थी। प्रजा कटिबद्ध हो जाय तो जब चाहे भूकंप उत्पन्न कर सकती है।

ऐसी डाँवाडोल परिस्थितिमें मंत्रिमंडल और सामंतमंडलको सत्ता से दूर कर राज-व्यवस्थामें स्थिरता लाकर, गद्दीको खाली रख भोज राजदण्ड और राजमुकुट सह पराशर क्षेत्रके हारित आश्रमके लिए रवाना हो गया। मुकुट न तो उसने अपने सिर पर रखा था और न राजदण्ड ही हाथमें लिया। मृत महाराज मानसिंहकी इस थातीकी रक्षा उसने जीवनके अन्ततक करनेका निश्चय कर रखा था। युद्धके पश्चात् हारित मुनिका दर्शनकर अपनी समस्याका उत्तर उनसे प्राप्त करनेकी तीव्र इच्छा भोजमें जाग्रत हुई और अपना निश्चय उसने सब पर प्रकट कर दिया कि वह चित्रकूट चित्तौर छोड़ स्वयं मुनिके मठमें जा रहा है।

'राज्यकी क्या दशा होगी ?' बालीने यह निश्चय सुनकर पूछा।

'अभी मृत महाराज मानसिंहकी आन फिरती है। इस आनका उल्लंघन करने वालेको प्राणदंड दिया जायगा।' भोजने उत्तर दिया।

भोजके हृदयमें भयंकर पश्चात्ताप घर किये हुए था। उसे खुश रखने के लिए उसके बलसे विस्मयोपहत हो उसका मार्ग सरल कर देनेकी खुशामदमें निर्बल महाराज मानसिंहका वध करने वाले मंत्रिमंडलने भोजके कपालपर काला टीका लगा दिया था! जिसे राज्यकी स्वप्नमें भी इच्छा न थी वह भोज राजगद्दीके मालिककी हत्यासे प्राप्त राज्य भला क्षण भरके लिए भी अपने पास रख सकता था ?

दूसरी ओर राजमुकुट और राजदण्डकी रक्षाका भार मृत्यु समय महाराजने उसे सौंपा था...कितने विश्वास पूर्वक !

परन्तु यह विश्वास उत्पन्न होनेके पूर्व उसे हत्यारेके रूपमें मान बैठे महाराजकी असहाय आँखोंका विचार आते ही राज्यके साथ स्वयं अपने पर उसे अत्यन्त तिरस्कार हो जाता। यद्यपि निर्माल्य मंत्रिमंडल एवं सरदारोंको कैदकर एक प्रकारकी स्वस्थता प्राप्त कर मृत महाराजके नाम पर आज्ञा प्रचारित करना भी उसने प्रारंभ कर दिया था तथापि मानसिंहकी मृत्यु उसके हृदयके टुकड़े-टुकड़े किये डाल रही थी। मानसिंहका सच्चा उत्तराधिकारी यदि उसे मिल गया होता तो उसे गद्दी सौंप कर वह अपनी माताके पास अथवा मुनिके पास अवश्य ही भाग गया होता।

स्वयं उसे राज्य नहीं करना है, यह उसका निश्चय अटल था! तथापि राज्यकी डाँवाडोल स्थिति उसके समान वज्र हृदय पुरुषको भी डिगा देनेके लिए पर्याप्त थी। प्राप्त विजय उसके आतंक और मानको बढ़ाने वाली थी। जिन सैनिकोंने दूरसे भी उसे युद्ध करते हुए देखा था वे उसकी आज्ञा-पालन करनेमें अपना सौभाग्य समझते थे। इस राजसैन्यके सामने खाखी सेना एक क्षणमें तैयार हो सकती है, भोजकी इस शक्तिको भी मेवाड़ने देख लिया था। कोई सामंत ऐसा न था जो भोजका सामना करनेका साहस कर सकता। सोलंकी राव कदाचित् साहस कर लेता किंतु उसके मनमें स्वप्नमें भी ऐसा करनेका विचार नहीं आ सकता था क्योंकि उसकी पुत्री मीनाक्षी भोजके साथ विवाह करनेका हठ किये बैठी थी। पुत्रीके विरुद्ध, परिवर्तित परिस्थितिमें, माता-पिता कोई कठोर कार्यवाही कैसे कर सकते थे?

मानसिंहकी मृत्युसे अस्थिर मेदपाट और चित्रकूटमें शांति स्थापन करने वाला भोजका हृदय शांति प्राप्त न कर सका। शान्ति प्राप्त करनेके लिए ब्रह्मवेशमें चित्रकूटसे नागद्रहके लिए एक रात्रिमें वह निकल पड़ा। बाली और देवको राजकाजका अनुभव यात्रामें प्राप्त हो चुका था। भोजको तनिक भी पता न चले इस प्रकार खाखी सैन्यकी एक टुकड़ी रक्षणार्थ उसके पीछे भेजकर वे स्वयं भी उसके पीछे रवाना हो गये और भोज राजव्यवस्था

निरीक्षणार्थ निकल चुका है; यह घोषणा चारों ओर करवा दी।

भोज, देव और बालीकी त्रिपुटी अब संपूर्ण मेदपाटके उच्छेदक तत्त्वोंके लिए भयावह बन चुकी थी। मंत्रिमंडल जैसे समर्थ समूहको क्षणमात्रमें बंदी बना देने वाले भोजके साथ खेल करना, उसके बलकी परीक्षा करना अथवा उसके विरुद्ध षडयंत्र रचनेकी तूफानी तत्त्वोंमें हिम्मत नहीं रह गई थी। इसके सिवा भोज सर्वत्र प्रिय भी बन चुका था।

भोज जैसा समझता था वैसा वह अकेला नहीं रह सका। उसका दर्शन करनेके अभिलाषी मानव प्रत्येक नगर और गाँवमें निकल आये और उसकी जय-जयकार पुकारी जाने लगी।

'भोज आ गया!'

'यह तो हमारा महान् भोज है!'

'भोज हमारे ही गाँवकी ओर आ रहे है!'

साथही 'पधारिये, महाराज कालभोज!' इस प्रकार आमंत्रण देने वाले लोग भी उसे मिले।

'महाराज मैं नहीं हूँ। अभी महाराज मानसिंहकी आन फिरती है; यह भूलिये नहीं।' आमंत्रण देने वालेसे वह ब्रह्मपुत्र कहता।

नागद्रह पहुँचते ही उसने आश्चर्यके साथ देखा कि नागद्रहके सोलंकी राव बड़े ही ठाटबाटके साथ भोजका सत्कार करनेके लिए आगे आकर खड़े हैं! भोजकी पश्चात्ताप पूर्ण आश्रम-यात्रा मेवाड़को संगठित कर रही है, इस ओर भोजका शायद ही ध्यान रहा हो परन्तु उसके पीछे-पीछे उसपर नजर रखने वाले देव-बालीको इस यात्राका परिणाम अच्छी तरह दिखायी पड़ता गया।

सत्कारको झटकार देने जैसी उच्छृङ्खलता भोजमें न आ सकी—यद्यपि उसके पश्चात्तापसे पीड़ित हृदयने अत्यंत असंतोष अनुभव किया।

'मेरे लिए यह मान उचित नहीं है, रावजी!' उसने मांडलिक सोलंकी रावसे कहा।

'मेवाड़का विजयी सेनापति मेरे आँगनमें आये और निरादृत लौट जाय ?'

'किंतु राजन् ! मैं राज्याधिकारी रूपमें नहीं आया हूँ, माकी झोपड़ीमें माका दर्शन करनेके लिए जा रहा हूँ ।'

'माताजीको महलमें बुला लें ?'

'जी नहीं, वे नहीं आयेंगी...और मैं भी माताके पदचरणके सान्निध्यमें ही आजकी रात व्यतीत करना चाहता हूँ ।'

'यह भी हो सकता है ? आज तो मैंने राजमहलमें उत्सवका प्रबन्ध कर रखा है ।'

'मुझे क्षमा करें ! मेरा हृदय इस समय उत्सव नहीं चाहता ।'

'क्यों !

'मैं राज्य लेने नहीं, छोड़ने आया हूँ !' भोजने उत्तर दिया और सोलंकी मांडलिकके उत्सवको भोजने मुलतवी करा दिया ! इतना ही नहीं किसीको भी साथ लिए बिना भोज अकेला ही अपनी परिचित पर्णकुटीकी ओर शीघ्रतासे चल पड़ा ।

संपूर्णनगर भोजका राजसत्कार देखनेके लिए मुख्य मार्ग पर टूट पड़ा था । अभी भोज आयेगा और शहरके एक धन्यपुत्रका हम दर्शन करेंगे ; ऐसी उत्साहपूर्ण वृत्तिसे बाट जोहने वाले मानव समुदायको एक ओर रख भोज ब्रह्मपुरीकी ओर घूम पड़ा । भोजको सर्वप्रथम राजमहलमें ले जानेकी घोषणा हो चुकी थी अतः श्रीलेखाकी पड़ोसी स्त्रियोंने उससे आग्रह करते हुए कहा भी, 'तुझे नहीं आना है क्या ?'

'कहाँ ?'

'कहाँ क्या ? पूरा नगर भोजको देखनेके लिए उलट पड़ा है, उसका राजसत्कार हो रहा है और स्वर्णरथ पर राजाजीके साथ वह राजमहलमें जानेवाला है !'

'मैं नहीं चलूँगी ।'

'क्यों ?'

'मेरी नजर लग जायगी ! मुझे तो अपना ब्रह्मकुमार जैसा भोज देखना है...राजभोज नहीं ! मेरे लिए इतना ही सब कुछ है।' भोजको देखनेके लिए व्याकुल माताने कहा। सबको बिदाकर वह अकेली अपने आँगनमें घूमती-फिरती, बैठती, राह देखती, दूर-दूर तक आँख दौड़ाती हुई आश्रममें ही रही। अत्यन्त तड़क-भड़क वाला राजसत्कार अपने पुत्रका शायद उससे सहा न जाय, इस भयसे विकल माता पुत्रके सत्कारका स्वप्न झोपड़ीमें बैठे-बैठे ही देख रही थी।

एकाएक झोपड़ी खड़खड़ाई, श्रीलेखा चौंक उठी ; भोज आ गया क्या ! नहीं, त्र्यंबकभट्ट पधार रहे थे।

'मुझे दृढ़ विश्वास था कि आप नहीं गई होंगी !'

'कहाँ भट्टजी ?' श्रीलेखा आज पूरे भानमें न थी।

'भोजको देखनेके लिए ! उसका आज राजसत्कार है। कैसे लोग टूट पड़े हैं उसे देखनेके लिए !'

'समय था जब अनेक राजसत्कार देखें। मैं तो खड़ाऊँ पहने, यज्ञोपवीतधारी पुत्रको देखनेके लिए उत्सुक हूँ...मैं जाऊँ और मेरी नजर लग जाय, तब ? मांकी मीठी नजर लगना असंभव तो है नहीं !'

'इसकी कुण्डलीमें ही राज्य और राजकन्या है। इसे कौन मिथ्या कर सकता है ? श्रीलेखा, पुत्रके अनेक राजसत्कार आप देखियेगा !'

'मुझे न तो राज चाहिये न पाट, भट्टजी ! जैसा है वैसा ही मैं चाहती हूँ...मेरे पास आये और उसके माथे पर मैं हाथ फेरूँ...बस...'

श्रीलेखाका कंठ भर आया, आंखें डबडबा आईं, और खड़ाऊँ खटका। भोजकी ही यह पदचाप हो सकती थी ! माता और गुरुने पीछे देखा। सचमुच, भोज, फुर्तीसे चला आ रहा था। उसके सिरपर राजचिन्हका कहीं लेश भी नहीं था न सैनिक शोभन शस्त्र ही थे। राजसत्कारका एक पुष्प भी उसके शरीरपर न था ! स्वच्छ, सादा,

ब्रह्मपुत्र आगे बढ़ गुरु एवं माताके चरणोंमें साष्टांग प्रणाम कर रहा था।

श्रीलेखाकी आँखोंमें आंसू उमड़ आये। पुत्रके मस्तकपर उससे हाथ भी नहीं रखा गया। त्र्यंबकभट्टने भावपूर्वक शिष्यको उठाकर खड़ा किया। माता अभी अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे पुत्रको देख रही थी। समय बीत चला। किसीमें कुछ कहनेका सामर्थ्य नहीं था! माता-पुत्रके मिलनकी ऊर्मि अकथ्य है।

त्र्यंबकभट्टने अन्त में कहा, 'श्रीलेखा! पुत्रको लो।'

'जुग बीत गया, बेटा! तुझे देखे हुए।' कह कर पुत्रको अपने पास बैठाकर वत्सको चाटती हुई गायके समान श्रीलेखा भोजके पीठ और माथेपर हाथ फेरने लगी।

कुछ देर पश्चात् त्र्यंबकभट्टने कहा 'श्रीलेखा! बैठ जाओ। भोज! तू भी थक गया होगा।'

श्रीलेखाको होश आया। पुत्रको बैठाकर स्वयं भी बैठीं—पुत्रको बगलमें लेकर। लोहस्तम्भ काटने वाला महावीर माताके पास मोम जैसा मुलायम बन गया था।

'भोज! तेरा राजसत्कार होने वाला था?...इस प्रकार कहाँ से आ धमका?' श्रीलेखाने बहुत देर बाद पूछा।

'मा! तेरे चरणोंमें, गुरु चरणोंमें, मुनि चरणोंमें मेरा सच्चा राज-सत्कार है। इसे छोड़ कहीं जा सकता हूँ?' भोजने उत्तर दिया। माता उसका मुँह देखती रह गई। यही भोज उसका पुत्र है जिसका नाम मेवाड़के प्रत्येक व्यक्तिकी जिव्हा पर है?

'मुझे विश्वास था कि भोज मासे मिले बिना कहीं जाने वाला नहीं। इसीसे राजसत्कार देखनेके बदले उससे भेंट करनेके लिए यहाँ चला आया।' त्र्यंबकभट्ट बोले। इतनेहीमें जन समुदायको खबर लगी कि सत्कार-समारंभ मुलतवी हो गया है और इस सब जंजालसे छुटकारा पानेके लिए भोज अपनी पर्णकुटीमें माताके पास पहुँच गया है। सभी

चाहते थे कि वे नागद्रहमें पोषित इस वीरका दर्शन करें अतः खबर लगते ही मानव-समुदाय ब्रह्मपुरीकी ओर मुड़ गया। 'कालभोजकी जय' पुकारने वाले मानव-समूहको भोजने बाहर आकर नमस्कार किया और लोगोंने हर्षनादके साथ उसपर पुष्प-वर्षा की।

लोक-सत्कारमें काफी समय बीत गया। भोज पुनः आकर माताके पास बैठ गया और उसने गहरा निःश्वास छोड़ा।

'क्यों इस प्रकार आह भर रहे हो, बेटा ?' श्रीलेखाने पूछा।

'कोई बात नहीं है !'

'फिर भी...'

'मेवाड़के स्वामीकी मृत्यु हुई है। जिसका शोक किसीको भी नहीं है। मैं नहीं रहूँगा तब भी शायद ही किसीको शोक हो। प्रशंसा इतनी क्षणजीवी होती है।' भोजने उत्तर दिया।

'आह मत भर। इतना तू समझ सका, यही क्या कम है ?' त्र्यंबकभट्टने कहा।

उसके पुराने परिचित और मित्र भी उससे मिलनेके लिए आये। उनके साथ यथायोग्य सरलतासे उसने बातचीत की। और जब राजमंदिरसे उसके लिए राज-भोजनका आग्रहपूर्ण निमंत्रण आया तब उसे अस्वीकार करनेके लिए तत्पर भोजको रोककर श्रीलेखाने ही आग्रह किया कि ऐसे सद्भावका तिरस्कार करना उचित नहीं है। नागद्रहका एक सामान्य ब्रह्मपुत्र संपूर्ण मेवाड़का स्वामी होने पर भी आज अत्यंत साधारण वेशमें अपनी मासे मिलने आया है, इस बातने भोजके वीरत्वपर सुनहरे रंगकी एक पर्त चढ़ा दी।

राजवंशीय आतिथ्यसे भोज अब परिचित हो गया था। नागद्रहके राव जैसे प्रथम कोटिके सामंतको चित्तौरमें घटित सब घटनाओंका पूर्ण पता था। मीनाक्षी चित्तौरके पक्षमें युद्ध करनेके लिए भोजके सैन्यके पीछे निकल गई थी यह घटना उनकी आँखें खोल देनेके लिए काफी थी।

कुमारीका विवाह हो चुका है इस ज्योतिषवाणीके कारण उलझनमें पड़े हुए मातापिताको मानसिंह जैसे सम्राटका सम्बन्ध हाथसे निकल जाना तनिक भी अच्छा नहीं लगा था। भोजके प्रति मीनाक्षीका पक्षपात उनके कान-आँख तक चित्तौरमें ही पहुँच गया था। परन्तु इस पक्षपातको प्रभावोत्पादक रीतिसे समाप्त करनेकी कोई युक्ति उन्हें सूझनेके पूर्व ही भोज महराजका आदरणीय मित्र और बादमें सेनापति नियुक्त हो गया। इससे युक्तिके उपयोगकी कोई आवश्यकता ही नहीं हुई। पश्चात् विजयी भोजको चित्तौरकी गद्दी स्वयं चाहती है, यह खबर मिलते ही सोलंकी रावको मीनाक्षीका विरोध करनेकी जरूरत भी नहीं रह गई! इसके विपरीत उन्होंने अतिथि बने भोजको मेवाड़की गद्दी स्वीकार करनेमें उसकी आनाकानीके लिए टोका भी।

'देखिये, राव जी! गद्दी पर बैठनेका अर्थ समस्त प्रजाकी चिन्ता सिरपर लेना है। राजगद्दी केवल वैभव या युद्ध हो तो सरल बात है। सम्पूर्ण प्रजाका विचार मुझे घबड़ा देता है...'

किन्तु प्रजा ही आपको चाहती हो तो?'

'मेरा प्रण बीचमें आता है।'

'कैसा प्रण?'

'कि मैं राजगद्दी पर कभी न बैठूँगा।'

'तब?'

'मैं अपने गुरुके पास जा रहा हूँ।'

'त्र्यंबकभट्ट ही तो आपके गुरु हैं?'

'जी हाँ, शास्त्रोंका अध्ययन मैंने उन्हींके पास किया है। परन्तु जीवनकी सच्ची शिक्षा मैंने हारित मुनिसे पायी है।'

'त्र्यंबकभट्टने आपके ग्रह देख बहुत पहले कह दिया है कि राजपद आपके ललाट पर लिखा है।'

'आपने उन्हें मेरे ग्रह दिखाये, किसलिए?' कुछ चौंककर भोजने पूछा।

'सहज...'

इसी समय रनिवाससे समाचार आया कि रानी जी भोजको अन्दर बुला रही हैं।

राजमहल स्वयं एक यंत्र जैसा होता है जिसमें रनिवास यंत्रका केन्द्र होता है। रानीजीके पास पहुँचनेके पहले ही कुँवरी मीनाक्षीने उसे घर पकड़ा।

'मुझे तो...रानीजीने बुलाया है?' भोजने मीनाक्षीसे प्रश्न किया।

'दूसरा कोई बुलाये तो आप नहीं आयेंगे शायद...'

'यह बात नहीं...मैं तो केवल पूछ रहा था...'

'पूछिए या न पूछिए। बहुत बड़ा मनुष्य बननेके पूर्व ही मैंने सब कुछ प्रकट कर दिया है।'

'मतलब...माता-पितासे भी कह दिया है, क्यों?'

'जी हाँ।'

'कदाचित तुम्हें खबर नहीं कि नरगिसको मैं तुम्हारे पहलेसे जानता हूँ।'

'मुझे नरगिसने सब बता दिया है।'

'तब?'

'ईरान-खुरासान जाकर राज्य करना, तब नरगिसको रानी बनाना।' तबतक तो मैं हूँ न? मेरा निश्चय तो आप जानते ही हैं।'

'मेरे दो निश्चय हैं, कभी राजगद्दी पर न बैठना और कभी स्त्रीसंग...'

'मूर्खतापूर्ण निश्चयोंको बदलना पाप नहीं कहा जा सकता भोज! और स्त्रीहठके आगे अवश्य ही नमना पड़ेगा...गद्दी और स्त्री दोनों स्त्री जाति हैं...' इतना कह कर भोजको मीनाक्षीने रानीजीके पास जानेके लिए मुक्त कर दिया।'

जिसके साथ पुत्री विवाह करनेका दृढ़ निश्चय कर बैठी है उस युवकको अपने नजदीक बैठाकर देखने और निरीक्षण करनेका रानीजीको आज

पहला अवसर मिला था। प्रायः अत्यधिक पास बैठाया हुआ व्यक्ति बद-सूरत बन जाता है! अभी भोजका नावीन्य मोहक था। स्वस्थ देह, संयमी जीवन, स्थिर मन एवं कपट-रहित भाव किसी भी मानवको सौंदर्य-युक्त बना सकते हैं। भोजमें रानीजीको सौंदर्य दीख पड़ा।

साथ ही राजगद्दी पर न बैठनेका उसका आग्रह एवं एकाकी जीवन व्यतीत करनेका निश्चय उसे अधिक आकर्षक बना रहा था। त्र्यंबकभट्ट द्वारा देखी गई मीनाक्षी एवं भोजके ग्रहोंकी सानुकूलता भोजके निश्चयसे राव एवं रावरानीके मनमें कोई दुश्चिंता उत्पन्न नहीं होने दे रही थी। वे आश्वस्त थे। मीनाक्षीका निश्चय भी भोज ही जैसा प्रबल था।

राजमहलसे मानसह अपनी झोपड़ीमें वापस आने पर भोज रातभर माता एवं पड़ोसियोंको आप बीती घटनाओंका वर्णन सुनाता रहा। पश्चिम आर्यावर्तकी यात्रासे लौटने पर माताके पास एक ही दिन रहकर चित्तौरके लिए प्रस्थान कर देने वाले पुत्रको कहनेके लिए इतनी बातें थीं कि वह समाप्त नहीं हो सकती थीं। भोजका स्वभाव बात बढ़ानेका नहीं था। फिर भी माताके प्रश्न अनेक थे और उनकी जिज्ञासा अतृप्त ही रहती।

भोजने यात्रासे अपने गुरु त्र्यंबकभट्टको एक कामधेनु भेजी थी। वही उसकी यात्राके बारेमें पहला समाचार था जिससे लोग समझ सके थे कि भोज इस समय कहाँ है। उसीका प्रसंग छिड़ा!

'भट्टजीको दी गई गाय हारित मुनिके आश्रममें चली गयी, जिससे गुरु-दक्षिणामें त्र्यंबकभट्टको एक कामधेनु देना आवश्यक था।' भोजने कहा।

'किंतु इस जातिकी गाय तो प्रायः नाबूद हो गई है?' माताने पूछा।

'एक मुस्लिम फकीरके पास थी। वह अग्निमें नंगे पैर चलकर कुछ वैदिकोंको आश्चर्यमें डाल मुसलमान बना रहा था। भुजंगनाथने मुझे उसके पास भेजा...'

यह सुनकर माता चौंक उठी। भोजने उसे शांत करते हुए पूरी बात बताई। दोनोंके बीच हुई स्पर्द्धाका विवरण कह सुनाया। फकीर तो अग्नि पर केवल पैर रखता था जब कि जलते हुए लाल अंगारोंपर भोज पूरा लेट गया। किंतु देहको अग्निने स्पर्श भी नहीं किया। होड़में भोज द्वारा इस्लाम स्वीकार अथवा फकीरके पासकी कामधेनु थी। भोज प्रज्वलित लौ उठते हुए अंगारोंकी चिता पर अ...ल...ख पुकार कर सो गया।

'हाय बाप!' माता चिल्ला उठी।

'किंतु मुझे कुछ हुआ नहीं, मा! देखो मैं अच्छा-खासा आपके सामने बैठा हूँ, गोमाता गुरुजीको प्राप्त हो गई और मैं ऋणमुक्त हो गया।'

'तुझे जरा सा दाग भी नहीं लगा?'

नहीं, मा! मोरिंगनाथने मेरे शरीर पर कोई ऐसी वनस्पतिका लेप कर दिया था कि अग्नि मेरे अंगको स्पर्श भी नहीं कर सकी।'

इस प्रकार बात करते-करते चित्तौरके गद्दीकी बात आ पहुँची।

'मैंने सुना है कि तुझे गद्दी अच्छी नहीं लगती। भले ही तू किसी देशका राजा न बने किंतु मैंने तो तुझे राजा रूपमें देखनेका निश्चय कर रखा है!' श्रीलेखाने कहा।

'चलिए, अपाका एक निश्चय और बढ़ा! देश बिना भला कैसे राजा बना जा सकता है?'

'है एक रीत! भला तू क्या समझेगा सब बातें?'

'तो बतानेमें कोई हर्ज है?'

'बताऊँ? मानेगा?'

'आपकी कौन सी बात मैंने नहीं मानी है?'

'तो सुन, देशका राजा न बनने वाला भी विवाहमें राजा बनता है—वर राजा!'

'यह बात जाने दीजिए'

'ऊँ हूँ! इस प्रकार किसी युवतीकी आहें नहीं ली जा सकतीं!'

'किसकी आह ? क्या कह रही हैं आप ?'

'राजकुमारी मीनाक्षीकी ! मेरे पास बात पहुँच गई है। लेकिन तू तो इस संबंधमें बात ही नहीं करता !'

इस प्रकार रात भर एक बातमें से दूसरी और दूसरी में से तीसरी निकलती चली गई। भोज जितना समझता था उसकी माता उसकी कीर्तिके संबंधमें उतनी अनभिज्ञ नहीं थी। बातोंसे मन भर लेनेके पश्चात् रातके पिछले प्रहरमें मा-बेटेने बिछौने पर पीठ टेकी। उस समय माताने भोजके साथ मुनिके आश्रममें चलनेका अपना निश्चय प्रकट किया।

माता श्रीलेखाको साथ ले भोज नागद्रहसे चलनेके लिए तैयार हुआ। नागद्रहके सोलंकी राव भी उसका सत्कार करनेमें अब अपना गौरव समझते थे। अतः उन्होंने मेवाड़के विजयी सेनापतिके साथ जानेके लिए रिसाला दिया। परन्तु उसे भोजने स्वीकार नहीं किया। फिर भी रावजीकी आज्ञानुसार दूर-दूर दो-चार सवार उसके रक्षणार्थ आगे-पीछे चल रहे थे।

साधन रहते हुए भी वह आश्रममें पैदल ही गया। भोज आ रहा है यह सूचना हारित मुनिको पहले ही मिल चुकी थी। मुनिके पास पहुँचते ही—विजयी सेनापतिने—मेवाड़का मुकुट जिसके पीछे घूम रहा था उस वीर प्रजानायकने—साष्टांग दण्डवत् प्रणाम कर मुनिके चरणों पर अपना मस्तक रख दिया। मुनिने भोज और श्रीलेखाको देखा।

मुनि और श्रीलेखा क्षणभरके लिए अवाक् हो गये।

'वत्स ! उठ। मुझे सौंपी हुई थातीको प्रभुने उज्ज्वल रखा।' कहते हुए मुनिने भोजको गलेसे लगा लिया। भोज एवं श्रीलेखाके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह रही थी। मुनिकी आँखें भी सहज चमकीं। उन्होंने कहा, 'वत्स ! भगवान एकलिंगका दर्शन कर ले।'

पास ही छोटा-सा शिव मंदिर था। देव-स्थापना के पश्चात् मुनिने बहुत ही छोटा सा मंदिर बनवाकर उसके आस-पास अपना आश्रम एवं विद्यार्थी तथा शिष्योंका समुदाय बसाया था।

'शिवस्थापनाका फल मिला ही समझना।' माताने कहा।

'मा! अब एक ही इच्छा है। सब छोड़-छाड़ कर आश्रममें आ जाऊँ और गुरुकृपासे आध्यात्मिक साहस अंगीकार करूँ।' भोजने कहा।

'बेटा! दैहिक और आयुष्मिक पार्थिव तथा आध्यात्मिक प्रयोग एक दूसरेसे भिन्न नहीं हैं।' मुनिने कहा।

'ब्राह्मणके लिए देह और पार्थिवता शोभा दे सकती है!' भोज बोला।

'किंतु···शायद तू भूल जाय कि तेरा देह क्षत्रिय···' श्रोलेखा बोली।

माको बीचमें ही रोककर भोज बोल उठा, उसके मुखपर अत्यंत कष्ट प्रदर्शित हो रहा था।

'मा! यह मत कह कि तू मेरी मा नहीं है। सब कुछ सहन कर सकता हूँ किंतु यह नहीं।'

'बेटा-बेटा! तू मेरा ही पुत्र है। राज-मुकुट तेरे पीछे-पीछे दौड़ा चला आ रहा है इससे मैंने तेरी पात्रता कही।'

'और जब राजमुकुट तुझे शोधता हुआ चला आ रहा है तब अवश्य उसे धारण कर ले बेटा!' मुनिने कहा।

'परन्तु मेरी तो प्रतिज्ञा है कि मैं राजगद्दी नहीं लूँगा—ढूँढ़ती हुई आये तो भी।'

'ब्राह्मणोंने भी सफलता पूर्वक राज्य किया है—भारशैव, चच*' मुनिने कहा।

'ठीक है परन्तु सिंहासन पर बैठने वाला मैं नहीं। सिंहासन पर बैठने वालोंको मैंने बहुत देखा और सुना। उनके चारों ओर वैर और खटपट के नागपाशका भी मैंने अनुभव किया। मुझे केवल एक ही चिन्ता सता रही है। यह राजमुकुट किसे पहनाऊँ? यह राजदंड किसके हाथोंमें दूँ?

* भारशैव ब्राह्मण ख्रिस्ती सन् की तीन-चार सदी तक मध्य भारतमें एक बड़े साम्राज्यके राजकर्ताके रूपमें विद्यमान थे। चच मुस्लिम आक्रमणके पूर्व सिंधका ब्राह्मण राजा था।

महाराज मानसिंह इसके रक्षणका भार मुझे सौंप गये हैं।'

'अनेक राज्य लोप होते जा रहे हैं। एक मार्ग बताऊँ, मानेगा?' हारित मुनिने पूछा।

'मेरे प्रणकी रक्षा हो, ऐसी कोई भी आज्ञा मुझे मान्य होगी। आपके पास रहने, आपकी आज्ञाका पालन एवं आपके सदृश आध्यात्मिक प्रयोग करनेके लिए ही राजगद्दी स्वीकार न करनेकी मैंने प्रतिज्ञा की है।' अत्यन्त विनयसे भोजने उत्तर दिया।

'वत्स! जीवनके सभी प्रयोग यदि वे प्रभुकी ओर एक-एक कदम आगे ले जाते हों तो आध्यात्मिक हैं। भगवान एकलिंग तुझे ऐसा एक मार्ग प्रदर्शित कर रहे है जिससे तेरी कठिनाई दूर हो जायगी।' हारित मुनि बोले, उनके मुख पर प्रसन्नता व्याप्त थी।

'मैं यही कृपा चाहता हूँ...'

'तो देर क्यों कर रहा है? सौंप दे यह मुकुट और राजदंड भगवान एकलिंगजी को!'

सभी श्रोता यह आज्ञा सुनकर चकित हो गये। सभी सोचते थे कि चाहे जैसे हो राजपद स्वीकार करनेके लिए गुरु भोजको समझा सकेंगे। उसके विरुद्ध गुरुने गद्दी देवार्पण करनेकी आज्ञा दी! भोजने क्षणमात्र का विलम्ब न कर इस आज्ञाको सिरमाथे चढ़ा लिया।

भगवान एकलिंगजीके पास राजमुकुट और राजदंड रखकर भोजने शिव, गुरु एवं माताको साष्टांग दण्डवत किया।

'अब भगवान एकलिंगजीका प्रथम सेवक तू बन जा। मानसिंहके स्थान पर तूने अब प्रभुको बैठा दिया।' गुरुने कहा

'मैं तो सेवक बहुत पहले सेहूँ।'

'यह नहीं, प्रथम सेवक—प्रधान सेवक बन। प्रधानपद स्वीकार कर और अब इस राजमुकुट एवं राजदण्डकी शिवप्रतिनिधि रूपमें रक्षा कर। भगवानने तेरी रक्षा की अब तू भगवानको समर्पित राज्यकी रक्षा कर।'

'जय एकलिंग' की एक प्रचण्ड गर्जनासे वह छोटा-सा मंदिर एवं बन गूँज उठा। भोजने स्वप्नमें भी सोचा न था, न इच्छा की थी और न कल्पना ही कि ऐसा एक परिणाम आ उपस्थित होगा! सभी प्रसन्न थे—केवल भोजको छोड़। गुरुका वचन था, उसके प्रतिज्ञाका पालन हो रहा था, स्वर्गीय मानसिंहके मुकुट-रक्षणके आदर्शकी रक्षा भी हो रही थी।

इसके विपरीत राजदण्ड स्वीकार किये बिना भी स्वीकार जैसी ही परिस्थिति खड़ी थी। उसे राजलोभ था इस लोक-शंकाको उत्तेजना मिलती थी। दम्भका अपवाद अवश्य ही उसके सिरपर आ रहा था। एवं मानसिंहकी हत्यामें उसकी छिपी सम्मति थी ऐसा आरोप मढ़नेके लिए मंत्री और सामन्तगण पहलेसे ही तैयार बैठे थे! कदाचित् उसके द्वारा राजाके विरुद्ध कहे गये वाक्योंका उन्होंने अपनी समझके अनुसार अनर्थ कर मानसिंहको समाप्त कर देनेका निश्चय कर लिया हो, यह भी सम्भव था—उसे, नूतन विजेताको, प्रसन्न करनेके लिए—उसका मार्ग निष्कण्टक बनानेके लिए!

'मुझपर आरोप है, गुरु जी! कि महाराजकी अपमृत्यु मेरे कारण हुई। ऐसे संयोगोंमें भगवान शिवका सच्चा प्रधान कैसे बन सकता हूँ?' भोजने दुखित रूपसे पूछा।

'यह आरोप सत्य हो, वत्स! तो प्रधान पद मत स्वीकार कर। असत्य हो तो स्वीकार करनेमें एक क्षण भी नष्ट न कर। तू ही अपना परीक्षक बन।' हारित मुनिने कहा और दूसरे ही क्षण भोजने राजमुकुट एवं राजदण्डको नमस्कार कर शिव-समक्ष प्रतिज्ञा की—'गुरुकी कृपा, माकी आशीष, एवं भगवान शिवकी इच्छा! भगवान एकलिंगजीका राज्य इस मेदपाटकी भूमि पर अचल बना रहे। मैं भगवानका सच्चा प्रधान बनता हूँ और प्रतिज्ञा करता हूँ कि मेवाड़का वातंत्र्य और मेवाड़का धर्म एक सहस्र वर्ष अखंड रख सके इस प्रकारकी प्रजाका सृजन ही मेरे प्रधान पदका आदर्श होगा। अ...ल...ख'

मानो देहमें किसी अवतारका आवेश हुआ हो, इस प्रकार भोजके मुखका वर्ण लाल हो गया। आँखे चमकने लगीं। उसे लगा जैसे उसके शरीरमें किसी नवीन तत्वने प्रवेश किया है। विस्मित भाविकोंने उसके चारों ओर विस्तृत तेज-मंडल देखा !

'बेटा ! योगी ही सच्चा राजा बन सकता है। "त्यक्तेन भुंजा था।" त्याग कर भोगना यह आर्योंका आदर्श रहा है। राजपाटके भोगमें राजा अध्यात्मिक धर्म भूल जाते हैं; अध्यात्मके भोगमें योगी राजधर्म भूल जाते हैं राजधर्मका महत्व यही है कि तू योगी और राजा दोनों साथ साथ बन तभी सच्चे राजधर्मका तू पालन कर सकेगा ! आर्य-संस्कृतिपर होने वाला प्रहार तुझे रोकना है। मेरा कर्तव्य पूर्ण हुआ। आर्यावर्तको, आर्यसंस्कृतिको, मैं तेरी भेंट दिये जाता हूँ। यही मेरे लिए अत्यधिक संतोषकी बात है। तेरी प्रतिज्ञा भगवान महाकाल शंकर पूर्ण करें !' हारित मुनिने अत्यन्त शान्ति पूर्वक कह कर भोजके मस्तकपर हाथ रखा।

एकाएक देव-बाली खड़े हो गये, दोनोंने एक दूसरेकी ओर देखा और कमरमें बँधी हुई कटार निकाल कर अपने अँगूठेसे खून निकाला और अत्यन्त आनन्दके साथ आगे बढ़ कर भोजके कपालपर उससे तिलक किया। पश्चात् जबरदस्त गर्जना की—'बापाकी जय ! कालभोज की विजय !'

खाखी समूहने शंख ध्वनि की। घंटनाद होने लगा। अलखके उद्गारसे वातावरण प्रतिगुञ्जित हो उठा। कालभोजके विजय-डंकेसे आकाश व्याप्त हो गया।

'इन भील पुत्रोंका ख्याल रखना। तुम्हारे राजपाटमें इनके रुधिरका भी भाग है। सच्चा कुंमकुम, सच्चा शकुनसूचक कुंमकुम रुधिर ही है !...और...खोया हुआ स्वातंत्र्य अथवा प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त करना हो तो खाखीओंकी-सच्चे खाखीओंकी-सेना खड़ी करना। सच्चा खाखी नहीं वह सच्चा सैनिक नहीं। अलख !'

कालभोजने शंकर भगवानकी आन अपनेको और प्रजाको देकर मेवाड़का तंत्र अपने हाथमें लिया।

इडरके गोहिलवंशी नृपका वह पुत्र था या नहीं, यह प्रश्न उसने उठने ही नहीं दिया।

'मा! मैं तेरा पुत्र नहीं हूँ, सगा पुत्र नहीं हूँ, यह जिस दिन तू कहेगी अथवा अपने मनमें इस प्रकारका विचार लायेगी उसी दिन चित्तौर त्याग कर मैं आश्रममें आ बैठूँगा।' वह श्रीलेखासे कहता। इतना ही नहीं, शिलालेखोंमें भी वह अपनेको विप्र रूपमें ही उल्लिखित करने लगा। और कालभोजके स्थानपर अपने भील मित्र बाली-देव द्वारा किया गया हुआ संबोधन मान्य कर उसने बापा – बप्प—नामसे प्रकाशित होना अधिक पसंद किया।

आश्रमकी धमकी सुन माता दूसरी धमकी देती, 'आश्रममें आनेके पूर्व अभी क्या-क्या करना बाकी रह गहा है बताऊँ?'

'जी हाँ, क्या बाकी है? मेरी दृष्टिमें तो सतत आश्रम ही नाचा करता है।'

'गृहस्थाश्रमके मंडपके नीचे होकर ही मेरे आश्रममें आया जा सकता है, इसके पूर्व नहीं।'

'मतलब?'

'तेरा विवाह अभी बाकी है, इसका भी ध्यान है, मूर्ख?' माने मेवाड़के महाबलिष्ठ राजकर्त्ताको चपत लगाते हुए कहा।

१३

मीनाक्षीका विवाह हुआ, और वह भोजके साथ। सोलंकी रावको अब, भूल-चूक, वहम, रिवाज, ज्योतिषीकी वाणी, मीनाक्षीका आग्रह अथवा अन्य जो भी कारण हो, मीनाक्षीके 'मेरा विवाह भोजके साथ हो चुका है' इस कथनको स्वीकार कर लेनेमें कोई आपत्ति नहीं रही। मातापिताका एतराज तो उस समय था जब उनकी पुत्री चित्तौरके महाराजको ठुकरा कर एक साधन विहीन गरीब ब्राह्मण पुत्रसे विवाह करनेके लिए तैयार थी! परन्तु वही ब्राह्मण-पुत्र जब चित्तौरपति बन रहा हो तो उसे कन्या अर्पित करनेमें किसी भी मांडलिक राजाको क्या आपत्ति हो सकती थी? यह सच है कि अभी तक भोजने राजाकी पदवी स्वीकार न की थी परन्तु शंकरके नामपर राज्य तो वही चला रहा था! मीनाक्षीके मातापिताने अपना विरोध वापस ले लिया। भोजका विरोध दूर करनेके लिए मीनाक्षीको भारी प्रयत्न करना पड़ा। सर्व प्रथम तो भोजसे मिलनेका प्रसंग ही कठिनतासे मिलता था। कारण चित्तौरका राज्य भोज बहुत ही दक्षता पूर्वक शंकरके नाम पर चला रहा था जिससे उसे बहुत ही कम फुर्सत मिलती थी। जिस मंत्रिमंडलने महाराज मानसिंहका वध कराया था उस मंडलके सभ्योंको उसने प्राणदंडकी सजा दी। सेनापति और वैद्यराज भी इस दण्डके भागी थे। वैद्य तो अर्द्ध आर्य, अर्द्ध बौद्ध, विषके प्रयोगोंमें कुशल एक महातांत्रिक था। जब इन सबका वध करनेके लिए उन्हें चित्तौरगढ़के बाहर वधस्थान पर ले जाया गया उस समय वैद्यको छोड़ सभी मूर्च्छित पाये गये। वध सचेत अवस्थामें ही किया जा सकता है। भोजको सूचित किया गया। उसने आज्ञा दी—'जिसे मरना नहीं आता उसे जीना क्या आयेगा? वे जीवित भी मृत हैं। मुक्त कर देशसे निकाल दो।'

आज्ञा सुन सचेत हुए मंत्रीगण एवं सेनापति मेदपाटकी भूमि छोड़ जान लेकर भागे और भारतवर्षकी सीमा पार इस्लामी प्रदेशमें जाकर भोजकी कीर्त्ति पर कीचड़ उछालने लगे।

वैद्यका क्या किया जाय ? वह तो सचेत था। अपने पास बुलाकर भोजने उससे पूछा—'वैद्यराज ! किस सजाके पात्र हैं आप ?'

'महाराज ! किसी भी नहीं।'

'महाराज मानसिंहके सच्चे खूनी तो आप ही हैं ?'

'मैं तो निमित्त मात्र था। आपका भय मंत्रिमंडलने महाराजको दिखाया जिससे...शस्त्र धारण करनेमें अशक्त महाराजने विष माँगा... और मैंने दे दिया।'

'आपको देना नहीं चाहिए था।'

'सच कहूँ' ? जीवनसे मुक्ति पानेका यह व्यामोह सर्व प्रथम नहीं था। भोग भोगनेसे संतप्त हो मंत्रिमंडलका वर्तन अपनी इच्छानुकूल न देख क्रोधावेशमें महाराजने अनेक बार मुझे विष देनेकी आज्ञा की थी— जिसपर मैंने कभी कान न दिया।'

'इस बार कैसे मान लिया ?'

'मंत्रिमंडल दूसरे वैद्यसे महाराजको विष दिला देता और मुझे जीवित न रहने देता...और...मैं सच कह रहा हूँ, महाराज ! अपमानका देह महाराजके लिए परम दुःखका कारण बन रहा था !...आज नहीं तो आगामी मास वे कदापि जीवित न रहते !'

वैद्यको भी देशनिकाले का दण्ड देनेकी इच्छा हुई। परन्तु बहुत सोच-विचारके बाद वैद्यके लिए एक नये प्रकारकी शिक्षाका उसके मनमें स्फुरण हुआ।

'वैद्यराज ! आपको एक शिक्षा दी जाती है। विष तो आपने बहुत खोजा। अब अमृत ढूँढ़ निकालिए ! प्रतिवर्ष अपने प्रयोगका हिसाब देते

रहिए...और जिस दिन आपने यह कहा कि अमृत नहीं प्राप्त हो सकता उसी दिन आपका विष आपको पिला दिया जायगा।'

वैद्यके हृदयमें किसी नूतन प्रकाशका उदय हुआ। सचमुच! क्षणमात्रमें जीवन लुप्त कर देने वाला विष तो मानवने बहुत ढूँढ निकाला है, मृत्युके जबड़ेमें से निकाल लाये ऐसा अमृत क्या नहीं मिल सकता? अमर देवता अमृतही तो पान करते हैं! कौन सी वस्तु है वह? अपने कुटुम्ब की रक्षाका भार भोजको सौंप वैद्यजी पहाड़-पहाड़ मारे-मारे फिरने लगे।

इस प्रकार अपराधियोंको दण्ड देनेके पश्चात् उसका सर्व प्रथम कार्य मेवाड़पति एकलिंगजीका मंदिर बनवाना था। प्रांत-प्रांतसे, पर्वत-पर्वतसे भोजने ढूँढ़-ढूँढ़ कर पत्थर मंगवाये। देश परदेशसे मणि, माणिक्य एवं रत्न एकत्र किये। सुप्रसिद्ध स्थपतिओंको आमंत्रित किया एवं एक-लिंगजीके भव्य मंदिर-निर्माणकी योजनासे उसने राजकार्य प्रारंभ किया। राज्य-भ्रमणका कार्यक्रम उसने इस प्रकार बनाया था कि प्रत्येक मासके अंतिम सोमवारको वह हारित आश्रम पहुंच सके एवं एकलिंगजीका दर्शन कर मास भरका हिसाब शिवको समर्पण कर नूतन मासके कर्तव्यके लिए निश्चित् प्रेरणा प्राप्त कर सके।

ऐसेही एक पर्यटनमें एकाकी वीर भोज अश्व पर सवार नागद्रहके पर्वतोंसे होता हुआ आगे बढ़ रहा था जब घाटीकी ओटमें दूसरे अश्वकी हिनहिनाहट उसे सुनाई दी। जवाबमें भोजका घोड़ा भी हिनहिनाया। जिज्ञासावश भोज उस घाटीको पार कर एक सुंदर सरोवर पर पहुँचा। नागद्रहके निवासके समय भोज अनेक बार इस सरोवरमें तैरता हुआ पहरों पड़ा रहता था, यह उसे याद आ गया। मार्ग सरल था। अतः इस समय कौन शौकीन सरोवरके पानीमें डुबकी लगा रहा है, यह देखनेकी उसे जिज्ञासा हुई। वह अपने प्राचीन प्रिय स्थल पर पहुँच गया। सरोवर पर झुके हुए एक वृक्षकी डालमें बँधा एक घोड़ा उसने देखा जो भोजके अश्वको देख पुनः हिनहिनाने लगा।

दिवसका तृतीत पहर था, धूप प्रखर थी। विशाल जलखंडको देखते ही किसी भी व्यक्तिका मन ऐसे समय नीचे उतर पानीमें गोता लगानेके लिए ललचा सकता था। भोजने घोड़ेसे उतर उसे वृक्षकी दूसरी डालसे बाँध दिया। किनारे पर चढ़ कर उसने देखा तो दूर पर कोई तैरता हुआ उसे दीख पड़ा। भोजकी भी इच्छा पानीमें गोता लगाने की हुई। पानी और स्त्री का आकर्षण एकसा ही होता है? भोजने जोरसे पुकारा, 'अरे...कौन इतनी दूर तैर रहा है?'

'ह ह...ढूँढ़ निकालो...तैरना जानते हो तो!' दूरसे एक स्त्रीकंठ सुन पड़ा।

भोजने स्नान करनेका विचार तुरत त्याग दिया। सरोवरमें एक स्त्री स्नान करती हो वहाँभोज जैसे पुरुषको नहाना योग्य नहीं लगा। भोज उत्तरीय एक तरफ रखकर किनारे पर बैठ केवल हाथ, पैर तथा मुख पर पानीके छींटे देने लगा।

बहुत वेगसे तैरती हुई एक स्त्री उसके नजदीक आ रही थी—यद्यपि वह इतनी पास तो नहीं आयी थी कि भोज उसे पहचान सके।

'अच्छा...तैरना नहीं आता?' स्त्रीने डुबकी लगाते हुए पूछा।

'मुझे डर लगता है।' भोजने उत्तर दिया।

'मैं साथ में हूँ, डर कैसा? आओ! तैरना सिखा दूँ!'

'मीनाक्षी है क्या?' भोजको भय हुआ जिससे उसके मुखसे निकल गया।

'जो भी हूँ, आप तो भोज हैं न? मेवाड़पति...'

'मैं मेवाड़पति नहीं हूँ, मैं तो मेवाड़का प्रधान सेवक...'

'डरपोक!...पानीमें उतरते क्यों नहीं?'

'तुमने कहा न कि मैं डरपोक हूँ! सच है, मेवाड़में यदि किसीका भय मुझे लगता है तो तुम्हारा...'

'नहाना है? या केवल वादविवाद करना है?'

'बात भी न करूँ ? परंतु...डरपोकके उपरांत उच्छृङ्खलकी श्रेणीमें देखा जाना नहीं चाहता...लेकिन एक बात बता, पानीमें अभी तुम्हें कितनी देर और रहना है ?' पास आकर आकंठ पानीमें खड़ी मीनाक्षीसे भोजने पूछा ।

'आप अपनी आँखें जरा घुमा लें अथवा घूम कर खड़े हो जायँ तब न मैं पानीसे निकल सकूँगी ? आर्द्र वस्त्रवाली एक ललना आपकी दृष्टिके सम्मुख कैसे बाहर निकल सकती है ?'

'हाँ...सचमुच...मैं क्षमा माँगता हूँ...'

'क्षमा माँगनेका अवसर ही न आये इस बातका खयाल पहलेसे रखना चाहिए ।'

'अब मैं जाऊँ तो कैसा ? घोड़ेकी हिनहिनाहट सुनकर इधर चला आया । मेरा यह अत्यंत प्रिय स्थल है...'

धीरे-धीरे पानीसे बाहर निकलता हुआ रमणी देह उसे अच्छा क्यों लगा ?

आँखें घुमा लेनेके लिए कहे जाने पर भी सामने टकटकी लगाये हुए भोजको थोड़ा-थोड़ा, देहदर्शन कराती धीरे-धीरे पानीसे बाहर निकलती हुई मीनाक्षीने कहा, 'एकांतमें रमणियोंके समक्ष प्रिय एवं ऐसी मीठी वाणी न बोलिये...जरा आँखें बंद कर लीजिये, कालभोज !'

एकाएक होश आया हो, इस प्रकार चौंक कर कालभोज घूम गया और आगे कदम बढ़ाने लगा ।

'चले जानेकी जरूरत नहीं है...मैं अभी आपके साथ चलती हूँ ।' मीनाक्षीने कहा और भोज रुक गया । उसका हृदय धड़क उठा...जैसी धड़कनका अनुभव नरगिसकी उपस्थितिमें नरगिसके उपवनमें उसे हुआ था ठीक वैसा ही यहाँ भी हुआ !

अत्यंत निकट खड़ी एक सुंदरी !...वह भी गीले वस्त्र बदलती हुई ! विश्वमें ऐसे प्रसंग नित्य बनते होंगे ! फिर यह भोजके हृदयको क्यों

संभ्रमित कर रहा है ? भयंकर-भीषण युद्धके समय भी भोजका हृदय स्थिरतासे डिगता नहीं था ! इस समय ?

'कानी आँखसे तो नहीं देख रहे हैं ?' मीनाक्षी ने पूछा ।

'मेरा विश्वास नहीं है ?

'बिलकुल नहीं ।'

'तब मुझे जाने क्यों नहीं दिया ?'

'जरा इधर देखिए तो ठीकसे बात हो ।'

पानीसे निकलकर स्वच्छ वस्त्र धारण कर खड़ी स्त्री पहल बनाये हुए हीरेके समान लगती है । भोजने मीनाक्षीकी ओर देख कर पूछा—'अब बोलनेके लिए बाकी ही क्या है ?'

'बहुत कुछ । मेरे सहवासमें बहुत-कुछ सुनना पड़ेगा ।'

'तुम्हारा सहवास ? तुम्हें जाना कहाँ है ?'

'आश्रममें...हारित आश्रममें !'

'क्यों ?'

'क्यों क्या ? दर्शनके लिए ! भगवान शिवका दर्शन करने ! सुना है आप बड़ा ही सुंदर मंदिर बनवा रहे हैं ।'

'सुन्दर तो...प्रभु जाने ! किंतु तुम अकेली क्यों जा रही हो ?'

'आप भी तो अकेले ही जाते हैं ? मुझे खबर मिली, इससे सोचा कि साथ चली चलूँगी ।'

'बहुत अच्छा किया ! चलो, मुझे भी तुम्हारा रक्षण प्राप्त होगा !' मुस्करा कर भोजने कहा ।

'मेरा रक्षण हँसीमें उड़ा देने लायक नहीं है, भोज !'

'मैं हँसी नहीं कर रहा हूँ...'

'आप कुछ हँसें तो अच्छा...किंतु राज्यका भार सिरपर अधिक पड़ गया है...और इसमें हँसने जैसी बात ही क्या है क्यों ? चलिए, मैं भी सवार हो जाऊँ और आप भी ।'

दोनों घोड़ों पर सवार हो गये और घोड़ोंने कदम बढ़ाये।

'भार तो ठीक है मीनाक्षी, किंतु मेरे स्वभावमें ही हास्य कम है ...'

'इसीलिये आप आमृत ढूँढ़ रहे हैं, क्यों ?'

'अमृत ? मैं ढूँढ़ रहा हूँ ? यह एक नई बात कहाँ से उठा लाई ?'

'नई बात ? अरे, यह तो पुरानी भी हो गई !'

'और मुझे कुछ भी खबर नहीं।'

'हो चुका आपसे राज्य ! सौंप दीजिए सब भार मुझे ! इतनेमें ही भूल गये ? उस राजवैद्यको अमृत ढूँढ़ लानेकी आज्ञा प्रदान नहीं की है ?'

'यह तो यों ही ! उसे दण्ड नहीं देना था ! अच्छा प्रयोगशील है ऐसा त्र्यंबक भट्ट जी कह रहे थे। कोई प्रजोपयोगी काम करे, इसलिए काममें लगा दिया।'

'वह भला क्या अमृत ढूँढ़ निकालेगा ? अमृत तो कभीका ढूँढ़ा जा चुका है'

'बेकारकी बात मत करो !'

'बेकार ? वाह ! यह तो बहुत परिचित वस्तु है ! आश्चर्य तो इस बातका है कि आपको इसका अभी कुछ पता नहीं...'

'अमृत मिल गया है कह रही हो ?'

'हाँ, हाँ, हाँ ! अमृत प्राप्त हो गया है और वह दो स्थानों पर मिल सकता है।'

'क्या उड़ती बात कर रही हो तुम ! अच्छा, कौनसे दो स्थल ?'

'एक तो देवताओंके पास...स्वर्गमें !'

'बहुत सुन्दर स्थल ढूँढ़ निकाला !...वहाँ पहुँचनेके पूर्व मृत्युका आलिंगन करना पड़े ! खैर, दूसरा ?'

'अरे, उसकी भी खबर नहीं ? इतना पढ़ा लिखा, शास्त्र अध्ययन किया, काव्य सीखा, फिर भी खबर नहीं ? सब पढ़ना—लिखना व्यर्थ है आपका भोज !'

'खैर, लेकिन तुम बताओ तो सही ! मुझे खबर नहीं है तो...'

'तो मुझे ही बताना होगा ?...कहूँ...सचमुच ?...'

'हाँ, मैं आतुर हूँ। भला अमृत देखना किसे अच्छा न लगेगा ?'

'कहा नहीं जाता फिर भी कहती हूँ, समझे ? एक अमृत मिलता है स्वर्गमें...'

'यह तो तुमने ही बहुत पहले कह दिया है ! अब दूसरा स्थल ?'

'दूसरा स्थल...बताऊँ ?'

मुख फेर कर हलके स्वरमें मीनाक्षीने कहा, 'सुंदरीके अधर पर...'

भोजको जैसे धक्का लगा। या घोड़ेने ठोकर खाई ? रमणियोंके सहवासका अनुभव भोजको नहींके समान था। एक युवती द्वारा ऐसा खुला सूचन भोजको विस्मयापन्न कर देने वाला प्रसंग अवश्य था। कुछ देर तक दोनों अवाक् रहे। घोड़े अपनी चालसे आगे बढ़े जा रहे थे। कुछ देर पश्चात् भोजकी वाचा खुली—'मीनाक्षी ! जो तुमने कहा वह पुरुषके लिए योग्य था...स्त्रीके लिए नहीं !'

'किंतु साथी पुरुषको किसी बातका ज्ञान न हो तो...स्त्रियोंको कहना ही पड़ेगा ?' मीनाक्षीने उत्तर दिया। इसी समय उसके मुखपर अस्ताचल गामी सूर्यने लाली बिखेर दी।

कुछ रुक कर भोजने पूछा, 'मीनाक्षी ! तुम जानती हो न कि मैं ब्राह्मण हूँ ?'

'जी हाँ, किन्तु क्षत्रिय ब्राह्मणोंसे अधिक निम्न नहीं हैं।'

'मैं कहाँ कह रहा हूँ ? क्षत्रिय ब्राह्मणोंसे किसी बातमें भी कम नहीं हैं। किंतु ब्राह्मण राजपाट नहीं ले सकते। यह तुम जानती हो ?'

'जी...'

'मैं भी राजपाट-रहित एक ब्राह्मण हूँ। मेरे साथ विवाह क्यों कर रही हो ?'

'विवाह तो मैं तुम्हारे साथ कर चुकी, भोज ! मेरे लिए तो यह प्रश्न ही नहीं उठता...भले ही तुम्हें अस्वीकार करना हो तो तुम जानो...'

'सचमुच ! मैं तुम्हें अयने साथ विवाह करनेके लिए बाध्य नहीं कर रहा हूँ !'

'मैंने कहा न कि मेरा पक्ष दृढ़ है ! तुम्हारा कारण ठीक हो तो तुम मुक्त हो, मैं नहीं । मैं तो तुम्हारा पत्नी-पद प्राप्त कर चुकी ।'

'मीनाक्षी ! मेरा ध्येय एक ऐसी प्रजा उत्पन्न करनेका है...'

'मैं जानती हूँ, मैं तुम्हें ऐसी प्रजा दूँगी कि जिसका पुत्र समूह मस्तक हाथमें लिये घूमता रहेगा और जिसका पुत्री समूह अग्निके उपवनमें ही रास रचाना पसंद करेगा ! और कुछ ?'

मैं तो खाखी हूँ, मीनाक्षी ! जब कभी भी इच्छा हुई इस राज्यकी सत्ता और सम्पत्ति पहाड़ परसे फेंककर कंदरावासी होनेमें मुझे देर नहीं लगेगी ।' भोजने अपने स्वभावका अधिक परिचय देते हुए कहा ।

'तो...आर्याएँ बनवाससे असंतुष्ट होती हैं यह तुम समझते हो ? तुम्हारी माता भी तो संन्यासिनी है ? तुम्हारी पत्नी को संन्यास भयभीत नहीं करेगा । फिर भी यदि तुम चाहते हो तो तुम्हें अपने बन्धन से मुक्त करती हूँ भोज !'

'मतलब ?'

'तुम भलेही पत्नी रूप में मुझे अस्वीकार करो...'

'तब तुम क्या करोगी ?'

'इस प्रश्न से तुम्हें मतलब ? तुम अस्वीकार कर दो...बस...'

'मैं जानना चाहता हूँ ।'

'तो जानलो...तुम अस्वीकार कर दो, बस यहींसे सीधी किसी बनगुफा में जाकर बैठ जाऊँगी और तुम्हारे नामकी माला जपूँगी...'

'माला है भी ? मोतीकी होगी ।' हँसी में भोजने कहा और मीनाक्षी ने तुरत रुद्राक्षकी माला निकाल कर सामने कर दी ।

'और...माला तो किसी छोटे वृक्षबीजसे भी बनाई जा सकती है ।'

बहुत देर तक दोनों व्यक्ति मौन आगे बढ़ते गये । अँधेरा हो रहा था ।

आश्रम पास आ गया और जमीनसे ऊपर उठता हुआ शिवालय का अधूरा भाग थोड़ा-थोड़ा दिखाई पड़ने लगा।

'मंदिर देखते चलें मीनाक्षी !' बहुत देर बाद भोज बोला।

'हाँ' मीनाक्षीने एकाक्षरी उत्तर दिया।

घोड़ेसे उतर कर मंदिरके तैयार होने वाले विभागोंको भोजने स्वयं देखा और मीनाक्षीको दिखाया। मंदिरका कल्पनाचित्र भी पासही था जिसे मीनाक्षीने देखा। मंदिरके शृङ्गारकी योजना भी उसने देखी किंतु मीनाक्षी एक दो अक्षरों में उत्तर देकर अथवा अपनी पसंदगी प्रकट कर मौन धारण कर लेती।

नूतन मंदिर और आश्रमके बीच विशेष फासला नहीं था। वहाँ जाते हुए भोजने मीनाक्षीसे पूछा 'क्यों चुप्पी साध ली, बिलकुल ?'

'आपने कहा था न कि पुरुष कह सकता है...स्त्री नहीं ?' मीनाक्षी कह तो गई थी कि सुन्दरीके अधरपर अमृत बसता है किंतु यह कहनेके पश्चात् स्वयं ही ऐसी लज्जाका अनुभव कर रही थी कि उसके समान वाचाल युवतीसे भी कुछ बोला नहीं जा रहा था—अभी तक।

'मैंने यह कभी नहीं कहा...और तुम बिलकुल ही मुँह बन्द कर लो यह तो मुझे कभी अच्छा लग ही नहीं सकता...'

मैं प्रभुसे शान्ति पूर्वक प्रार्थना करती हूँ कि जीवन भर तुमसे न बोले ऐसी पत्नीके साथ तुम्हारा पाला पड़े !'

'कितनी पत्नियाँ मेरे सिर तुम्हें मढ़नी हैं ?'

'तुम्हारी योग्यता देखते तो...दो एक जो मिल जायँ उसीसे तुम्हें संतोष करना होगा।'

'अच्छा !' भोजने कहा और आश्रम आते ही घोड़ा बाँध कर मुनि और मातासे मिलकर एवं भगवान शंकरका दर्शन करनेके पश्चात् उपवास तोड़ा।

दूसरे दिन प्रातः ही भोज और मीनाक्षीको वापस जाना था। दर्शन

कर दोनों साथ ही निकले। थोड़ी दूर तक दोनोंका मार्ग एक ही था। अब मीनाक्षीकी बोलनेकी बारी आई।

'इस समय तुमने क्यों चुप्पी साधी है?'

'क्या बोलना चाहिए उसीका विचार कर रहा हूँ।'

'मेवाड़के राज्य-संचालकके लिए यह प्रश्न अधिक गहन तो नहीं होना चाहिये।'

'राज्य-संचालनकी अपेक्षा तुम स्वयं एक जटिल प्रश्न हो।'

'अब यह प्रश्न हल हो जायगा...तुममें बुद्धिमत्ता होगी तो!'

'कैसे?'

'मुझसे फिर पूछते हो? मा और गुरुने तो साफ-साफ कह दिया...'

''क्या?'

'गृहस्थ बने बिना मंदिरका उद्घाटन नहीं हो सकता!'

'हाँ!'

'इसका अर्थ तुमने समझा?'

'थोड़ा-थोड़ा, बाकी तुम समझा दो।'

'बिना विवाह किये कोई गृहस्थ बन ही नहीं सकता।'

'जानता हूँ...'

'गृहस्थ बनना हो तो विवाहका विचार जल्दी कर लो।'

'मेरे करनेका विचार तो मालूम पड़ता है तुमने बहुत पहले कर रखा है?'

'तो मेरा कहना मान लो।'

'मस्तक नत करूँ या हाथ जोड़ूँ?'

'इसके लिए बहुत समय है। अभी तो...निश्चित् तिथि पर तुम उपस्थित भर रहना। अब यहींसे हम अलग होते हैं...जाओ! बहुत नहीं नहीं कर रहे थे न?' इतना कह कर मीनाक्षीने घोड़ेको एँड़ लगा कर तेजीसे दौड़ा दिया।

अपना अश्व रोक भोज सरपट घोड़ेपर जाती हुई मीनाक्षीको देखता रहा। जीवनके महान एकान्तमें कोई अप्सरा उसका साथ देनेके लिए आई थी।

'एकान्त अच्छा है? अथवा साथ?'

'बादमें एकान्त नहीं रह जायगा! हृदयके बन्द कपाटकी चाभी कोई झटक लेगा!'

कोई क्यों? मीनाक्षी ही! अब अन्य किसीका विचार ही कैसे किया जा सकता है? उसके लिए तरसनेवाली सुन्दरीको त्यागनेसे पाप न लगेगा?

भोजने अपना घोड़ा आगे बढ़ाया।

इस प्रकार प्रबल योद्धा भोज मीनाक्षी द्वारा पराजित हुआ और अत्यन्त संकोच सह, अत्यन्त लज्जा सह उसने मीनाक्षीके साथ अपना विवाह हो जाने दिया। खाखी सत्ताधीश बना और गृहस्थ भी। संयोग मानवको कैसे गढ़ता है यह देखकर वह अधिक नम्र बन गया।

विवाहकी प्रथम रात्रिमें ही मीनाक्षीने दोलोत्सवकी योजना की। जिस उत्सवने उसे भोज जैसा पति दिया, उसका आनन्द पुनः प्राप्त करनेकी उसकी इच्छा हुई। भूलसे, लुकछिप कर, एक बार एक घटना घटित हो गई थी। अब, विवाहके बाद, उस घटनाको, एक साथ झूले पर बैठ कर दोहरानेकी तथा उसका आनंद लूटनेकी इच्छा पत्नीको हो, यह स्वाभाविक ही कहा जायगा। चाँदनी छिटकी हुई थी। संपूर्ण उपवनमें सखियाँ आनंदोत्सव मना रही थीं, गा रही थीं, नाच रही थीं और रास कर रही थीं। मृदु संगीत वातावरणको मधुमय बना रहा था। चांदनीको वृद्धिगत करने वाले प्रकाशपुंजोंका सर्जन विशाल उपवनमें किया गया था। नागद्रहकी सभी सन्नारियाँ इस उत्सवमें भाग ले रही थीं।

पुरुषोंमें अकेला भोज अपने विचित्र भाग्यपर विचार करता हुआ सर्वप्रथम जिस पहाड़ी पर उसने हिंडोला बाँधा था उसपर चहल कदमी कर रहा था। हिंडोला बाँधनेकी इस खाखीके मनमें क्यों इच्छा उत्पन्न

हुई ? उस हिंडोलेपर मीनाक्षी बैठी ही क्यों ? उस कुटुम्बने यह क्या रूढ़ि चला रखी है कि पुरुष द्वारा बाँधे गये हिंडोले पर बैठने वाली रमणीको उस हिंडोला बाँधने वालेके साथ विवाह करना पड़ता है !

इस्लाम वेगसे आर्यावर्त पर चढ़ा चला आ रहा था ! पूर्व महासागर तक—प्रशांत महासागर तक—व्याप्त आर्य-संस्कृति सिंधुतट पर हुई मुठ-भेड़में कैसे पराजित हो गई ? यह पराजय-परंपरा कहाँ जाकर रुकेगी ? क्या संपूर्ण आर्यावर्त्त ईदके चाँदके सम्मुख नतमस्तक होगा ?

द्वितीयाके चन्द्रमाको तो आर्य भी नमस्कार करते चले आये हैं। परंतु यह शिवललाटको सुशोभित करने वाला द्वितीयाका चन्द्रमा ! इस्लाम उससे क्या चाहता है ? एक ईश्वर ! एकके सिवा दूसरा नहीं ।

आर्य भले ही देवी-देवताओंको मानते हों पर इस छोटी सी शक्तिके अर्क सदृश धर्मके समान एक अद्वितीय ईश्वरका अस्तित्व स्वीकार करने में भी उन्हें कोई आपत्ति नहीं ।

परन्तु द्वितीयाके चंद्रमाको अथवा अद्वितीय ईश्वरको मान लेनेसे ही इस्लाम संतुष्ट नहीं होता । आर्योंकी मूर्त्तियोंके प्रति उन्हें द्वेष है । मूर्त्ति देखते ही उसे तोड़नेका विचार उनके मनमें उत्पन्न होता है । भोजका उद्‌गार 'अलख' था । अलक्ष्य रूपमें उच्चरित प्रभुकी मूर्त्तिका न होना भी आर्यता स्वीकार करती है—यद्यपि अमूर्त्तको—सर्व शक्तिमानको मूर्त्तिरूप धारण करना हो तो उसमें आपत्ति क्या है यह भोजकी समझ में नहीं आ रहा था। प्रतीक पूजा तो मुस्लिम भी करते हैं ! अन्यथा पत्थरके शिवलिंगका भंजन करने वाले मुसलमान काबाके पत्थरको दर्शनीय कैसे मानते हैं ?

इस्लाम एक मानव बन्धुत्वको उत्पन्न करता है यह भले ही मान लिया जा सकता है। आर्य-संस्कृतिको भी किसी विचार या आचार श्रेणीका बन्धन नहीं है । उसके प्रचारके लिए कोई निश्चित धर्म भी नहीं है । संप्रदायों तथा मार्गोंका वह स्वागत करती है । विश्व बंधुत्व आर्यता

है परन्तु इस्लामी मानव-बंधुत्व केवल मुसलमानोंके लिए ही है! इसके बंधुत्वकी बाँह दूसरोंको सहारा नहीं दे सकती!

किसका कोमल पद भोजकी ओर आ रहा था? उसके कानोंने एकाएक प्रश्न किया।

मीनाची होगी! खाली ब्रह्मचारीको अब प्रेमीका स्वांग करना था! विवाहोपरांत प्रथम मिलनके समय कैसा व्यवहार करना चाहिए इसका सूत्र रसशास्त्र एवं कामशास्त्रके किस प्रकरणमें आया है?

भोजके मुखपर मुस्कुराहट दीख पड़ी। युद्धके मोरचेके समान ही प्रेमका मोरचा भी दिलमें धड़कन उत्पन्न करने वाला होता है! जहाँ शास्त्रकी कारिकाएँ काम न दें वहाँ निसर्गसे ही काम निकाल लेना उसने अधिक सुरक्षित समझा। कोमल पद धारण करती हुई ललिताङ्गीके अस्तित्वसे अपरिचित रहना ही इस स्थानमें उपयोगी व्यवहार होगा यह सोच उसने पहाड़ पर छिटकी हुई—पहाड़ पर बरसने वाली ज्योत्स्नाका निरीक्षण चालू रखा। मीनाची उसका हाथ पकड़ेगी, आँखें बन्द कर देगी, रोमाञ्च उत्पन्न करने वाली गुदगुदी करेगी, अथवा सीत्कारोत्पादक चिकोटी काटेगी? इनमेंसे एक अथवा अनेक प्रकारका प्रयोग करनेका पत्नीका अधिकार स्वीकार करने वाला भोज प्रयोग साधन बना हुआ खड़ा ही रहा!

मीनाची बोल क्यों नहीं रही थी? एकांतका मौन प्रभुको भी पसंद नहीं आया इसीसे बात करनेके लिए प्रभुने माया रची। और मायाकी रसभरी रचनाका प्रथम उत्तराधिकार मिला स्त्रीको। भोज यह माननेके लिए तैयार नहीं था कि मीनाचीको बोलना अच्छा नहीं लगता। तथापि मीनाची बोल नहीं रही थी, संपूर्ण उपवन सुसज्ज करनेके उपरांत भी!

मीनाची हो तब न बोले? कुछ देर इंतजार कर भोजने पीछे मुड़कर देखा। मीनाची नहीं बल्कि नरगिस वहाँ पर खड़ी थी।

'नरगिस! तू?' भोजने आश्चर्यसे पूछा।

'जी हाँ, मैं मीनाक्षीको ढूँढ़ने आई हूँ, यहाँ मिलनेके लिए उसने मुझसे कहा था।'

'यहाँ तो मैं अकेला ही हूँ...अभी...'

'अकेले ? अब तो आप विवाहित हैं, अकेले नहीं !'

'देखा जाता है कि मानव कभी-कभी संयोगके हाथका पुतला बन जाता है।'

'अर्थात मानवको दोषी नहीं ठहराया जा सकता, क्यों ?'

'तू मुझे दोषी ठहराने आई है ?'

'हाँ, दोष हो तो दोषी ठहराना ही होगा।'

'बताओ, क्या दोष देखा मुझमें ?'

'याद है आपको, मेरे बगीचेमें जब आप मुझसे मिले थे ?'

'बिलकुल। तुम्हारा अर्पित विष भी...'

'मैं आपको अमृत दे रही थी। वह आपको पसंद नहीं आया जिससे विष देना पड़ा। अभी भी...प्रसंग पड़ने पर...अमृत भी दे सकती हूँ और विष भी...'

'जानता हूँ।'

'मेरी समझमें एक ही बात नहीं आई, आपको सच्चाईका घमंड है। है न ?'

'हो सकता है। सच्चाई मुझे प्रिय है !'

'अपना वचन आपने पालन किया ?

'वचन ?'

'जी हाँ, मुझे दिया हुआ।'

'क्या ?'

'कि विवाह करते समय मेरा विचार सर्व प्रथम होगा...याद है ?'

'अच्छी तरह ! मेरे मनमें तुम ऐसी बस गयी हो कि मुझे तुम्हें यह वचन देना पड़ा।'

'उसका पालन किया ?'

'हाँ ।'

'मीनाक्षीका पाणि-ग्रहण कर ? बस गई मैं और पाणिग्रहण किया मीनाक्षीका ?' भौंहे चढ़ा कर भोजको दूषित ठहरानेका प्रयत्न करती हुई नरगिस भोजको अत्यन्त सुन्दर लगी ।

'मैंने मीनाक्षीके साथ तुम्हें क्यों रखा यह यदि तुम समझ सकी होती तो यह कटाक्ष कभी न करतीं ।'

'मीनाक्षीने तो अपने वचनका पालन कर लिया...'

'उसने तुम्हें बताया नहीं कि बीचमें तुम्हें दिया हुआ वचन खड़ा है ?'

'कहा अवश्य...किंतु मुझे उसकी दया आ गई...मीनाक्षीकी आँखोंमें आपके लिए विक्षिप्तता देखी...'

'हूँ...तब ?...मेरा क्या दोष ?'

'आप अभी भी मुझसे प्रेम करते हैं ?'

'इसका उत्तर देनेके पूर्व मैं जानना चाहता हूँ कि तुम यहाँ अकेली आयीं कैसे ?'

'मीनाक्षीने मुझे भेजा !'

'कारण ?'

'शायद...मेरे द्वारा प्रदर्शित उदारताका उसे बदला चुकाना होगा...'

'प्रेममें स्त्रियाँ उदार हो सकती हैं ?'

'यदि ऐसा न होता तो आप मीनाक्षीका पाणिग्रहण न कर सकते थे और न मैं यहाँ अकेली आती ।'

'बताओ कैसे आईं तुम ?'

'बताती हूँ । आप मेरे साथ विवाह कर लें, इरान, रूम, शाम, मिश्र ये सब प्रदेश लाकर आपके चरणोंपर रख दूँगी ।'

'प्रदेशोंके घूसकी बात जाने दो । मुझे इन देशोंको जीतनेका

मोह नहीं है। अपनी प्रतिज्ञा मैंने मेवाड़ तक ही मर्यादित रखी है... तुम मुझे नीति पर घमंड करने वाला कहती हो वैसे ही कुछ लोग मुझे पराक्रमपर घमंड करने वाला कहते हैं, तो भी!'

'ठीक है...प्रदेशोंकी बात जाने देती हूँ, फिर?'

'मीनाक्षी क्या कहती है?'

'आप परका अपना कुल अधिकार उसने मुझे सौंप दिया है...' आँखें मटका कर नरगिसने कहा।

'तो उसका उपयोग करो।'

'इसका अर्थ यह कि मैं आज्ञा दूँ तो आप मेरे साथ विवाह करनेके लिए तैयार हो जायँगे?'

'शायद...खैर, मान लो...मैंने 'हाँ' कह दिया...'

'तो आप इस्लाम भी अङ्गीकार कर लेंगे, ठीक है न?'

'तुम्हारी यह शर्त मैंने कभी स्वीकार नहीं की है। इसी शर्तको अस्वीकार करके ही तो मैंने विषपान किया था?'

'आप हिन्दू बने रहें और मैं मुसलमान, तब विवाह कैसे हो?'

'धर्म यदि प्रेमके बीच कठोर दीवार खड़ी करता हो तो वह मुक्ति देने वाला नहीं बल्कि बंधनमें डालने वाला धर्म बन जायगा।'

'विवाहके पश्चात् आप मुझे अपना इस्लाम धर्म पालन करने देंगे?'

'अवश्य। हमारे धर्मने, म्लेच्छ, हूण, पहल्लव एवं कुशान आदि सभीका स्वागत किया है। तुम भी अनुभव कर देख लो, इस्लाम उदार बनेगा और आर्यताको जगत् व्यापी बना सकेगा।'

'एक बार आप इस्लाम स्वीकार कर देखें कि इसमें कितनी उदारता है।'

'शर्त्तसे पूर्ण विवाह, विवाह ही नहीं हो सकता, हिन्दू या मुसलमान किसीका भी। मैं हिन्दू रहूँ...तुम मुसलमान...फिर भी हम एकत्र रहें... फिर...'

'मैं भी प्रतिज्ञा करके आई हूँ।'

'किस बात की।'

'आपके साथ विवाह करने की...किन्तु आपको मुसलमान बनानेके पश्चात् ही!'

'मैं इस्लाम धर्म स्वीकार न करूँ तब?'

'आपका सिर काट कर पिताके चरण कमलों पर धर दूँगी।'

'सिर माँग कर लेना है या जीत कर?'

'माँगनेसे मिल जाय तो जीतनेकी जहमत कौन उठाये? दे रहे हैं अपना सिर?'

'हाँ, तुम माँगो तो! याचकको मैं अपना मस्तक अवश्य देनेको तैयार हूँ।'

'मैं माँग रही हूँ...'

'कटार दूँ या तलवार?...तुम्हारे पास मस्तक उतारनेका कोई साधन दिखाई नहीं पड़ रहा है।'

'मैं बिना कटार कभी रहती ही नहीं। है मेरे पास...कटार।'

'मेरा मस्तक भी तुम्हारे पास ही है...उतार लो...क्यों देर कर रही हो?'

'आज आपकी सुहाग रात है!'

'दयाका लवलेश भी मनमें न आने दो। प्रेमसे ओत-प्रोत एक रमणी याचना करे और मैं अपना मस्तक अर्पण न कर सकूँ तो मेरे पौरुष में बट्टा लग जायगा।'

भोज नरगिसके समक्ष घुटने टेक कर अपना मस्तक नरगिसकी कटार को सौंप रहा था परन्तु कटारके स्थान पर एक कोमल हाथ उसके मस्तक को स्पर्श कर रहा था। नरगिस भोजके मस्तक पर हाथ फेरते हुए बोली: 'भोज! आप हिन्दू न होते और मैं मुसलमान न होती तो कितना अच्छा होता?'

'भूल कर रही हो नरगिस ! हिन्दू होनेसे मैं या मुसलमान होनेसे तुम, मानव थोड़े ही मिट जाते हैं।'

'यही दुःख है ?...नहीं तो मैंने कभी आपका मस्तक उतार लिया होता !'

'पिताको क्या जवाब दोगी ?'

'पिताके पास जाऊँगी ही नहीं।'

'तब कहाँ जाओगी ?'

'खबर नहीं...किन्तु दूर...किसी पहाड़की गुफा में...किसी वन-वृक्षके नीचे...'

'वहाँ करोगी क्या ?'

'बुतपरस्ती...'

'मतलब ? इस्लाम तो मूर्ति-पूजा मानता नहीं...'

'ईश्वरकी मूर्ति भले ही न हो ! मानव-मूर्तिकी रचना तो की ही जा सकती है ?'

'किस मानव की ?'

'भोज नामक मानव की...'

'इसे फेंक दे...धक्का मारकर...मुक्त बन जा इससे...'

नहीं, भोज ! यह असंभव है। यह मूर्ति तो हृदयमें घर कर चुकी है...कभी बहुत पहले ही...अब तो...जब हृदय नहीं रहेगा तभी यह मूर्ति दूर होगी...'

'मस्तक काटनेसे यह मूर्ति दूर हो जायगी क्या ?'

'नहीं, और भोज ! आपका मस्तक तो कट चुका है...पुनः काटना कोई अर्थ नहीं रखता।,

भोज नरगिसका मुँह देखता रह गया। नरगिसकी आँखोंमें आने वाली आँसुओंकी चमक एकाएक अदृश्य हो गई और उसका स्थान विषाद-

पूर्ण गांभीर्यने ले लिया। एक नारीका जीवन धूलमें मिलता हुआ भोजको प्रत्यक्ष दीख पड़ा।

'अब आज्ञा दीजिये...'

'साथ चलूँ?...पहुँचाने...?'

'अभी जानेका स्थान ही निश्चित नहीं है'

'किसीको साथ कर दूँ?

'आपका ही साथ नहीं रहा तब दूसरे किसका भरोसा करूँ? भोज! एक याचना है...विवाहका दिवस याद आये तो यह भी याद कर लीजिएगा कि एक नारीका हृदय तुम्हारे लिए तड़फड़ा रहा है!' कहकर पीठ फेर नरगिस एक कदम आगे बढ़ी।

'नरगिस!' ऊर्मिसे थिरकता हुआ भोजका संबोधन नरगिसने सुना। साथही अपना एक हाथ भोजकी आँखों पर है ऐसा उसने अनुभव किया। भोजने उसका हाथ पकड़ कर अपनी आँखों पर रख लिया था क्या?

'बस, अब कुछ नहीं चाहिए...' कहती हुई अपना हाथ छुड़ा कर और भोज पर एक दृष्टि डाल नरगिस पहाड़ीसे एक अनजान घाटीमें उतर गई।

ज्योत्स्नामें क्रमशः अधिकाधिक छोटा बनता हुआ उसका आकार दूर चला जा रहा था। उसे देखनेमें दत्तचित्त भोजको पता भी न चला कि मीनाक्षी उसके पास कबसे आकर खड़ी है। इतनाही नहीं उसके कँधे पर हाथ भी रख चुकी है। मीनाक्षीकी वाणीने भोजको नाटकमें से जाग्रत कर दिया, 'नरगिस कहाँ है भोज? आप क्या देख रहे हैं...तबसे?'

'मैं देख रहा था मिथ्यावादी, धार्मिक वेशधारी धर्म किस प्रकार मानवताको पददलित किये डाल रहा है...'

'अर्थात्?'

'नरगिस चली गई।'

'कहाँ?'

'न स्वयं उसे खबर है न मुझे !'

'वापस बुलाऊँ ?'

'नहीं आयेगी वह ।'

'क्यों ?'

'उसे मुस्लिम भोज खप सकता है—हिंदू भोज नहीं...'

'आर्योंने भी धर्म पर धब्बा लगाना प्रारंभ कर दिया है...'

'क्या ?'

'मुझ जैसी क्षत्रिय कन्याका विवाह आप जैसे विप्रवरके साथ होना ब्राह्मणोंको पसंद नहीं आया...तब परधर्मी नरगिसके साथ विवाह आपको शायद बहिष्कृत कर देगा ।'

'हूँ...देखो...उस घाटीमें कुछ हिलता हुआ सा दीख पड़ रहा है ?' भोजने पूछा ।

'हां...क्या है वह ?'

'नरगिस !' भोजने कहा !

मीनाक्षीने भोजके गलेमें हाथ डालकर उसे अपने साथ झूलेपर बैठा लिया ।

१४

'कितने वर्ष बीत गये इस प्रसंगको ?...इस प्रसंगमालाको ?...'

मीनाक्षीने अपने एवं भोजके भूतकालपर हँसते हुए पूछा । चित्तौर-गढ़की पुनर्रचना हो रही थी और गढ़के तैयार हुए बुर्ज पर खड़े होकर भोज और मीनाक्षी सान्ध्य-सूर्यको डूबते हुए देख रहे थे ।

'समय भी प्रवाह ही है ? हमारे जैसी अगणित लहरें उठीं और नष्ट हो गईं ! आयीं और चली गयीं !'

'भोज ! समयको स्थिर नहीं रखा जा सकता ?'

'कमसे कम मैं तो नहीं रख सकता ।'

'अब त्रिशूल एवं खड्गके साथही बाण चलाने वाले भी हो गये हो। देशविदेशमें तुम्हारी बाणवर्षिन योद्धाओंमें गणना होती है। काल सदृश बाण तुम्हारे पास हैं। इसीसे तुम्हारा नाम कालभोज है, ऐसा भी बहुत लोग कहते हैं। इस बाण द्वारा क्या समयको स्थिर नहीं किया जा सकता ?'

'यह मेरी शक्तिके बाहर है। किसी योगीसे पूछें तो समय स्थिर करनेका साधन शायद वे बता दें...नहीं भी बता सकते। किन्तु मीनाक्षी ! यह विचार तुम्हारे मनमें आया कहाँ से !

'आज न जाने क्यों मेरा मन अत्यंत प्रफुल्लित है। पिछली बातें याद करती हूँ ! मुझे स्वीकार न किया होता तो ? इस विचारसे ही मुझे पसीना आने लगता है। आगामी कलका भरोसा नहीं है। आज, इस समयको कोई बाँध नहीं दे सकता ? ऐसा हो तो कैसा अच्छा ?'

'देखो, मीनाक्षी ! समय बाँधनेका एक निष्फल प्रयत्न !' कह कर भोजने अपने पाससे एक स्वर्णका टुकड़ा निकालकर हथेलीपर रख मीनाक्षी को दिखाया।

'यह तो तुम्हारा . मेवाडका नया सिक्का है ! मैंने देखा है; इसके अंदर क्या क्या खुदवा रखा है ? यह सब मुझे समझना है।'

'समयको पकड़ रखनेका एक निष्फल प्रयत्न !'

'सिक्का समयको किस प्रकार पकड़ सकेगा ?'

'राज-प्रबन्धके सिक्केको समयके मार्ग पर फेंके हुए चिह्नके रूपमें पहचाना जा सकता है। समय तो नहीं किंतु हम की भभी पकड़े जा सकेंगे...अनंत भविष्यमें...हम न रहेंगे तब भी...'

'कैसे ?...समझमें नहीं आया ? समयके प्रवाहमें एक सोनेका सिक्का कैसे तैर सकेगा ?'

'सिक्का अच्छी तरह देखो तो सही ।'

'देखा ! तुम्हारा नाम भी कहीं नहीं है ।'

'यह क्या है ? 'बप्प' अक्षर तो स्पष्ट हैं न ?

'यह तो तुम्हारे मित्रों द्वारा दिया हुआ नाम है । अब तो संपूर्ण प्रजा तुम्हें इसी नामसे पुकारती है । तुम्हारा नाम भोज है यह भी शायद लोग भूल जायँ !'

'प्रजा निश्चित् करे वही नाम सच्चा ! भोजके बदले बप्प नामसे पुकारे जानेसे मुझे हर्ष ही होता है । शायद भोज और कालभोज लोग भूल जायँ परतु बप्प तो नहीं ही भूल सकेंगे ।'

'तुम अकेले ही अच्छे राजा हुए हो या होगे, क्यों ?

'मीनाक्षी ! सबके समान तुम भी मुझे अप्रिय लगने वाली भूल कर रही हो ? मैं राजा कहाँ हूँ ? मेवाड़का राजदंड तथा राजमुकुट मैंने स्वीकार नहीं किया है । मेवाड़के महाराज तो ये हैं—भगवान शंकर—एकलिंगजी ! देखो सिक्के पर, समझमें आया ? और मैं तो उनका सेवक मात्र हूँ, उनके चरणोंमें सदैव पड़ा हुआ !'

'अच्छा, भगवानका त्रिशूल और नंदी भी अंकित है, भोज ! तुम भी त्रिशूल लेकर खड़े होते हो तो तुम्हारे शरीरमें शंकरका आवेश हुआ जान पड़ता है ।'

'यह भला तुम्हें कब भासित हुआ ?'

'तुम्हारे प्रत्येक युद्धमें ।'

'तुमने तो निश्चय ही कर रखा है कि जहाँ मैं वहीं तुम, चाहे देव-पूजा हो या युद्ध !'

'अभी कितने युद्ध बाकी हैं ?'

'मैं कहाँ युद्ध खड़े करता हूँ ? अनेक रावराणा मुझे चक्रवर्ती पद स्वीकार करनेके लिए कहते हैं परन्तु मैं अस्वीकार करता हूँ ।'

'तुम भले ही अस्वीकार करो जो सच्चा चक्रवर्ती होगा उसे स्वीकार करना ही पड़ेगा।'

'मीनाक्षी ! मेरे मनमें अनेक बार यह बात उदित होती है कि एक-चक्र राज हो तो क्या नहीं हो सकता ? मुसलमानोंको देखो ! खलीफाकी एक आज्ञा पर लाखों मानव कटनेके लिए तैयार हो जाते हैं ! मुस्लिम दुनियामें देश अनेक किंतु चक्र एक, जब कि आर्यावर्तमें देश एक और चक्र अनेक ! इसमें एककी वृद्धि मैं और क्यों करूँ ?'

'तब मुस्लिम पैर आगे बढ़ेगा। वह रुक नहीं सकता !'

'अभी तो सिंधु तट पर रुका हुआ है। वहाँ क्षत्रिय और ब्राह्मण जाग्रत हो गये हैं ! गांधारका संपूर्ण प्रदेश आर्योंका ही है। काश्मीरमें मुक्तापीड❀ नवीन राजकीय हिमालय खड़ा कर रहे हैं, उनका चक्र चीनको भी स्पर्श कर रहा है।'

सचमुच, इस्लामके आक्रमणने आर्यावर्तको जाग्रत तो कर ही दिया था। पश्चिम एशिया, दक्षिण यूरोप एवं उत्तरी अफ्रीकाकी इस्लामी विजयने इस्लामको एक अदृष्ट पूर्व महाराज्य बना दिया था। इस्लामकी सैन्य-व्यवस्था और राज-व्यवस्थामें शौर्य एवं समझ थी। असीम धार्मिक जोशके साथ विदेशकी संस्कृतिमें से चुन लेने योग्य तत्वोंको लेकर इस्लाम अपना बल बढ़ा रहा था। आर्यावर्तके अनेक विद्वान, कवि, वैद्य, ज्योतिषी एवं कलाकारोंको इस्लामी दुनिया आकृष्ट कर रही थी और सुदूर प्रदेशमें जाकर ये संस्कारधर वहीं रहकर इस्लामको स्वीकार भी कर लेते थे। विधर्मीका इस्लाम स्वीकार इस्लामकी सबसे बड़ी मानसिक विजय बन जाती।

ईरान—पह्लव—खुरासानका प्रदेश इस्लामी पताकाके नीचे आ गया; संपूर्ण प्रजाने इस्लाम स्वीकार कर लिया और वेद सदृश प्रलंब

❀ मुक्तापीड, काश्मीरके समकालीन प्रतापी महाराज थे।

मंत्रोच्चार करने वाले जरतुस्ती पर्वतोंमें छिपकर आर्यावर्त में भाग आये अथवा जहाजोंमें सवार हो विदेशोंमें पलायन कर अपने पवित्र अग्निकी रक्षाके लिए जी जानसे प्रयत्नशील हुए। यह देख काश्मीर और गांधार के आर्य राजाओंकी आँखें खुल गयीं और खैबरकी घाटीसे आने वाली मुस्लिम सेनाको उन्होंने वहीं अटका दिया।

परंतु इस्लामका प्रवाह एक स्थान पर रुकता था तो दूसरे स्थान पर जोर मारता था। अरबोंने समुद्र देखा ही था। खैबर घाटीका मार्ग काबुलकी ब्राह्मण शाहीने रोक दिया †। फिर भी ईरानसे सिंधके लिए शकस्तान—बलुचिस्तान—मकराणके भूमिमार्ग खुले थे। महाराज चचका भूमि-विस्तार ईरानके पार पहुँचा हुआ था। किंतु चचका पौत्र दाहिर मुस्लिम आक्रमणके सामने पराजित हुआ और इस्लामी प्रवाह सिंधु प्रदेशमें वेगसे उमड़ पड़ा। इसके पूर्व वल्लभीपुर, भृगुकच्छ, थाणा—शुर्पारक पर हुआ इस्लामी आक्रमण पीछे हटा दिया गया था अवश्य, तथापि पवित्र सिन्धुतट विधर्मियोंके हाथमें चले जानेसे आर्य क्षत्रिय वृत्ति प्रज्वलित हो उठी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं आदिवासी भी जाग्रत हुए और मित्र अथवा शत्रुके रूपमें आगे बढ़ने वाले धर्म-प्रवाहका सामना करनेके लिए एक विशाल दीवार खड़ी करनेका उन्होंने प्रयत्न किया। काश्मीर, काबुल, कन्नौज एवं चित्तौर संगठित हो गये और गुजरातमें चावड़ाओंने भी जोर लगाकर परतंत्रताके प्रति गंभीर विरोध उत्पन्न कर दिया।

भोजका यही मुख्य कार्य था। स्वयं चक्रवर्तीपद प्राप्त करनेकी अपेक्षा आर्यावर्तकी सुरक्षितताके लिये शत्रुओंका सामना करनेकी वृत्ति के कारण ही भोज मेदपाटकी भूमिको सबल एवं समृद्ध बनानेमें प्रयत्न शील हुआ

---

† काबुलमें इस समय आर्य शासन प्रवर्त्तित था और वहाँका राज्यवंश ब्राह्मणशाहीके नामसे प्रसिद्ध था।

और इसी कार्यके मुख्य अंश रूप उसने मेदपाटकी स्वर्ण-मुद्रा प्रचलित की। अपनी प्रिय पत्नी-मीनाक्षीके समक्ष वह मुद्रा रख समयके प्रवाहमें अमर रहनेकी जो विचित्र किंतु स्वाभाविक इच्छा उसने प्रकट की वह भी इसी वृत्तिके कारण उत्पन्न हुई हो तो क्या आश्चर्य! और भोज सदृश पतिकी अमरत्व प्राप्त करनेकी इच्छा सफल हो ऐसा भला कौन पत्नी नहीं चाहेगी?

'मुक्तापीडका आमंत्रण तो स्वीकार करना ही होगा?' मीनाक्षीने पूछा। काश्मीरके ये महाराज भोजकी विजयोंसे परिचित थे एवं राज-वैभव प्राप्त होनेके पूर्व भोजकी यात्राके साक्षी भी थे। काश्मीर आनेका निमंत्रण उन्होंने भोजको वर्षोंसे दे रखा था।

'अवश्य, वह प्रदेश देखना बाकी रह गया है...'

'मैं भी साथ चलूँगी। काश्मीर मुझे भी देखना है।'

'तुम मुझे कब अकेला रहने देती हो? संन्यास लेना था...उस समय तुम्हींने मुझे रोका।'

'अच्छा ही हुआ न? स्त्रीको देखे समझे बिना प्रभुके पास पैर रखा ही नहीं जा सकता।'

'काश्मीर जाऊँगा तो सहस्रबुद्धका भी दर्शन करता आऊँगा।'

'नरगिस भी वहीं कहीं तप करती होगी...'

'अब तुम्हें मुद्रा अच्छी तरह देखना है या इधर-उधरकी बातें करना है?'

'मुद्राको अधिक देखकर क्या करूँगी? तुम्हें सभी याद आये, न आई केवल मैं! पुरुषको केवल पुरुष वर्गका ही स्मरण रहता है?'

'मुद्राको जरा उलटो तो सही। फिर कहना।' कहते हुए भोजने मीनाक्षीके हाथमें सिक्का रख दिया।

'देख लिया। ब्राह्मण-क्षत्रियके लिए सूर्योपासना तो धर्म है ही

इसलिए सूर्यका प्रतीक तो इसमें रहेगा ही। भविष्य में तुम्हें कोई सूर्यवंशी क्षत्रिय ठहरा देगा।'

'तो क्या हुआ ? संपूर्ण मानवजाति सूर्यवंशी है, मीनाक्षी !'

'यह अपनी सवत्स कामधेनु भी अंकित करायी है। किंतु मेरा तो कहीं नामनिशान भी दिखाई नहीं पड़ रहा है।'

'तुम्हें मेरी कामधेनु न बनना हो तो तुम जानो...किंतु यह नदी-प्रवाह देखा ?'

'जी हाँ, यह भी बता दीजिये कि क्या है ?'

'शंकर और सूर्य दोनों प्रजाकी रक्षा करते हुए जनसंख्या में वृद्धि करें। यही मेरी दुग्ध नदीके प्रवाह की कल्पना है।'

'इसमें एक मछली भी तैर रही है...'

'इसका अर्थ कि नदी सजीव है, नहीं ?'

'किंतु मैं कहाँ हूँ ?'

'मीनाक्षी...यह भी तुम नहीं जानती ? बस ! तुम्हारी एक आँख नदीमें डाल दी है। तुम जीवित हो तो अपनी आँखों से और जिलाती हो तो भी आँखों से।'

मीनाक्षी हँस पड़ी और भोजके हाथमें मुद्रा रखकर उसका हाथ पकड़ लिया। हँसकर बोली 'एकान्त में भी तुम वैराग्य नहीं छोड़ोगे ?'

'क्यों ?'

'प्रेमोच्चारका तुम्हे कुछ ज्ञान ही नहीं है, कुछ नहीं जानते !'

'इसीलिए तो तुम्हें मैं गुरुस्थान देता हूँ और जो तुम सिखाती हो वही सीखता हूँ। बताओ मेरी क्या भूल हुई ?'

'किसी भी-युवती से तुम्हारी आँखें जिलाती है, यह कहने की अपेक्षा तुम्हारी आंखें घायल करती हैं कहना उसे अधिक अच्छा लगता है।'

'अच्छा...यह भी बुरा नहीं हैं। तुम्हारी आँखें कभी-कभी बाण

मुनि पद्मासन लगाये एक स्वच्छ स्थान पर ध्यानस्थ बैठे थे। सामने ही श्रीलेखा भी नीचे मुख किये अर्द्ध ध्यानस्थ स्थितिमें बैठी थीं। चारो ओर साधुओंकी विशाल मण्डली बैठी हुई थी और मुनिके प्रति भक्ति-रखने वाले अनेक नगर-निवासी और वनवासी भी बैठे हुए थे। सभीके मुखपर शोककी छाया फैली हुई थी। शोककी छाया न थी केवल हारित मुनिके मुखपर। अकल्प्य स्मित एवं प्रकाश उनके मुखके चारो ओर मंडल बना रहा हो ऐसा भोजको जान पड़ा। भोज तथा मीनाक्षीने भूमिपर देह नवा कर साष्टांग प्रणाम किया और खाखी समुदायने एक भीषण गर्जना की, 'अ...ल...ख...'

मुनिने आँखें खोलीं और स्मितको अधिक प्रशस्त बना दिया।

'आ गये ?' मुनिने प्रश्न किया।

'जी हाँ, जरा देर हो गयी, दूदाका पुत्र बीचमें मिल गया।'

'कोई बात नहीं...किन्तु अन्तिम बात तू न कर सका होता... यदि देरसे पहुँचता तो।'

'किंतु ऐसा क्यों ? मैं समझ नहीं सका।'

'कोई अधिक समझनेकी बात नहीं है। अब इस देहकी मुझे या किसी दूसरेको आवश्यकता नहीं रह गई है। इसे अब यहीं छोड़ देता हूँ...'

'अभी देह छोड़ने योग्य तो दिखाई नहीं पड़ रहा है।'

'देह ऐसा बन जाय कि अच्छा न लगे, रोग-ग्रस्त हो जाय, मरणासन्न हो जीवित रहे तभी क्या देह छोड़ने योग्य समझा जाय ? देहके लिए निर्धारित कार्य सम्पन्न हो चुका, अब इसे रख कर ही क्या करूँगा ?'

'इस देहकी हमें अभी बहुत आवश्यकता है, इसके बगैर हम क्या करेंगे ?'

'इस देहने अनेक देहोंको गढ़ा...जिनका मूल्य इस देहसे अधिक है।'

'मैं तो एक भी ऐसा देह नहीं देख रहा हूँ।'

'अपनी ही देहका विचार कर। इसे सब कुछ सौंप कर मैं छूट सकता हूँ।'

'नहीं, नहीं ! ऐसा नहीं हो सकता...मैं भी साथही समाधि लूँगा।' कालभोजने कहा और अब तक नीचा मुखकर बैठी हुई श्रीलेखाने पुत्र पर अमृतमय दृष्टि डाली—कुछ भी बोले बिना।

'अच्छा बता, तू क्या चाहता है, मैं मृत्यु पर विजय प्राप्त करूँ या मौत मुझपर ?' मुनिने पूछा।

'आप तो जीवन भर मृत्युञ्जय हैं ! आपको मृत्यु स्पर्श भी कैसे कर सकती है ?'

'अब सच्च बात कहता हूँ। मैं कहाँ मृत्युको कर भरता हूँ ? मृत्यु जब मुझे खींच कर ले जाय तभी कहा जायगा कि मैं उसे कर भरता हूँ। आज तो मेरी देहमें पूरित आत्मा विमानपर चढ़ेगी...और पंच महाभूतोंसे बना हुआ यह देह अपने मूल तत्त्वोंमें मिल जायगा...इस छोटेसे शरीरको छोड़ मैं उन महान तत्त्वोंपर उड़ूँगा...मैं मर नहीं रहा हूँ।'

'मेरा कोई अपराध ?...' कुछ देर बाद भोजने दर्दभरी वाणीमें पूछा।

'अपराध ? तू मेरे जीवनकी सफलता है बेटा। जीवनका साफल्य देख लिया। अब...इन पार्थिव तत्त्वोंको इनकी अमानत वापस लौटाकर मैं अध्यात्ममें...अध्यात्मकी अखंडतामें विहार करनेका विचार कर रहा हूँ...अब आत्मा पंख युक्त मुक्त बन गयी...तेरे कारण।'

'मा ! तू क्यों कुछ नहीं बोल रही है ? मुनिका शरीर न रहे... अरे, अरे !...यह विचार आते ही आँखोंके सामने अँधेरा छा जाता है' भोजने कहा। भोजके कंठमें रुदन आकर रुक जाता-सा लोगोंको जान पड़ा। संपूर्ण सभा शांत बैठी थी।

श्रीलेखाने सिर उठाकर पुत्रको पासमें बैठा लिया, उसकी पीठपर

हाथ फेरा। कौटुम्बिक संबंधसे परे बने खाखीओंकी आँखें भी डब-डबा आईं।

'मुनि तो प्रयोग करते ही चले आ रहे हैं...उनकी इच्छा सफल होने दे बेटा!' वीरतापूर्वक श्रीलेखाने कहा।

'यानी?'

'इनके आरोहणको तू देख ले।'

'पश्चात् इनके बिना जीवित रहूँ?'

'कौन कहता है, बेटा? देहकर्तृ संबंध तो क्षणिक था। देह छूट जानेके पश्चात् मैं सर्वदा—सर्वथा तेरे आस-पास रहूँगा।' माके बदले मुनि ने उत्तर दिया।

भक्त, योगी, ऋषिमुनि, निर्माल्य, पराश्रयी, डरपोक, इधर-उधर भीख माँगने वाले मानव नहीं थे। ये महान प्रयोग शील पुरुषार्थीगण कालको भी अपनी मुट्ठीमें रखते थे, कालको फेंक देते अथवा कालका आवाहन कर उसे पी जाते। हारित मुनिने भोजको गढ़ा, भोजके संसारको गढ़ा और भोज द्वारा आर्यत्वकी रक्षा करती हुई अग्निशिखा आर्यावर्तके आस-पास प्रज्वलित होती हुई देखी। पार्थिव शरीरका कार्य पूरा हो गया। काल देहको पाशमें बाँध कर ले जाय इसकी अपेक्षा कालको निमंत्रित कर उसका मित्र—सखा बनना यही था योगियोंका देवयान—मार्ग। अब सचमुच शरीर उनके लिए पिंजर बन रहा था। देहसे अब कुछ लेना नहीं रह गया था। पंचतत्वों द्वारा रचित देह पंचतत्वको अपने ही हाथों द्वारा समर्पित कर देनेमें कालपर सच्ची विजय थी। हारित मुनिने दिन तिथि निश्चित कर समाधिमें लीन हो पिंजर बने हुए देहसे देहीको मुक्त करनेका क्षण निश्चित किया।

देहका अंतिम बंधन थे पत्नी श्रीलेखा और पुत्र कालभोज। देहके ये दो लेनदार थे। एककी दृष्टिसे दृष्टि मिलाकर दूसरेका शरीर स्पर्श कर, भोज एवं पत्नीके मस्तकपर वरद हस्त रख यह लहना उन्होंने चुका

दिया और कहा 'भोज ! जरा पास आ जा तभी स्पर्श कर सकूँगा। इस सम्बन्धमें बहुत कुछ सम्पादित किया परन्तु अब...इससे भी अधिक निकटका संबन्ध प्राप्त करनेके लिए मैं यह देह छोड़ रहा हूँ। इसे मृत्यु समझकर विलाप मत करना...अरे ! तू तो रोने लगा !... बेटा ! आँसू पोंछ डाल। देहको हाथसे उठाकर यज्ञमें आहुति चढ़ा देना। जब मनुष्य जान जाय उस समय देहोत्सर्ग मृत्यु नहीं, मृत्यु-विजय है। यह तो उत्सव है ! शौर्य-पूर्ण गानसे ही यह मनाया जा सकता है। चल, सम्मिलित हो जा इस उत्सवमें...अलख...!...' मुनि बोले और उपस्थित मंडलीने अलखके उद्गारमें साथ दिया। वाद्य बजने लगे, शंखनाद होने लगा और वेदध्वनि, मंत्रोच्चार एवं स्तोत्रपाठ होने लगा। हारित मुनि उसमें शामिल थे। धीरे-धीरे समय-वृद्धिके साथ वे ध्यानमग्न भी हो जाते और पुनः आँखें खोल कीर्तनमें अपना स्वर मिला देते। ज्यों-ज्यों रात बढ़ती गई, उनकी ध्यान-मुद्रा अधिक लम्बायमान होती गई।

मुनिका ध्यानमें व्यतीत होने वाला लंबा समय भोजको व्यथित कर रहा था। एक बार तो चौंककर श्रीलेखाका हाथ पकड़ कर वह बोल भी उठा, 'मा !'

'कब तक मा को पुकारेगा, बेटा ? श्रीलेखाने पूछा।

'जीवित रहूँगा तब तक...'

'मार्कण्डेयकी आयु हो तेरी।'

'पिता विहीन इस आयुको लेकर मैं क्या करूँगा ?'

'एक दिन तेरी माँ भी नहीं रहेगी !'

'तो मुझे बड़ा क्यों किया ? तेरे बिना...?'

'मातृ-पितृहीन...तो न जाने कितने वर्षोंसे पालित-पोषित हुआ... मैं तो तेरी निमित्त मा...'

भोजने माका हाथ पकड़ कर इतनो जोरसे दबा दिया कि माके

हाथको सचमुच पीड़ा हुई। विश्वजित भोज माताकी गोदमें एक मातृ-आश्रयी बालक बन गया था यह श्रीलेखा भी समझ गई। श्रीलेखाका यह पुत्र नहीं है, यह कोई भी कहता तो वह सहन नहीं कर सकता था—मा के मुखसे तो कभी भी नहीं !

'भोज ! आजसे बालक मिट जा। हृदयको पत्थर बना ले। सच्चा आनंद हर्ष और शोक दोनोंसे परे है।' माताने कहा। हारितमुनि आँखें खोल माता और पुत्रको निहार रहे थे। उनके मुखपर प्रसन्नता खिली हुई थी। स्वर्गीय-यात्रापर प्रयाण करनेवालेको आनंद ही आनंद रहता है।

भजन-स्वतन की धुन चल रही थी। रात्रिका प्रथम प्रहर बीत गया, मध्यरात्रि भी व्यतीत हो गई, पिछली रात भी इसी प्रकार व्यतीत हो गई। लगभग संपूर्ण पिछली रात हारित मुनि ध्यानस्थ ही रहे। ऊषा भी आई, कुंकुम-चंदन छिड़क कर चली गई; अरुणने आकर आकाशमें प्रकाश स्वस्तिक पूरा। परब्रह्मका प्रतीक-सा सूर्यगोल पूर्व दिशामें हँसता, चमकता, हिलता-डुलता ऊपर आकर संपूर्ण साधुसभापर तेज किरणें बरसाने लगा और सबने धड़कते हृदयसे देखा कि हारित मुनिके नेत्र उन्मीलित हो अनिमेष सूर्यपर स्थिर बन गये। भोरिंगनाथ और भैरव-नाथने अलख पुकारा जिसे संपूर्ण उपस्थित मंडलीने दोहराया। हारित मुनिके उन्मीलित नेत्र बंद नहीं हुए और भोज चिल्ला उठा, 'मा !'

माँ भी कुछ बोली नहीं। भोजने माकी ओर दृष्टि डाली। माँकी आँखें भी खुली हुई थीं। प्रसन्नमुख हारित मुनिके नेत्र सूर्यमें स्थिर बन रहे थे। प्रसन्नमुख श्रीलेखाकी खुली आँखें हारित मुनिके मुखमंडलपर त्राटक कर रही थीं।

भोरिंगनाथ और भैरवनाथ अपने स्थान त्याग एकाएक भोजके पास जा पहुँचे और उसके दोनों कंधोंपर हाथ रखकर बोले। 'स्थिरता रखो, भोज !...देखो...देखो...देवयान विमान...यहाँसे ऊपर उठा...समझ पड़ रहा है इसमें कौन-कौन बैठा है ?...देखो...ध्यानसे देखो...श्रद्धापूर्वक...'

और सचमुच भोजकी दृष्टिने एक विमान देखा! आकाशमें... ऊर्ध्वगति करता हुआ वह दिव्यवाहन...किसे लिये हुए जा रहा है?

हारित मुनिको?...हाँ...हाँ...उनका वरद हस्त आशीर्वाद बरसा रहा था। उनकी आँखें भोजको देख रही थीं...और उनके मुखपर स्मित खेल रहा था!

और दूसरा कौन? मा? श्रीलेखा? हँस रही हैं?'

'मुझे त्यागकर? मा!' भोज चिल्ला उठा। विमान सूर्यमें मानों विलीन होता जा रहा हो इस प्रकार प्रकाशपुंजने भोजकी आंखोंको चमका दिया। उसने नीचे देखा! हारितमुनिका गति-रहित शरीर ठीक वैसा ही सूर्याभिमुख स्थिर बैठा हुआ था।

मुनि-मुखको आँखोंमें रख स्थिर बैठी हुई माता श्रीलेखा वैसी ही समाधिस्थ थीं। अरे, समाधिसे भी परे बन गई थीं। मुनिका देह हारित अब रहा ही नहीं, और न माताका देह श्रीलेखा ही रह गया।

आकाशमें अदृश्य विमान पुनः दिखाई नहीं दिया। अलखकी भव्य गर्जना हुई।

भोजकी आँखोंसे सावन-भादोंकी झड़ी लग गई। कभी भी अश्रुबिंदु न गिरानेवाली आँखें गंगोत्तरी-जमनोत्तरी बन गईं।

मीनाक्षी भी व्याकुल हो आंसू गिराने लगी।

साधू भी थोड़ी देरके लिए दुःखी हो गये। उनके नियामक हारित-मुनिका शरीर इस समय निश्चेष्ट था। भोजको सबने हृदय खाली करने दिया। उसके तो पिता भी गये और माता भी, दोनों साथही! कैसा ऐक्य? कैसा अद्‌भुत अद्वैत?

भजन-स्तोत्र-स्तवनका प्रवाह पुनः चलने लगा। भोजने मनपर अंकुश रखा। इच्छानुसार मृत्युको नियन्त्रित करनेकी शक्ति, इच्छानुसार देहको पञ्चमहाभूतोंमें मिला देनेकी कला अद्‌भुत मानसिक सामर्थ्यका दृश्य कहा जायगा। पिता और माताने इसे प्राप्त किया था। उनका यह कराल

प्रयोग भोजको क्या शिक्षा दे रहा था ? और कुछ नहीं, मृत्यु अपने वशमें रहे, ऐसा सामर्थ्य प्राप्त करनेका बोध तो माता-पिता नहीं कर गये ?

कारीगर आ गये, वे दोनों शरीरोंपर समाधि चुनने लगे। मनको कठोर बनाकर स्वयं भोजने समाधि रचनाका कार्य कराया। अखंड प्रभु-स्मरण दिनरात चलता रहा और मृत्यु आकर्षक उत्सव रूप बन गया। तीन दिन तक ऐसे ही चलता रहा। भैरवनाथ तो आश्रममें ही थे, परन्तु अन्य साधु जाने लगे, उस समय भोरिंगनाथने जाते-जाते भोजसे कहा, 'वत्स ! मुनि गये नहीं हैं, माता गई नहीं हैं। वे अधिक सजीव हो गये हैं ऐसा समझना।'

भोजने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसके मनका पूर्ण समाधान नहीं हुआ था। मृत्युके प्रसंगको सच्चे उत्सवके रूपमें भोजका मन अभी स्वीकार नहीं कर सका था।

'एक ओर तुम्हें—एक गृहस्थको—एक राजाको गढ़ कर वे गये। दूसरी ओर उन्होंने ऐसे साधुव्यूहकी रचना की जो धर्मार्थ शरीर अर्पित कर सकें और शरीर काट भी सकें। हम अध्यात्मवादी साधुगण एक मुट्ठीमें काल रखेंगे और दूसरीमें मोक्ष। आवश्यकता पड़ने पर वह मुट्ठी खोलनेके लिए हम आठों प्रहर तैयार हैं, यह अपने मनमें निश्चय समझ रखो।'

एकाएक भोजकी आँखों परसे परदा हट गया। मोक्षमार्ग पर अग्रसर होनेवाले साधू धर्मके लिए शस्त्र धारण करने वाले सैनिक बन सकते थे। देवार्पित राज्य हो, राज्यका प्रधानसेवक प्रजा-सेवक हो और सैनिक वैराग्यसे पूर्ण हो तो उस राज्यको आँच नहीं आ सकती।

एकलिंगजीका पूजनकर स्वस्थ बन भोज चित्तौर लौटनेके लिए तैयार हुआ। साथमें मीनाक्षी थी। आसपास...दूरपर...सैनिक भी चल रहे थे। सहपर्यटनके क्रमानुसार भोज और मीनाक्षीके अश्व साथ साथ चलने लगे। आश्रममें शंखनाद हुआ...परंतु वह मानो पूरा ब्रज

नहीं रहा था ऐसा भोजको जान पड़ा। रास्तेमें उसने मीनाक्षीसे कहा, 'मीनाक्षी ! तुम जानती हो मैंने क्या निश्चय किया है ?'

'नहीं।'

'तो तुमसे कहता हूँ; मैं भी मृत्युका प्रत्यक्ष आवाहन करूँगा... मुनिके समान ही।'

'मेरे सामने ही श्रीलेखाकी समाधि चुनी गयी है ? यह मत समझना कि मुझे भी देहका त्याग कर देना नहीं आयेगा !'

'किंतु तुम्हें अभी देर है...बहुत देर है...'

'मुनिके समान वय होना ही चाहिये ?'

'यह सच है...यद्यपि वयका प्रश्न कोई महत्व नहीं रखता।'

'मेरे मनमें तो इससे भी बढ़कर महत्त्वका प्रश्न चक्कर काट रहा है...'

'ऐसा कौन सा प्रश्न है ?'

'श्रीलेखाको एक पुत्र था...था नहीं अभी जीवित है...'

'यानी ?'

'मुझे...एक पुत्र मिले...पश्चात् मैं भी श्रीलेखाके समान ही हँसते-हँसते मर सकती हूँ।'

'मीनाक्षी ! तूने...बहुत ठीक कहा...सहस्र वर्षों तक अग्नि प्रज्वलित रखना है तो...पुत्र-पुत्रीकी जरूरत अवश्य ही...'

'किन्तु...इस प्रकार सतत...उदास मुख रखने वालेको...नहीं ही मिल सकता, समझे ?'

'हूँ...'

'हूँ कहनेसे कुछ होता जाता नहीं...आनंद विना सर्जन नहीं...' धीरेसे मीनाक्षी बोली और न जाने क्यों उसका घोड़ा भड़क कर भागा। अश्वमें विद्युत वेग आ गया था, पीछे-पीछे अपना घोड़ा दौड़ाते हुए भोजने देखा कि अश्वकी अत्यंत चपल गतिने मीनाक्षीको नीचे गिरा

दिया था। सवारको गिराकर घोड़ा पर्वतमें कहीं अदृश्य हो गया था।

भोज दौड़ता हुआ मीनाक्षीके पास पहुँच गया और अपना घोड़ा रोक कर खड़ा हो गया।

'अब क्या होगा ?' जरा चिन्ता-युक्त स्वरमें मीनाक्षीने पूछा

'कुछ भी नहीं, अपने साथ ही घोड़ेपर बैठाकर तुम्हें ले चलूँगा।'

'अनुकूल होगा ?' प्रश्न पूछते समय मीनाक्षीके मुखपर लाली दौड़ गयी।

'मुझे या तुम्हें ? मुझे अवश्य अनुकूल होगा।' भोजने कहा और मीनाक्षीका हाथ पकड़कर उसे अनुकूल होगा या नहीं इसकी परवाह किये बिना मीनाक्षीको उठाकर अपने साथ ही घोड़े पर आगे बैठा लिया। एक हाथसे मीनाक्षीको पकड़े हुए भोजने घोड़ा सरपट छोड़ दिया।

१६

'आज खुमाण आ रहा है ?' मीनाक्षीने भोजके आते ही पूछा। खुमाण उनका पुत्र था। भोज एवं मीनाक्षीका यौवन परिपक्व हो चुका था और दोनोंका शरीर-सौंदर्य विद्युल्लताके क्षणजीवी चपल प्रकाशके बदले स्थिर प्रगल्भ मध्याह्न सूर्य जैसा चमक रहा था। इन दोनोंका पुत्र खुमाण राजाका युवराज नहीं था किंतु प्रजाका युवराज अवश्य था। भोजकी अनिच्छा होते हुए भी प्रजा खुमाणको युवराज ही पुकारती थी।

इस युवराजको भी कठोर शिक्षण मिला था। धर्म, नीति एवं युद्धके शास्त्र ही नहीं बल्कि उनके व्यावहारिक प्रयोगकी भी। अनेक बार नगर-चर्चाके अवलोकनार्थ भोजके बदले खुमाण ही जाता। मेवाड़के किलोंके रचनाका कार्य भी उसीकी देख-रेखमें होता। सेनाकी कवायत एवं धार्मिक उत्सव भी उसीके तत्त्वावधानमें होते। भोजके राज्यकी सीमा-संरक्षणके

लिए भी खुमाणको ही जाना पड़ता और अठारह वर्षका वय होनेके पूर्व ही उसे तीन युद्धोंमें मोरचा लेनेका प्रसंग आ गया था। सिंधकी इस्लामी सत्ता तोड़ डालनेके लिए प्रयत्नशील सुमरा क्षत्रियोंके हाथ गुप्त मंत्रणा भी वह कर आया था ! देवल बन्दरमें समुद्र देखते ही समुद्रयात्राकी खुमाणमें उत्कट इच्छा उदित हुई।

कलिंगमें स्थित ताम्रलिप्ती बन्दरगाहसे खुमाणका जहाज समुद्रको मथता हुआ पूर्व प्रदेशोंमें एक वर्ष तक घूमता रहा और खुमाणने समुद्र द्वारा चीन-जापान तककी परिक्रमा कर ली। उसकी इच्छा तो पृथ्वी प्रदक्षिणा करनेकी थी। वर्षसे ऊपर समय हो गया था। माता-पिता उसके लिए चिन्तित होंगे, इसका खयाल खुमाणको था ही। समाचार वाहकके अभावसे निश्चित समयपर अपना समाचार भेजना उसके लिए कठिन होता जा रहा था अतः पृथ्वी-प्रदक्षिणाका विचार भविष्यपर छोड़ खुमाण लौट पड़ा। ताम्रलिप्तीके बदले लौटते समय भारतके पूर्व किनारोंको देखता हुआ वह स्तंभतीर्थमें उतर लाट-अनर्त्तका अवलोकन करता हुआ मेदपाट आ रहा था। आज वह चित्रकूट पहुँच रहा है यह समाचार मिलते ही भोज अंतःपुरमें आया। मीनाक्षीको भी समाचार मिल चुका था जिससे उसने प्रश्न किया, 'आज खुमाण आ रहा है ?'

'हाँ, दो तीन घड़ीकी देर है...'

'वर्ष बीत गया। पहले था उससे कहीं ऊँचा हो गया होगा ?'

'अभी मेरी ऊँचाईको नहीं पहुँचा होगा।'

'क्यों अपनेसे उसकी तुलना कर रहे हैं !'

'मेरी ऊँचाईको पहुँच जाय उस क्षणके लिए मैंने एक निश्चय कर रखा है।'

'क्या ?'

'उत्तराधिकार उसे सौंप दूँगा...'

'उत्तराधिकारमें मेवाड़की दीवानगीरी ही न ?'

'हाँ'

'और स्वयं क्या करेंगे ? मैं क्या करूँगी ?'

'मैं तो समुद्र-यात्राका विचार कर-रहा था परंतु वह फलीभूत नहीं हुआ। खुमाणने इसे संपादित किया अतः वह इस बातमें मुझसे बढ़ गया।'

'राजपाट उसे सौंपकर दुनियाकी सैर करना है ?'

'यह इच्छा भी जाती रही। अब समुद्रसे भी बड़े समुद्रमें गोता लगाना है।'

'आप तो, भोज, राजपुरुष हैं और शास्त्रज्ञाता भी। दोमें से एक होते तो आपका कथन अधिक समझमें आता। समुद्रसे भी बड़ा और कौन सा समुद्र है ?'

'है, सबको गर्भमें छिपा लेने वाला एक महासागर है! आनन्दका महासागर! परब्रह्म! उसकी यात्राके लिए अब निकल पड़े'!' भोजने गंभीरता पूर्वक कहा।

'अभी तो बहुत कुछ करना बाकी है...यह आप ही कह रहे थे' सहज चिंतायुक्त स्वरमें मीनाक्षी बोली।

'सभी एक शरीरसे सम्भव नहीं है।'

'अभी इस्लामपर चढ़ाई करना बाकी है।'

'यह योजना त्याग दी, मीनाक्षी!'

'क्यों ?'

'युद्धमें दिग्विजयकी इच्छा भारतमें किसीको नहीं है।'

'तुम्हें तो थी ?'

'अब तो ऐसा जान पड़ता है कि दिग्विजय केवल प्रभुका ही हो सकता है। व्यक्तिका, राष्ट्रका या धर्मका नहीं हो सकता...इस प्रभुके दिग्विजयमें अब मैं अपनी सभी विजयोंको संहृत करता हूँ।'

'साफ-साफ कहो न ?'

'संन्यास लेना चाहता हूँ, मीनाक्षी! यदि तुम आज्ञा दो तो!'

'कोई कारण ?'

'एक तो मेरी एक प्रतिज्ञा पूर्ण हुई, भारतके धर्म-ध्वजको नीचा करने वाला कोई रह नहीं गया !'

'मुसलमान ?'

'वे भी नहीं।'

भोजने तुरत अपनी सिद्धियाँ सोच लीं। चित्तौरको ठीक करा कर अजेय बनानेके साथ ही संपूर्ण मेवाड़में स्थान-स्थानपर बृहद्काय सुदृढ़ किले उसने बनवाये और मेवाड़के एक-एक प्रजाजनमें ऐसा सामर्थ्य उत्पन्न किया एवं देश-प्रेमकी ऐसी ज्वाला प्रज्वलित कर दी कि मेवाड़के लिए प्राण अर्पण करनेके लिए होड़ सी लग गई। ब्राह्मण क्षत्रियोंमें ही नहीं बल्कि वैश्य-शूद्रोंमें भी ऐसी भावना जाग्रत हो गई कि देशके सुखके लिए, देशके स्वातंत्र्यके लिए, देशकी प्रतिष्ठाके लिए आत्मोत्सर्ग कर देना ही सच्चा धर्म समझा जाने लगा।

ऐसे आर्य राजाओंको जो जागनेमें समर्थ थे भोजने जगाया और जो जागनेमें असमर्थ थे उन्हें उखाड़ फेंका। काश्मीरके चन्द्रापीडके साथ उसने मैत्री स्थापित की और इस मैत्रीके बलसे उसने काश्मीरका प्रदेश देख लिया और भारतवर्षके इस सीमान्तको अत्यन्त बलिष्ठ बनानेमें पूर्ण सहायता की।

काबुल-गांधारके ब्राह्मणशाही राजाओंके सिरपर मँडराने वाली इस्लामी आफत भोजने परखी और पूरे विस्तारमें साधुओंके मठकी स्थापना कर काबुली हिन्दुओंको ऐसी सैनिक शिक्षा दिलवाई कि उसके पश्चिम-दक्षिणकी इस्लामी सत्ताको आगे पैर बढ़ाना कठिन हो गया।

मुलतानके मुसलमान सत्ताधीशको अपने मजहबको नम्र बनाना पड़ा। इतना ही नहीं यदि भोजका अधिक आग्रह होता तो शायद उसने तुरत ही आर्य-धर्म स्वीकार कर लिया होता। किन्तु भोजका आर्यत्व

इतनी निम्नश्रेणीका नहीं था कि इस प्रकार भयके कारण होने वाले धर्मपरिवर्तनको वह स्वीकार कर लेता।

'मुसलमानोंका भय इस समय नहीं है, यह सच है किन्तु भविष्यमें भी नहीं होगा यह कौन कह सकता है ?' मीनाक्षीने भोजके क्षेत्रसंन्यासके विरुद्ध दलील पेश की।

'भय होगा तो भी, मीनाक्षी ! तुमने मेवाड़को ऐसी संतति दी है जो एक सहस्र वर्ष तक तो अवश्य ही मेवाड़का रक्षण कर सकेगी। मुझे दृढ़ विश्वास है कि मेरा शौर्य हजार वर्ष तो अवश्य ही चलेगा।'

प्रगल्भ मीनाक्षी भोजके और पास आ गई। अकस्मात् प्राप्त भोज पति रूपमें उसे अत्यधिक प्रिय हो गया था। वय-वृद्धिके साथ सच्चे प्रेममें आकर्षण घटता नहीं। भोजके पास बैठ उसका हाथ पकड़ कर वह बोली, 'तुम्हारे संन्यासमें भी मेरा भाग है ! जहाँ तुम वहाँ मैं !'

'मुझे डर लग ही रहा था कि तुम मुझे सम्मति नहीं दोगी...और पत्नी की सम्मति बिना संन्यास लिया नहीं जा सकता...परन्तु तुम्हें पहचाननेमें मैंने इतनी भूल की !'

'भोज ! अभी संन्यासके लिए यह आयु बहुत छोटी कही जायगी।'

'विराग उत्पन्न हो वही संन्यासकी आयु।'

'विराग उत्पन्न होनेका कारण ? क्या मेरी कोई गलती हुई ? या अन्य किसी की ?'

'तुम्हें पता तो है ही मीनाक्षी, कि महाराज मानसिंहका वध मेरे कारण हुआ ?'

'परन्तु तुमने थोड़े ही कराया था ?'

'किन्तु मेरे कारण हुआ, यह तो मैं स्वयं जानता हूँ ? इस पापका प्रायश्चित कैसे हो ? यह प्रसंग अभी भी मुझे सालता रहता है।'

'यह मैं नहीं मान सकती। इस कारण लिये जाने वाले संन्यासमें मेरी सम्मति कभी भी नहीं हो सकती।'

'यह तो एक विचार प्रवाह है। दूसरा सच्चा कारण बताऊँ जिसे सुन कदाचित् वरमाल अर्पित भोजको तू दूसरी वरमाला अर्पित करेगी ?'

'तुम्हें नित्य वरमाला अर्पित करती हूँ, भूल जाते हो ? बताओ दूसरा कारण।'

'राज्य मेरा न होते हुए भी मेरा है...संयोगोंने इसे मेरा बना दिया है।'

'बहुत ठीक, फिर ?'

'यह मेरा नहीं था और मेरा बन गया।'

'न्यायशास्त्रकी पुस्तक तो नहीं पढ़ रहे हो इस समय ?'

'दलील काटी जा सके तो मुझे बताना। मेरी मृत्यु हो जाय तो भी मुझे पदभ्रष्ट करने वाला कोई नहीं है।'

'इसलिए स्वयं पदभ्रष्ट होना है ?'

'यही मेरा विचार है, मीनाक्षी ! मेरी मुट्ठीमें सत्ता है, वैभव है, प्रतिष्ठा है, सुख है। इस मुट्ठीको खोलकर सत्ता, वैभव, प्रतिष्ठा और सुखको इस प्रकार फेंक दूँ ! जिसे प्राप्त करना आये उसे फेंक देना भी आना चाहिये ! इसका मुझे अनुभव करना है।'

'लेकिन क्यों ?'

'मेरी आर्यता कभीसे यह मुझसे कह रही है। निवृत्त होकर वानप्रस्थ तथा संन्यास इन आश्रमोंमेंसे जाना राजाओंका भी कर्त्तव्य है। यह मुझे दिखा देना है। मानसिंहने यदि वानप्रस्थ ले लिया होता तो मेवाड़ उन्हींके युगमें सुखी हो गया होता और किसीने उनका वध न किया होता। मीनाक्षी ! जो मैंने प्राप्त किया है उसे सरलता पूर्वक फेंक देता हूँ। इसका मुझे एवं जगतको अनुभव करने दो !'

'फेंकनेकी वस्तुओंमें मैं भी आ गई, क्यों ?'

'नहीं, तुमने तो मेरी विराग पात्रतामें वृद्धि की है। तुम्हारे सहवासने मुझे स्थिर बनाया है। आनंद क्या वस्तु है यह मैंने तुमसे सीखा...और

खुमाण देकर तुमने मुझे चिरंजीवी बनाया...जो कुछ तुमने दिया है उन सबको सुरक्षित रख मैं अपनी अध्यात्म-यात्रा पर बढ़ना चाहता हूँ।'

'वह नरगिस मुझे क्या कहेगी? याद है काश्मीरसे लौटते समय हम उसकी मढ़ी पर गये थे? उस समय उसने हम दोनोंसे क्या कहा था?'

नरगिसने भोजके पाससे लौटनेके पश्चात् संन्यास ले लिया। भोजका शरीर उसे प्राप्त नहीं हुआ; परंतु प्रभुने मनुष्यको मन देकर एक अकथ्य आशीर्वाद दिया है। इस आशीर्वादसे एक ऐसी सृष्टिकी रचना की जा सकती है जिसमें तल्लीन होते ही मनुष्यको बाह्य अर्थात् भौतिक सृष्टिसे जो प्राप्त नहीं हो सके हैं वे सब भी प्राप्त हो सकते हैं भोजके अतिप्रिय सहस्र-बुद्धके काश्मीर-गांधारके बीच पर्वतमालामें स्थित एक भव्य मंदिरके पास अपनी मढ़ी बनाकर नरगिस एकांत वास कर रही थी और भोजकी मानसिक आकृतिकी रचना कर ध्यान कर रही थी। प्रेमकथा प्रेमियोंकी ही मिल्कियत नहीं रह जाती। वह जनताकी बन जाती है। लोगोंकी वाणीपर चढ़ जाती है। जन समुदायके हृदयकी कविता बन जाती है। भोज और नरगिसकी प्रेम कहानी भी लोक-हृदय तक पहुँच गई थी। काश्मीरसे लौटते समय भोज और मीनाक्षी दोनों नरगिसकी मढ़ीमें गये थे। वहाँसे चलते समय नरगिसने भोजसे कहा था, 'मेरी अधिक चिंता करनेकी आवश्यकता नहीं, तुम मुझे प्राप्त हो चुके हो!'

भोजके सामने ही मीनाक्षीसे नरगिसने कहा था, 'मीनाक्षी! इस भोजका ख्याल रखना, यह मुस्लिम नारीका नहीं हुआ और हिंदू नारीका भी नहीं रहेगा।'

इस वाक्यने उस समय तीनोंको हँसा दिया था किंतु तीनों व्यक्तियोंको यह वाक्य स्मरण अवश्य था। इस समय मीनाक्षीको वह याद आ गया।

'मुझे स्मरण है, मैं किसीका नहीं रहूँगा।' यह उसने तुमसे कहा था—'तुम्हारा भी नहीं!'

'इसीको सत्य बनानेके लिए मेरी सम्मति माँग रहे हो?'

'नहीं, झूठ सिद्ध करनेके लिए। सबका बन जाने पर मैं तुम्हारे अधिक निकट आ जाऊँगा, मीनाक्षी! मुझे स्वयं विश्वास हो जाने दो कि हाथमें आया हुआ सब कुछ त्याग देना ही सच्चा आर्यत्व है। त्याग कर ही मैं त्यक्त सृष्टि-सुखका आनन्द प्राप्त कर सकूँगा।'

मीनाक्षी अपने पतिमें आर्यताकी भव्य प्रतिमा देख रही थी। इस्लाम के पूर्वप्रवाहको रोकने वाला कालभोज जैसा वीर संन्यासियोंका गेरुआ बाना धारण करनेके लिए प्रवृत्त हुआ था! राज्य प्राप्त करना, स्थापित करना, विजय प्राप्त करना कठिन है। स्थिरता प्राप्त करने के पश्चात् उसे त्याग देना उससे भी अधिक कठिन है! प्राप्ति वीरत्व माँगती है। सिद्धि पराक्रम चाहती है। परंतु इसी प्राप्ति और सिद्धिको स्वयं अपने हाथसे परित्याग कर देनेमें अधिक वीरत्व, अधिक पराक्रम है। भोजके प्रति उसका पत्नी-भाव इतनी कोमलता धारण कर रहा था कि पतिकी इच्छाको ही मीनाक्षीने अपना बना लिया।

खुमाणका स्वागत करनेके पश्चात् निश्चित् किये हुए शुभ दिन खुमाणके कंधों पर राज्यधुरी रख भोजने संन्यास ले लिया। उसके मित्र राजाओंने, आर्यावर्तने, राजपुरुषोंने संन्यास न लेनेके लिए उसे बहुत समझाया परन्तु भोजका निश्चय अटल रहा। युवराज खुमाणने हठ पकड़ा कि वह राज्य सँभालेगा ही नहीं। भोजने उसे अपने पास बुला कर समझाते हुए पूछा, 'खुमाण! मेरा भार उठानेसे तू इनकार क्यों कर रहा है?'

'पिताजी! अभी आपपर मुझे दूसरा भार बढ़ाना है। परिक्रमामें मैंने देखा कि महाराज कालभोजको सहज ही प्राप्त होने वाला चक्रवर्ती पद अभी तक नहीं मिला। मैं कालभोजका अश्व छोड़ूँगा। संपूर्ण पृथ्वी पर और उसपर टेढ़ी नजर डालने वालेको बाँध कर आपके चरणोंपर ला पटकूँगा।'

'तू भूल कर रहा है, खुमाण! चित्तौरका, मेवाड़का मालिक न तो मैं हूँ और न तू। इसके मालिक भगवान शंकर हैं। ये तो सिद्ध चक्रवर्ती

है। उनके लिए नवीन चक्रवर्ती पद कैसा ? और...चक्रवर्ती पद प्राप्त करनेकी कभी भूल भी मत करना। मैं, तू एवं तेरे वंशज मेवाड़की गद्दीके मालिक नहीं, केवल सेवक हैं।'

'मतलब...मेवाड़ कभी चक्रवर्ती पद धारण कर ही नहीं सकेगा ?'

'नहीं! भगवान शङ्करकी ऐसी ही इच्छा मालूम पड़ती है। मेवाड़की रक्षामें हम संलग्न रहें। शायद...मेवाड़से ही भारत धर्मकी रक्षा होना भाग्यमें लिखा हो।'

खुमाणने अपना बाल-हठ छोड़ दिया। भोजने संन्यास ग्रहण किया और वे दोनों नागद्रहके निकट ही उपवनमें वनवास करने लगे—जहाँ उनका विवाह अचानक हो गया था।

संपूर्ण आर्यावर्त्त आश्चर्यचकित हो गया। आर्य-संस्कृति राजाओंके साधुत्वकी सदैव पोषक माता रही है। आर्य-राजत्व राज्यके उपभोगमें नहीं बल्कि त्यागमें आनन्द मानता था। आर्य-आदित्यका पद प्राप्त, चक्रवर्ती पदका स्पर्श किये हुए मध्यवयी भोजका संन्यास साधुताका एक महान् दृष्टांत था। उसका पालन-पोषण करने वाले, महत्ता दिलाने वाले माता-पिताकी साधुताका प्रतिरूप था। राजाका संन्यास धारण यदि संभव है तो आर्य संस्कृतिमें ही। फिर भी इस त्यागसे सारा आर्यावर्त्त चमत्कृत हो उठा।

इतना ही नहीं, एक दिन सबकी सम्मति ले मृत्युको वशमें करनेवाले हारित मुनिके समान ही कालभोजने अन्तिम समाधि ले ली। शरीरसे प्राणको खींच कर परब्रह्ममें समाविष्ट कर दिया।

मीनाक्षीका शरीर भोजके देहको देखता हुआ सामने बैठा था, सजीव! कारण ?

कालभोजके समाधिस्थ देहपर किसीने भगवा वस्त्र डाल दिया। मीनाक्षीकी आँखोंको यह पर्दा बाधक नहीं हुआ।

कालभोजके समाधिस्थ शरीरका दर्शन करनेके लिए पूरा मेवाड़ उलट पड़ा।

ढँके हुए शरीरपर ओढ़ाया हुआ वस्त्र अन्तिम दर्शनके लिए उठाया गया। वस्त्र उठ गया किंतु भोजका मानव देह वहाँ न था! शरीरके आकारका एक पुष्प पुंज वहाँपर पड़ा हुआ सबने देखा।

देहकी ओर गंभीर त्राटक किये बैठी साध्वी मीनाक्षी पुष्पपुंज देखकर खड़ी हो गई। इसमें से थोड़ेसे पुष्प उसने अपने पास रख लिये और बाकी बचे पुंज पर एक छोटी-सी समाधि चुनवा दी।

मानवदेहधारी प्रजाजनोंमें से किसीको शंका उत्पन्न हुई कि अभीतक मीनाक्षी क्यों जीवित है? पतिके साथ ही इसके प्राणपखेरू क्यों नहीं उड़ गये? श्रीलेखाके समान ही!

मीनाक्षी मानव स्त्री थी। पुष्पपुंजमें से उठाये हुए पुष्पोंमें से एक उसने अपने पास रख लिया और शेष पुष्पोंको एक विश्वासपात्र वाहक द्वारा नरगिसके पास भेज दिया। काश्मीरके पश्चिम किनारे पर भोजके प्रिय सहस्रबुद्ध के पहाड़ी प्रदेश में फकीरी जीवन व्यतीत करनेवाली नरगिसके लिए वे पुष्प कीमती थे। पतिको पूर्णतः अपना बना चुकनेवाली मीनाक्षीको ज्ञात था कि उसीके समान एक दूसरे स्त्री-मनमें भी भोज सतत विराजता रहता है और उसके नामका रटन चलता रहता है। स्त्रियोंका प्रेम उदार बन सकता है और सहप्रेमी की वेदनाको समझ सकता है, पर कभी-कभी।

ये पुष्प नरगिस के पास भेज देनेके पश्चात् अपने पास रखा हुआ पुष्प गोदमें रख अनशन व्रत लेकर मीनाक्षी भोजकी समाधि के सामने एकाग्र हो बैठ गई। मीनाक्षी का देह जीवन रहते वहाँसे हटा ही नहीं। संन्यासी पतिके साथ चितारोहण नहीं किया जा सकता था। और भोजका शरीर तो पुष्प बन गया था। अन्नजल का त्याग कर सती हुई मीनाक्षीने चट्चट् दहकती हुई अग्निमें प्रवेश करनेकी शक्तिवाली सहस्रों मेवाड़ी

वीरांगनाओं को जन्म दिया ! जिस प्रकार भोजने अनेक अडिग, मस्तक उतार हाथमें लेकर घूमनेवाले शूरवीर, पीछे पैर न रखनेवाले गुहिलों एवं सीसोदियोंका सर्जन किया ; ठीक उसी प्रकार !

नरगिसने पुष्प पहचाना।

एक पुष्प पर नरगिसने स्वयं अपने हाथोंसे कब्रकी रचनाकी और दूसरे पुष्पों को कब्र पर चढ़ा दिया। उसके पास लोहबान की धूनी कर दी और अन्नजल त्याग कर वह भी कब्रके पास ही बैठ गई।

प्रेमियोंको जाँत-पाँत और धर्मसे भी परे जाना पड़ता है। 'प्रेम ही सच्चा धर्म है !'

नागद्रहके निकट मीनाक्षी-रचित भोजकी समाधिके पाससे होकर जाने वाले लोग वर्षों तक बात करते थे कि इस समाधिमें से प्रातः-सायं एक खाखी शोभन भव्य उद्‌गार सुनाई देता है ! 'अ...ल...ख !'

देखने और सुनने वाले लोग यह भी कहते थे कि जिस क्षण नागद्रह की समाधिमें से अलखका उद्‌गार सुनाई देता है ठीक उसी समय हजारों कोस दूर, कालभोजके पुष्प पर नरगिस द्वारा रची हुई कब्रमें से, उसकी प्रतिश्रुति हो रही हो इस प्रकार, एक दूसरा उद्‌गार सुनाई पड़ता है, 'अनल...हक़...!'

'अलख' और 'अनल हक़' एक ही तो हैं ?

भोजकी दोनों समाधियाँ बारह सौ वर्षोंसे यही पुकारती चली आ रही हैं।